१२०६ से १७५७ के विशेष संदर्भ में

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी की

पी.एच डी. (इतिहास)

उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

१९९६

निदेशक :

डा० श्रीमोहन लाल श्रीवास्तव

एम. ए., डी.फिल.

रीडर एवं विभागाध्यक्ष (इतिहास)

दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय

उरई - जिला - जालौन

अनुसंधित्सु :

हरीमोहन पुरवार

एल एल.बी., एम. ए. (इतिहास)

भरत चौक

उरई - २८५००१

डा. श्रीमोहनलाल श्रीवास्तव
एम. ए., डी. फिल
रीडर एवं विभागाध्यक्ष (इतिहास)
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई

निवास :
9, टीचर्स फ्लैट, राठ रोड
उरई - 285 001 (उ.प्र.)

दिनांक : २४-५-९६

निदेशक का प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री हरीमोहन पुरवार एम.ए. (इतिहास) ने मेरे निर्देशन में "जनपद जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन" (१२०६ से १७५७ के विशेष संदर्भ में) विषय पर शोध कार्य सम्पन्न किया है और यह इनका गवेषणात्मक एवं अनुसंधानात्मक मौलिक प्रयास है।

शोध प्रवन्ध की उपलब्धियां संप्रस्तुति से अन्वेषण के नये क्षितिज भी संकेतिक हो रहे हैं । यह अनुसंधित्सु के कृतित्व के श्लाघनीय एवं सन्तोषजनक कार्य के सूचक है । इस दृष्टि से मैं इस शोध प्रबन्ध के निर्देशन से सन्तुष्ट हूँ और अपेक्षा करता हूँ कि इस दिशा में शोधार्थी "जनपद जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन" करके शोध के मौलिक एवं मानक प्रतिमानों की संस्थापना करेगा ।

नियमानुसार इन्होंनें दो सौ दिन की उपस्थिति पूरी करके अध्यवसाय एवं अध्येतावृत्ति का परिचय दिया है । जनपद जालौन के प्राचीन इतिहास को अन्धकार के गर्त से निकालकर जनपद को पुरातात्विक दृष्टि से महत्वपूर्ण आसन पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है । इतिहास के सुधीजन इस प्रयास को समादर देगें ऐसा मेरा अपना विश्वास है ।

श्रीमोहन लाल श्रीवास्तव
डा० श्री मोहनलाल श्रीवास्तव
एम. ए., डी. फिल.
इतिहास विभागाध्यक्ष एवं निदेशक

प्राक्कथन

प्राचीन काल से आज तक भारतवर्ष का ह्रदय प्रदेश बना, यह बुन्देलखण्ड, इतिहास के पन्नों में अपनी स्वतन्त्र रहने की प्रबल प्रवृत्ति के कारण सर्वदा उपेक्षित रहा है । इसी बुन्देलखण्ड के उत्तरी प्रवेश द्वार के रूप में सुविख्यात् यह जनपद जालौन पुरातत्व एवं इतिहास की दृष्टि से अपना वह गौरवपूर्ण स्थान नहीं बना पाया जो कि उसका होना चाहिये था । यहाँ के ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक स्थलों का भी विधिवत रूप से विशेष अध्ययन नहीं हुआ है जिसके कारण अन्धकार के गर्त में पड़े तथ्य प्रकाश में नहीं आ सके । अपने इस शोध कार्य में मैंने इस जनपद जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों के ऐतिहासिक मूल्यांकन को आधार बनाकर, इसके इतिहास एवं पुरातात्विक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थलों का अध्ययन करने का एक अल्प प्रयास किया है ताकि मैं अपनी परम पूज्या जन्मस्थली के प्रति अपनी श्रद्धा के कुछ सुमन अर्पित कर अपने को गोरवान्वित कर सकूँ । अपने इस शोध प्रवन्ध को मैंने अध्ययन की दृष्टि से सात अध्यायों में विभक्त किया है ।

प्रथम अध्याय के अन्तर्गत मैंने बुन्देलखण्ड के प्राचीन इतिहास का संक्षिप्त विवरण नवीन अन्वेषणों के साथ प्रस्तुत किया है तथा यह भी प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि सांस्कृतिक एवं सभ्यता के परिप्रेक्ष्य में 'आर्यजन' इस देश के मूल निवासी थे तथा उनका इस क्षेत्र में आगमन वैसा ही था जैसे कि हम वर्तमान में अपनी रोजी रोटी के सिलसिले में एक स्थान से दूसरे स्थान को गमन करते हैं । इसी अध्याय में बुन्देलखण्ड नाम की व्युत्पत्ति एवं जनपद जालौन की इस बुन्देलखण्ड के उत्तरी प्रवेश द्वार के रूप में स्थिति को बतलाने का भी प्रयास किया है ।

अपने इस शोध कार्य के द्वितीय अध्याय में मैंने जनपद जालौन की भौगोलिक सीमायें व स्थिति के साथ साथ सामाजिक राजनैतिक व प्राचीन ऐतिहासिक परिदृश्य के माध्यम से इसके ऐतिहासिक महत्व पर प्रकाश डाला है तथा इतिहास के पन्नों में अन्धकार युग अर्थात् २२० वर्ष ईसा पूर्व से २३० वर्ष ईसा पश्चात् तक, के नाम से विख्यात काल खण्ड के अन्धकार को नवीन खोजों तथा तथ्यों के प्रकाश पुन्ज द्वारा खण्ड खण्ड करने का उपक्रम किया है ।

तृतीय अध्याय के अन्तर्गत मैंने इस जनपद के प्रमुख ऐतिहासिक स्थलों की स्थिति व व्यवस्था की दृष्टि से इस क्षेत्र के मध्यकालीन इतिहास (सन १२६० से ई० सन १७५७ तक) का संक्षिप्त विवरण काल क्रमानुसार देने का प्रयास किया है तथा साथ ही साथ इन स्थलों का राजनैतिक, आर्थिक सामाजिक एवं भवनों के निर्माण में विभिन्न समकालीन स्थितियों तथा पृष्ठ भूमियों पर भी प्रकाश डाला है ।

शोध प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में इस जनपद के धर्मेत्तर भवनों के इतिहास व वास्तुकला की दृष्टि से उनका मूल्यांकन करने का उपक्रम किया गया है । इन धर्मेत्तर भवनों में कालपी का किला, रामपुरा, जगम्मनपुर व गोपालपुरा की गढ़ियों के विवरण के साथ साथ जालौन स्थित बावड़ी तथा कालपी की काली हवेली, श्री दरवाजा व हवेली सुभानगुण्डा का भी विवरण प्रस्तुत किया है ।

शोधप्रबन्ध का पंचम अध्याय अति महत्वपूर्ण है और इसमें मैंने जालौन जनपद की चारों तहसीलों तथा तहसील मुख्यालयों में स्थित विभिन्न धार्मिक भवनों का मूल्यांकन, पुरातत्व व इतिहास की दृष्टि से उपलब्ध साहित्य एवं व्यक्तिगत साक्षात्कार के उपकरणों द्वारा किया है । कालपी क्षेत्र के ग्राम इटौरा , परासन,गुलौली आदि के साथ साथ कालपी मुख्यालय में स्थित गणेश मन्दिर,पाहूलाल मन्दिर, गोपाल जी का मन्दिर, लक्ष्मीनारायण मन्दिर, बड़ा स्थान , बटाऊ लाल मन्दिर, जामा मस्जिद, चौरासी गुम्बद, दिगम्बर जैन मन्दिर, व्यास क्षेत्र , पातालेश्वर आदि का वर्णन किया है । जालौन के लक्ष्मीनारायण मन्दिर, द्वारिका धीश मन्दिर, आदि के वर्णन के साथ साथ कोंच तहसील मुख्यालय के बारह खम्बा , कलन्दर शाह की मजार , तकिया खुर्रमशाह , रामलला मन्दिर आदि का भी वर्णन किया गया है । उरई क्षेत्र के अन्तर्गत सैदनगर स्थित रामसीता मन्दिर,अक्षरा देवी, जामा मस्जिद के साथ साथ उरई तहसील मुख्यालय स्थित , लक्ष्मीनारायण मन्दिर , खोंं खोंं देवी , मन्सिल माता , रामलला मन्दिर, रोपण गुरु मन्दिर कुकरगाँव आदि का वर्णन करते हुए मूल्यांकन किया है ।

षष्ठ अध्याय में मैंने इस जनपद में जनपद से सम्बन्धित पुरालेखों , मूर्तिकला, चित्रकला, स्थापत्य कला तथा अन्य पुरातात्विक महत्व की सामग्री जैसे ताम्र उपकरण विभिन्न ऐतिहासिक सिक्के, शालि वाहन संस्कृति व सभ्यता के चिन्हों का समीक्षात्मक उल्लेख किया है ।

सप्तम अध्याय उपसंहार से सम्बन्धित है जिसमें मैंने उपलब्ध ज्ञान के आधार पर जनपद जालौन के ऐतिहासिक महत्व को दर्शाया है और उसके पुराणों में वर्णित पुण्य प्रदान करने वाले ऊसर क्षेत्र के महत्व के साथ साथ इस क्षेत्र का आध्यात्मिक महत्व, इसका सामरिक एवं राजनैतिक महत्व पर भी प्रकाश डालने का प्रयास किया है । इसी अध्याय में शोधकार्यमें आयी.कटनाइयों एवं उनके निराकरण हेतु अपनाये गये सूत्रों का भी वर्णन किया है ।

शोध प्रबन्ध के अन्त में उन ग्रन्थों, पत्रिकाओं तथा दैनिक समाचार पत्रों की तालिका प्रस्तुत की है जिनके संदर्भ लेते हुए अपने शोध कार्य को गति प्रदान की ।

इस शोध प्रबन्ध के लेखन में मुझे अपने अग्रजतुल्य शोध निदेशक डा० श्री मोहन लाल श्रीवास्तव, अध्यक्ष इतिहास विभाग का वह सम्यक पथ प्रदर्शन मिला है जिसके अभाव में यह शोध कार्य शायद पूर्णता प्राप्त न कर पाता । उनके स्नेह, सहज स्वभाव के प्रति मैं नतमस्तक हूँ ।

शोध प्रबन्ध हेतु मुझे प्रेरित किया मेरे बड़े भाई डा० राजेन्द्र कुमार पुरवार तथा आदरणीय भाभी डॉ० जयश्री ने समय समय पर शोध कार्य में आयी विभिन्न कटिनाइयों का समाधान करने की प्रबल प्रेरणा एवं मार्गदर्शन दिया डी०वी० कालेज उरई के पूर्व प्राचार्य एवं मेरे अग्रजतुल्य परम स्नेही डा० रामस्वरूप खरे ने । उनके प्रति मैं कैसे आभार व्यक्त करूँ यह नहीं समझ पा रहा हूँ । नतमस्तक होता हूँ ।

मेरे पूज्य बड़े भाई श्री राधेरमण पुरवार के भी प्रति मैं कृतज्ञता स्वरूप चरण वन्दन करता हूँ जिन्होंने व्यापार से मुझे मुक्त रखते हुए इस शोध कार्य को आगे बढ़ाने में सहयोग किया । मैं अपनी मातृतुल्य रश्मि भाभी की भी उनके वात्सल्य व ममत्व हेतु चरण वन्दन करता हूँ ।

प्रातः स्मरणीय परम पूज्य पिता श्री व ममता की साक्षात देवी मातुश्री की भी मैं चरण वन्दना करता हूँ इनके असीम स्नेह की स्निग्धता में मैं अपने इस शोध प्रबन्ध के कार्य को आगे बढ़ा सका ।

मेरे सुख व दुख के प्रत्येक पल से अभिभूत होने वाली मेरी प्राणेश्वरी सन्ध्या के प्रति भी मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिसके प्रेम की अविरल रसधारा ने मुझे इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने का सम्बल प्रदान किया । इसके साथ ही साथ मैं अपने पुत्र चि० अभिषेक व अपनी लाड़ली बिटिया जया से भी क्षमा याचना करता हूँ कि इस शोध प्रबन्ध के समय मैं अपने दायित्वों का समुचित निर्वहन न कर सका ।

इस शोध कार्य को गति शीलता प्रदान करने व इसके मर्म को सुसज्जित तथा ससंदर्भित करने में कु० अपर्णा खरे का भी मैं कृतज्ञ हूँ जिसने कोंच उरई आदि के स्थलों के भ्रमण में मेरा पूर्ण सहयोग किया ।
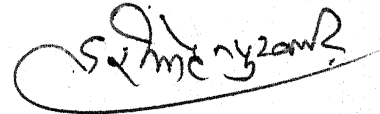
श्री कृष्ण बिहारी शर्मा, कोंच तथा श्री रवि महेश्वरी उरई का भी मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने इस शोध कार्य हेतु ऐसे पुरातात्विक साक्ष्यों की उपलब्धता कराई जिनके प्रकाश में मैं इस जनपद के प्राचीन इतिहास पर से अन्धकार की काली पर्त हटा सकने में सक्षम हो सका ।

मेरे अनुज मित्र सत्‌चित्‌ आनन्द, डा० राजेन्द्र निगम, कु० मधु मिश्रा व ब्रज कम्प्यूटर के मैनेजिंग डायरेक्टर श्री सीताशरण गौतम का भी मैं आभारी हूँ जिनके असीम सहयोग से यह शोध कार्य इस रूप में प्रस्तुत हो सका ।

अन्त में मैं अपने सभी शुभचिन्तकों , मित्रों सहयोगियों के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ जिनके शुभ चिन्तन , व हार्दिक शुभकामनाओं की समिधा से यह पुनीत यज्ञ सम्पन्न हो सका ।

विननावत

हरीमोहन पुरवार

दिनांक २५.५.९६

हरीमोहन पुरवार
भरत चौक , उरई

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास

हर्गिज राजस्थान से इसको गौरव कम नहीं ।
पूर्ण मिले इतिहास, तो कोई इसके सम नहीं ॥(१)

स्वर्गीय रसिकेन्द्र जी की उपर्युक्त पक्तियाँ बुन्देलखण्ड कविता की हैं जो बुन्देलखण्ड के इतिहास के गौरव के विषय में मार्ग दर्शन करतीं है ।

बुन्देलखण्ड भारतवर्ष का ह्रदय प्रदेश है ।(२)यह उत्तर में यमुना और दक्षिण में मध्यभारत के जबलपुर और सागर जिलों के बीच स्थित है । इसकी पश्चिमी और उत्तरी पश्चिमी सीमा सिन्ध नदी निर्धारित करती है तथा पूर्वी सीमा टोंस नदी और मिर्जापुर की विन्ध्य पर्वत श्रेणियों से निश्चित होती है । (३)इन सीमाओं के अन्तर्गत वैदिक एवं बौद्ध साहित्य से ज्ञात होता है कि यह सोलह महाजनपदों में से एक जनपद था । उस काल में इसे चेदि जनपद के नाम से जाना जाता था । 'कर्पूर मंजरी' में कहा गया है -

"नदीनाम मेखलासुता निरीयानाम रणविग्रह ।
कवीनाम च सुरानन्दस चेदी मण्डल मण्डानाम ॥"

पार्टिजर इतिहासकार भी चेदि जनपद को महाभारत काल में मानते हैं जिसका राजा शिशुपाल था । महाकवि कालीदास ने इस प्रदेश को दशार्ण नाम से अपने ग्रन्थ मेघदूत में सम्बोधित किया है -

"पाण्डुच्छायो पवनवृतयः केतकैः सूचि भिन्नै
नीड़ारम्भैर्तहवलि भुजाकुल ग्राम चैत्याः
त्वय्यासन्नै परिणत फलश्याम जम्बूवनान्ताः
संयत्स्यन्ते कतिपयदिन स्थायिहंसा दशार्णाः ॥(४)

इस प्रदेश को दशार्ण सम्भवतः इसलिए कहा गया है कि यह प्रदेश धसान नदी के किनारे बसा है ।(५)

ऋग्वेद की एक दान स्तुति में चैद्य कुश द्वारा एक ब्राहम्ण अतिथि को सौ ऊंट और एक हजार गायें दान देने का उल्लेख मिलता है । इतिहासकारों ने इस चैद्य कुश को पहिचाना है । किसी किसी ने इसे चेदि देश के राजा कुश को महाकाव्यों में वर्णित राजा वशु के रूप में भी पहिचाना है । पुराणों में चेदि के प्राचीन इतिहास के बारे में पर्याप्त जानकारी मिलती है। विदर्भ के पौत्र और केशिक के पुत्र चिदि ने यमुना के दक्षिण में चैद्य वंश की स्थापना की।

कुरू के पुत्र सुधन्वा की चौथी पीढ़ी में वसु हुआ जिसने चेदि राज्य को जीता और एक नये चेदि राज्य की स्थापना की। कहा जाता है कि वसु ने यह क्षेत्र यादवों से जीता था और इसकी विजय के बाद ही उसने चैद्य उपरिचर की उपाधि धारण की। इतिहासकारों ने इसी राजा वसु को ऋग्वेद में वर्णित राजा कुश के रूप में पहिचाना है। चेदि राजा दमघोष, उसका पुत्र शिशुपाल तथा उसका पुत्र धृष्टकेतु पाण्डवों के समकालीन थे।(६)

बुन्देलखण्ड में चार लाख वर्षों के प्राचीन अनार्य असभ्य लोगों के चिन्ह पाये जाते हैं।(७)

मनुष्य ने मानवोचित ज्ञान की आरम्भिक शिक्षा की सीमा पर पदार्पण करके सर्वप्रथम शिकार आदि में सुविधा के विचार से तीरों के लिए पत्थर के फल तथा कुल्हाड़ी, छुरे आदि बनाये थे। ऐसे प्रस्तर अस्त्र-शस्त्र बुन्देलखण्ड में कई स्थानों पर मिलते हैं।(८)

इस बुन्देलखण्ड में सभ्य आर्यकुलों के सिवाय प्राचीन अनार्य कुलों की कितनी ही असभ्य जंगली, नंगी धड़ंगी जातियाँ कौदंर सौंर आदि कई स्थानों पर इस समय भी हैं जो इस भूभाग के संबंध में आर्यों से पूर्व का स्पष्ट संकेत देती हैं।(९)आज से लगभग ८ लाख वर्षों से ४ लाख वर्ष पहले तक बुन्देलखण्ड में नितान्त अज्ञात स्थिति के आदिम असभ्य अनार्यों का निवास था।(१०) परन्तु पत्थर के जो तीर, अस्त्र शस्त्र आदि प्राप्त हुए हैं, उन्हें इतिहासकारों ने ४ लाख वर्ष प्राचीन माना है। चार लाख वर्ष ईसा पूर्व से ६६०० वर्ष ईसा पूर्व तक यही स्थिति रही।(११)आठ लाख से ४ लाख वर्ष ईसा पूर्व तक इस क्षेत्र में आदिम निवासी रहते थे। चार लाख वर्ष ईसा पूर्व से ६६०० वर्ष ईसा पूर्व के मध्य प्रस्तर कालीन दस्यु, राक्षस, आदि अनार्य लोग यहाँ पर रहते थे। ईसापूर्व ६६०० से ६००० वर्ष ईसापूर्व तक तिब्बती, बर्मी, कोल, कूकी, मुटिया, लेपचा, मुंडा, संथाल, भील तथा ६००० वर्ष ईसा पूर्व से ५६०० वर्ष ईसा पूर्व तक नागवंशीय लोग यहाँ के निवासी रहे। ५[illegible]० वर्ष ईसा पूर्व से ५६०० वर्ष ईसा पूर्व तक द्राविण गौड़, तमिल,तैलंग, कनारी, खांड (दैत्य, दानव, गरूण) लोग यहाँ के निवासी रहे। फिर ५६०० वर्ष ईसा पूर्व से आदित्य, सुर, देव,आदि यहाँ पर रहे अर्थात आर्यों का यहाँ पर प्रवेश हुआ।(१२) इस प्रदेश में कोलारियन जाति (कोलों) का ईसा पूर्व ६००० वर्ष होना कुछ न्यायसंगत प्रतीत नहीं होता है। एक तथ्य स्पष्ट है कि कोलों को लोहे का अच्छा ज्ञान था जिसके आधार पर उन्होंने लोहे के उपकरण बनाये और इन लौह उपकरणों का समय ईसा से १६०० वर्ष पूर्व से अधिक नहीं माना जाता है।(१३) अतः कोल जाति यहाँ पर ६००० वर्ष ईसा पूर्व रही है, यह तथ्य सत्य नहीं लगता अलबत्ता ईसापूर्व १६०० से १०००

वर्ष तक लौह उपकरणों की प्राप्ति से यह निष्कर्ष अवश्य निकाला जा सकता है कि कोल सभ्यता का यहाँ पर उस समय प्रभाव रहा होगा ।

ईसापूर्व ५६०० वर्ष पहले इस देश में आर्यों का प्रवेश माना जाता है । वहीं भारत पर आर्यों के तथाकथित आक्रमण के सिद्धान्त के अनुसार एक जाति जिसका नाम आय था १५०० वर्ष ईसा पूर्व भारत में प्रविष्ट हुयी और उन्होंने यहाँ के मूल निवासियों को जिन्हें 'द्रविण' तथा आस्ट्रिक मूल कहा गया,को जीतकर उन पर अपनी भाषा व धर्म को थोप दिया । (१४)

आर्यों के विषय में यह भी माना जा सकता है कि मूलतः आर्य एक जाति थी जो एक जगह रहती थी और एक भाषा बोलती थी । बाद में वे बिछुड़कर विभिन्न दिशाओ में चल पड़े । जो पश्चिम की ओर गये, उनसे यूरोप के अनेक जन बने । जो पूरव की ओर गये, वे ईरानी और भारतीय कहलाये । आदिम आर्य भाषा को बाद की संस्कृत, यूनानी, लातीनी,ट्यूटन, कोल्तिक, स्लावोनी आदि भाषाओं में सुरक्षित कुछ अवशेषों के माध्यम से पहचानना संभव हैं । इसी से उक्त भाषायी सिद्धान्त की पुष्टि की जाती है (१५) किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से आर्य नामक ऐसी जाति की निश्चित पहचान संभव नही हैं, जो कि किसी काल विशेष में विश्व में किसी भी भाग में रही हो । (१६) सुसंस्कृत आर्य एशिया की सबसे ज्यादा बंजर भूमि से उत्पन्न नहीं हो सकते थे किन्तु यह कहा जा सकता है कि आर्यो के समय का मध्य एशिया आज के मध्य एशिया से सर्वथा भिन्न रहा होगा । ऐतिहासिक काल में भी इन प्रदेशों की ऋतु में पर्याप्त अन्तर आ चुका है । भूगर्भशास्त्रियों का प्रमाणित विचार है कि इस क्षेत्र में वर्षा की मात्रा में बहुत कमी आ गयी है और इसीलिए प्राचीन लेखकों द्वारा जो प्रदेश उपजाऊ बताये गये हैं वे आज रेगिस्तान हैं । (१७) स्व० बालगंगाधर तिलक के अनुसार आर्यों का वास्तविक निवास स्थान उत्तरी हिम महासागर का प्रदेश था । वेदों में भी ६-६ महीनों के दिन रात का उल्लेख मिलता है जो उत्तरी हिम महासागर प्रदेशों में ही पाये जाते है । ईरानी पुस्तकों से भी ज्ञात होता है कि आर्यों के मूल निवास स्थान में लम्बी शीत ऋतुयें होती थीं । हिन्दुओं का पारम्परिक स्वग उत्तर का 'मेरू' ही है इन परिस्थितियों में तिलक के विचारों व उनकी नक्षत्रीय गणना को साधारणतः नकारा नहीं जा सकता है । (१८) गाईल्स ने यूरोप में डेन्यूब नदी की घाटी एवं हंगरी को आर्यों का मूल स्थान माना है । एडवर्ड मेयर, ओल्डेनवर्ग, कीथ ने मध्य एशिया के पामीर क्षेत्र को आर्यों का मूल निवास स्थान माना है । नेहरिगं एवं प्रो० गार्डनचाईल्स, पोकार्नी ने दक्षिणी रूस को आर्यों का मूल निवास स्थान माना है । मैक्स मूलर, जे०जी० रीड ने मध्य एशिया में वैक्ट्रिया को आर्यों का मूल निवास स्थल बताया है । मैम्स मूलर ने इसका

उल्लेख लेक्चर्स आन दि सांईस आफ लैंग्वेज में किया है । इन मतों के साथ ही डा० अविनाश चन्द्र ने आर्यों का मूल निवास स्थान सप्त सैंधव प्रदेश माना है । श्री एस०डी० कल्ला ने भारत में कश्मीर अथवा हिमालय प्रदेश को आर्यों को मूल निवास स्थान माना है ।(१६) कुछ विद्वानों के मतानुसार आर्यों का आगमन पिछड़े हुए आदिवासियों का अति उन्नत आर्यों द्वारा वशीकरण है, जो भारत में सभ्यता लाये जिन्होंने यहाँ एक उन्नत समाज की स्थापना की। (२०)

यह बहुप्रचारित दुष्ट सिद्धान्त हैं कि लगभग ३००० वर्ष ई०पू० एक बृहत सभ्यता सिन्धु नदी घाटी में फैली हुई थी तथा हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो जिसका प्रतिनिधित्व करते थे। यह सभ्यता वैदिक काल से भी पूर्व की थी और द्रविड़ लोगों द्वारा इसका विकास किया गया था । इसी सिद्धान्त के अन्तर्गत भारोपीय यायावर जाति (खानाबदोश) ने जो कि आर्य कहलाते थे, आक्रमण करके इस सिन्धु घाटी की सभ्यता को बर्बाद कर दिया तथा लगभग १५०० वर्ष ई०पू० कई झुण्डों में संगठित होकर अफगानिस्तान के मार्ग से भारतवर्ष में प्रवेश किया । इस आर्य आक्रमण के कारण इतिहास में एक अन्धकार युग पैदा हो गया और इस अन्धकार युग के पश्चात गंगा नदी के क्षेत्र में आर्य द्रविड़ सहयोग से पुनः यह सभ्यता पनपी । यह सिद्धान्त भाषायी आधार पर ही आधारित है । भारोपीय भाषाओं में समानता के कारण इस सिद्धान्त के अनुयायियों की यह इच्छा रही है कि यूरोप से लेकर भारत तक भारोपीय भाषाओं के बोलने वालों का उद्‌गम स्थल स्थापित करके यहीं से विखराव बतला दिया जाये जिसके परिणाम स्वरूप यह कहा जा सके कि आर्य विभिन्न स्थानों पर जाकर बस गये , परन्तु यह सब पुरातत्वीय तथ्यों पर आधारित नहीं रहा है । क्रानोलाजीज इन ओल्ड वर्ल्ड आर्किलोजी के अनुसार इसने सांस्कृतिक विकास के बहुत से सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्यों को परिवर्तित कर दिया । इसके अनुसार सिन्धु नदी घाटी की परम्परा एक ऐसी सांस्कृतिक अभिछिन्नता का प्रतिनिधित्व करती है जो संभवतः ७०००वर्ष ई०पू० से लेकर प्रारंभिक ई० शताब्दियों तक फैली दिखलाई पड़ती है । जिम शैफर के अनुसार दक्षिण एशिया पर किसी भी काल में चाहे वह प्रागैतिहासिक हो अथवा आद्य ऐतिहासिक हो, किसी भी भारतीय आर्य अथवा यूरोपियन ने कभी भी कोई आक्रमण नहीं किया ।

आधुनिक उत्खनन से प्राप्त सामग्री पर हुए विश्लेषण, पाकिस्तान और पश्चिमी भारत के ऊपर से लिए गये उपग्रह चित्रों के अध्ययन तथा व्यापक पैमाने पर भूगर्भ जल सर्वेक्षण की आख्याओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि प्राचीन काल में पश्चिमी भारत में एक विशाल नदी बहा करती थी । इसका प्रवाह मार्ग सिन्धु नदी के समानान्तर जैसा था ।

यही नदी भारत की प्राचीन संस्कृति का मुख्य आश्रय रही है। सिन्धु घाटी की सभ्यता के स्थल सिन्धु नदी के किनारे नहीं मिले हैं, बल्कि वे अधिकतर उस नदी पर मिले हैं, जो पहल सिन्धु नदी के समानान्तर बहा करती थी, और वह नदी वर्तमान समय में दिल्ली के पश्चिम में बहती है और जिसे हम घग्घर नदी कहते हैं। यही घग्घर नदी वैदिक काल में सरस्वती नदी के नाम से विख्यात थी। इस नदी का प्रवाह मार्ग अम्बाला की पहाड़ियों से आरंभ होकर गुजरात में कच्छ केरल तक जाता है। पाश्चात्य पुरातत्वविद मार्क केनोयर ने प्राचीन भारत के मानचित्रों में सरस्वती नदी की गहरी रेखा अंकित की है।

सरस्वती लगभग १६०० वर्ष ई०पू० में सूख गयी। इस पर मिले आधुनिकतम अवशेष हड़प्पा काल के हैं। ये अवशेष नदी के तल पर मिले हैं, नदी के तट पर नहीं। यह जानकारी आर्य आक्रमण के सिद्धान्त को खंडित कर देती है अथवा कम से कम सिन्ध घाटी युग से भी पूर्व समय की ओर इंगित करती है। इसका मुख्य कारण है कि वेदों में उस सरस्वती नदी का उल्लेख है जिसे आज घग्घर कहते हैं। यह घग्घर नदी पहले यमुना और परूष्णी (रावी) के मध्य बहकर सागर से मिलती थी। यही सरस्वती, वैदिक जनों (आर्यों) के मातृ प्रदेश का केन्द्र थी। वेदों के इस प्रकार के उल्लेखों से यह संभव नहीं लगता कि वैदिक जनों ने भारत में १५००वर्ष ई०पू० प्रवेश किया हो जब यह सरस्वती नदी सूख चुकी हो। वैदिक साहित्य में सरस्वती नदी के सूखने का क्रमवार उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद (सात ६५.२) में सरस्वती का विशाल नदी के रूप में वर्णन है जो हरे भरे प्रभूत उपजाऊ प्रदेश से बहती हुई सागर में जा गिरती है। यही प्रदेश नहुष, ययाति और पुरू जैसे वैदिक नरेशों की मातृ स्थली है। ऐतरेय ब्राहम्ण में इसको मरू प्रदेश से बहता हुआ बतलाया गया है। महाभारत में कहा गया कि यह मरूप्रदेश में लोप हो गयी। इसका लोप होना समीप भूत की घंटना प्रतीत होती है क्योंकि जहाँ यह सरस्वती सागर से मिलती है उस क्षेत्र को अभी तक पवित्र माना जाता है वस्तुतः वेदों में वर्णित प्रदेश, जिसे सिन्धु और सरस्वती घाटी का प्रदेश कह सकते हैं, हड़प्पा कालीन सभ्यता के समान ही है। वैदिक संस्कृति से इसके तादात्म्य की बात भी स्पष्ट हो जाती है।(२१)

शोर्तुगै जैसे हड़प्पा कालीन अवशेष स्थलों के अफगानिस्तान में आमनदी पर मिलने से प्रगट होता है कि भारतीय संस्कृति मध्य एशिया तक फैली हुई थी। इस बात के कोई भी वास्तविक प्रमाण नहीं है कि मध्य एशिया की संस्कृति भारत में फैली हुई थी, चाहे वह हड़प्पा कालीन हो अथवा उत्तर हड़प्पा युग की। इसके विपरीत अफगानिस्तान के नदियों के नाम, जो एक ऐतिहासिक प्रमाण है, अफगानिस्तान पर पड़े। इस हड़प्पा (वैदिक) संस्कृति के

प्रभाव के अन्तर्गत ही परिभाषित किये जा सकते हैं । अफगानिस्तान की हराकिनी नदी जिसे कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने सरस्वती होने का अभिमत प्रकट किया है, कभी भी मूल वैदिक सरस्वती के साथ तादात्म्य नहीं रखती क्योंकि वेदों में भारत की प्रवाहित विशाल सरस्वती का वर्णन है न कि अफगानिस्तान की हराकिनी जैसी क्षुद्र पर्वतीय नदी का, जो कभी सागर तक पहुँची ही नहीं । प्राचीनकाल में किसी नदी प्रजातीय समूहों के भारत में प्रवेश केकोई साक्ष्य नहीं मिलते ।

सिन्धु घाटी के मूल उत्खनक व्हीलर द्वारा आर्यों के आक्रमण और उनके द्वारा किये गये विध्वंश के संबंध में प्रस्तुत कंकाली साक्ष्य नवीन शोध कार्य के प्रकाश में गलत सिद्ध होकर अमान्य हो गये हैं । नरसंहार सिद्ध करने के लिए जो कंकाल जिसकी संख्या थोड़ी सी है, प्रस्तुत किये गये वे विभिन्न कालों से संबंधित हैं । संस्कृति बोधक शब्द -

आर्य और द्रविड़ ये दोनों शब्द सांस्कृतिक परिवेश के शब्द हैं । इनसे किसी जाति का बोध नहीं होता । यद्यपि उत्तर भारत और दक्षिण भारत में प्रजातीय अन्तर दिखता है। यह उसी प्रकार है जैसे उत्तर और दक्षिण योरोप में । वेदों में आर्य शब्द का अर्थ भद्र, संस्कारित अथवा आध्यात्मिक हैं और इसका प्रचलन विश्लेषण एंव उद्‌वोधन के रुप में किया जाता था । श्री शंकर नारद संवाद के इस श्लोक मे मिलता है -

आवांजानीत भद्रंवः पार्षद प्रवरौहरे :
सुनन्दनन्द नौनाम्ना प्रेषितौ वो मधुद्विषा
समानयन कामेन बज्रन्तुद्रत मार्यका :

अर्थात् हम लोगों को, तुमलोग, भगवान के सुनन्द तथा नन्द नामक श्रेष्ठ पार्षद समझो । श्रीमधुसूदन ने हमें तुम्हारे पास, तुम्हें लेने के लिए भेजा है । हे आर्य शीघ्र चलिए । इससे स्पष्ट हैं कि आर्य शब्द सम्बोधक है ।(२२) यहाँ इसका अर्थ जातीय कदापि नहीं है। बुद्ध ने अपने मत को आर्य मत कहा-"आर्य लोगों की शिक्षा "उन्होंने किसी विशिष्ट जाति के लिए शिक्षा प्रदान की हो, ऐसा नहीं है । जहाँ तक का उपलब्ध इतिहास है उससे यह ज्ञात होता ह कि द्रविड़ संस्कृति से सम्बन्धित भाषा योरोपीय परिवार की नहीं हो सकती है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि भारत में जातीय आधार पर आर्य द्रविड़ विवाद पैदा किया जाये । भारत की आध्यात्मिक संस्कृति में हजारों-हजारों साल से इस सम्पूर्ण उप महाद्वीप का योगदान रहा है।

हड़प्पा सभ्यता का अन्त -

१६०० ई० पू० हड़प्पा कालीन नगरों की समाप्ति के बाद हड़प्पा कालीन सभ्यता का अन्त हो गया ।इसका कारण यह बतलाया गया है कि आर्यों के आक्रमण से यह

संस्कृति नष्ट हो गयी किन्तु नये साक्ष्यों से अब यह प्रमाणित हो गया है कि लोग उन नगरों को छोड़कर चले गये थे न कि उन्हें तहस नहस किया गया था और सरस्वती नदी का सूखना ही इस पलायन का मुख्य कारण रहा था। सिन्धु नदी घाटी युग में सतलज नदी सरस्वती नदी से मिलती थी। बाद में उसने अपना मार्ग बदल दिया और यह सिन्धु से जा मिली। इस कारण आई बाढ़ और जल भराव भी उन नगरों को छोड़कर अन्यत्र जाने का कारण रहे हैं। उधर धीरे-धीरे सरस्वती नदी सूखती चली गयी। नये तथ्यों के प्रकाश से यह स्पष्ट है कि हड़प्पा कालीन नगरों का लोगों द्वारा परित्याग करने के कारण इतिहास में कोई अन्धकार युग नहीं आया बल्कि स्थान परिवर्तन कर अपनी ही संस्कृति को पुनः स्थापन की प्रावस्था का युग निर्मित हुआ जिसमें उन निवासियों की वही अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं का विकास जारी रहा। सांस्कृतिक अविच्छिन्नता (सातत्य) सिन्धु नदी घाटी क्षेत्र को कांस्य और लौह युग से जोड़ती है। वही प्राचीन संस्कृति तत्कालीन कृषि और उद्योग धन्धों के विकास से जुड़कर प्रगति करती रही। इसी संस्कृति के सातत्य का एक भाग वह क्षेत्र है जिसमें अग्निवेदियों का प्रयोग होता था। अग्निवेदियाँ उन वेदियों के समान हैं जिनका उल्लेख वेदों में किया गया है। ऐसी अग्निवेदियाँ हड़प्पा स्थलों में विशेष रूप से पंजाब के काली बगान और गुजरात के लोथल के उत्खनन में बहुतायत से प्राप्त हुई हैं। वास्तव में वेदों से सम्बन्धित अग्निपूजा की हड़प्पा कालीन धार्मिक कृत्यों में प्रमुखता थी।

रंगीन धूसर मृणपात्र जो कि आक्रमणकारी आर्यों के पात्र समझे जाते थे, उन्हें इस क्षेत्र में विकसित होती हुई सांस्कृतिक अविच्छिनता के उत्पाद के रूप में स्वीकार करके, हड़प्पा शैली से जोड़ दिया गया है। इसी प्रकार से लोहा को भी यह माना जाता रहा है कि आक्रमणकारी आर्य इसे अपने साथ लाये थे, परन्तु इसको भी अब अविच्छिन सांस्कृतिक विकास से जोड़ दिया गया है।

अश्व के विषय में यह मान्यता रही है कि आर्यों का प्रतिनिधि १५०० ई०पू० तक भारत भूमि में मिलता ही नहीं था,अब इसी अश्व के गंगा के मैदानों में २००० ई०पू० से लेकर ६००० ई०पू० तक की काल सीमा में पाये जाने के प्रमाणों से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो गयी है कि आर्य कहीं बाहर से नहीं आये बल्कि वे इसी भारत भूमि के थे और हैं।

सरस्वती नदी पर केन्द्रित वैदिक संस्कृति स्थान परिवर्तित करके पौराणिक संस्कृति के रूप में गंगा नदी पर केन्द्रित हो गयी। यह घटना उन पुरातत्वीय साक्ष्यों से मेल खाती है जिनसे स्पष्ट होता है कि सरस्वती केन्द्रित हड़प्पा संस्कृति १०००ई०पू० विखर कर गंगा केन्द्रित संस्कृति के रूप में पुनः निर्मित हुई। वेदकाल में होने वाले अनुष्ठानों के आधार-नक्षत्र

और राशि थे जिनमें चन्द्रमा अपनी गति करता है। उस समय बर्ष का आरम्भ दक्षिण अयनांत (मकरसक्रान्ति) से होता था। साथ ही उत्तर अयनांत (कर्क सक्रान्ति) की भी गणना थी। इस प्रकार से वेदों में ज्योतिष सन्दर्भ मिलते हैं जिनका उपयोग वेदों के निर्धारण में सहायक हो सकता है। उत्तरकालीन वैदिक रचनायें जैसे वेदांक ज्योतिष (५) कोशितकी ब्राहम्ण (Xix-3) और बोबौधायन श्रोत सूत्रा (XX-1-29)१३०० ई० पू०की एक तिथि पर प्रकाश डालते हैं। जब आश्लेष नक्षत्रा का मध्य (२३ २०कर्क) में कर्क सक्रान्ति पड़ी और घनिष्ट नक्षत्र (२३ २०वृश्चिक) के लगते मकर सक्रान्ति पड़ी। इस टिप्पणी का उल्लेख वराहमिहिर द्वारा अपनी वृहत् सहिंता (००-१) में किया गया है।

अथर्ववेद (xx७,२) यजुर्वेद तैत्तरीय सहिंता और कई ब्राहम्ण जैसे शतपथ के अनुसार कृत्तिका (२६-४० मेष) (१-१० ००वृष) पूर्वीय केन्द्र (महाविषुव) से संबंधित है और मघा नक्षत्र कर्क सक्रान्ति (०·१३-२० सिंह) पर आया। २५०० ई०पू० के आस पास की तिथि का उल्लेख है। यह बात सत्य है कि वेदों में अन्य तिथियाँ भी ऋग्वेद की ज्योतिष गणना में आती हैं। इन तिथियों को पाश्चात्य विद्वानों ने अनदेखा कर रखा है क्योंकि उनका पूर्वाग्रह यह है कि आकाशीय नक्षत्रों की गणना करने में हिन्दू अवैज्ञानिक पद्धति अपनाते हैं और उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता किन्तु प्राचीन भारत की सभ्यता संबंधी पुरातत्व के नय तथ्यों की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। अमेरिका वासी सुभाष काक एक प्रमुख वैदिक विद्वान हैं। इन्होंने ऋग्वेद में गणित और ज्योतिष के कुछ गूढ़ संकेत ढूँढ़ निकाले हैं जिनसे वैदिक पचांग और २५०० ई०पू० या इससे भी पूर्वकाल के नवीन संदर्भों को जाना जा सकता है। उनका कहना है कि वेदकालीन लोगों ने ग्रहों की संयुक्ति काल की भी गणना कर ली थी। उनके अनुसार प्राचीन भारत की प्रचलित ब्राह्मी लिपि सिन्धु नदी घाटी की लिपि से उतरकर आयी हैं।

कुछ विद्वान आर्य आक्रमण की क्रियाविधि पर संदेह करते है कि कैसे मध्य एशिया की ऊसर अनुपजाऊ भूमि से इतनी बड़ी जनसंख्या निकल पड़ी जिसने भारत से लेकर योरोप तक सभ्य देशों को रौंद डाला ? कैसे इन आक्रमण-कारियों ने इतने प्रगतिशील बहुसंख्यक लोगों को बदलकर रख दिया? हड़प्पा काल में भारत बड़ी आबादी का देश था जिसमें अनेक समृद्ध परिपूर्ण नगर और ग्राम थे। कैसे एक असंगठित खानाबदोश जंगली जाति ने यहाँ की भाषा, धर्म और संस्कृति को इतनी सफलता से मटियामेट कर दिया ? यहाँ तक कि मुसलमान अपनी आक्रमणकारी फौजों के साथ लगातार एक हजार वर्ष से अधिक भारत को अपना गुलाम बनाये रखने के बाद भी इतनी सफलता से हिन्दू संस्कृति को मिटा नहीं सके ?

वैदिक साहित्य में कहीं भी आर्य आक्रमण का उल्लेख नहीं मिलता है । बल्कि अपनी मातृभूमि की पवित्र नदी सरस्वती से अपनी संस्कृति को सुदूर देशों में फैलाने की बात कही है।

ऋग्वेद में युद्धों का वर्णन है किन्तु ये युद्ध तो उस एक संस्कृति के माननेवालों के परस्पर युद्ध हैं ।वेदों ने कभी अपने लोगों को खानाबदोश नहीं कहा है। वैदिक लोगों के शत्रु कोई विदेशी अथवा देशी आक्रमणकारी नहीं थे बल्कि उसी संस्कृति के लोग थे । वैदिक लोगों के शत्रुओं को दस्यु, राक्षस और असुर नाम से जाना गया है । ये नाम उनके अभावात्मक गुणों को इंगित करता है जो कि आर्यों के जंगली एवं बर्बर होने का खण्डन करती है । वैदिक संस्कृत भाषा संसार की सुन्दरतम् और शक्तिशाली भाषा है । इसमें छन्दों की रचना संश्लिष्ट वृत्तों में है और उनकी पृष्ठभूमि में एक परिष्कृत संस्कृति झलकती है । यह कहना अत्यन्त संदिग्ध है कि मध्य एशिया के खानाबदोश जैसी असभ्य जाति ऐसी भाषा का प्रयोग करें जिसमें भारत के सहस्त्रों शताब्दियों के प्राचीन धर्म और गहन संस्कृति को संजोकर रखा चला आ रहा हो ।

अध्यात्मिक शान्ति से परिपूर्ण वैदिक मन्त्र इस बात का प्रमाण है कि खानाबदोश जैसी बर्बर लुटेरी जाति के पास ऐसे दस्तावेज नहीं हो सकते । श्री अरविन्द, स्वामीदयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द जैसे अनेक भारतीय विचारकों और ऋषियों ने आर्य आक्रमण सिद्धान्त का खण्डन किया है ।(२३)

इस सबसे यह पूर्णतः स्पष्ट है कि आर्य इस भूमि पर कहीं बाहर से आये हैं, पूर्णतः असत्य एवं निराधार है । हड़प्पा सभ्यता, वैदिक सभ्यता का ही एक चरण है और इस सभ्यता का उद्गम व विकास सरस्वती नदी के लुप्त प्रवाह तट पर हुआ था ।(२४)

चेदि और दशार्ण ये दोनों एक सत्तात्मक राज्य थे । इनकी राजसंस्था अन्य तत्कालीन राज्यों के समान ही रही होगी । राजा राजघराने का ही व्यक्ति रहता था और राजा के ज्येष्ठ पुत्र को राजा चुने जाने का प्रथम अधिकार था । परन्तु प्रजा ही राजा को चुनती थी।(२५)

विक्रम संवत के लगभग ३०० वर्ष पहले मगध का राज्य बहुत शक्तिशाली हो गया था । बुद्ध भगवान का देहांत हुए लगभग ४५० वर्ष हो चुके थे जब सिकन्दर न यूनान से चढ़ाई की थी । उस समय नन्द घराने का राजा राज्य करता था । इस समय बुन्देलखण्ड की ठीक स्थिति क्या थी, यह नहीं कहा जा सकता । सिकन्दर के लौट जाने के बाद प्राचीन राज घराने का एक युवक जिसका नाम चन्द्रगुप्त मौर्य था, नंदवंश के शासक को मारकर स्वयं राजा बन गया । चन्द्रगुप्त अत्यन्त बुद्धिमान और पराक्रमी राजा था । इसका मंत्री

कौटिल्य था जो अपनी अर्थशास्त्रीय नीति के कारण चाणक्य के नाम से जग प्रसिद्ध हुआ। चन्द्रगुप्त मौर्य के साम्राज्य में नर्मदा के उत्तर का भाग आ गया था इससे बुन्देलखण्ड भी चन्द्रगुप्त मौर्य के साम्राज्य के अन्तर्गत आ गया था। चन्द्रगुप्त के मरने पर उसका लड़का बिंदुसार विक्रम संवत के २४० वर्ष पूर्व साम्राज्य का अधिकारी हुआ। (२६)

मौर्य साम्राज्य बड़ा होने के कारण उसके चार बड़े विभाग थे। प्रत्येक विभाग की राजधानी में साम्राज्य की ओर से एक शासक नियुक्त रहता था। बिंदुसार के राज्य काल में उसका लड़का अशोक, उज्जैन का शासक नियुक्त किया गया था। यही विक्रम सवंत के २१५ वर्ष पूर्व अपने पिता के मरने पर साम्राज्य का अधिकारी हुआ। (२७) सवंत के १७४ वर्ष पूर्व अशोक के देहान्त के बाद अशोक का साम्राज्य दो भागों में बँट गया। अनुमान किया जाता है कि बुन्देलखण्ड पश्चिम भाग में ही रहा। मौर्य साम्राज्य का सेनापति पुष्यमित्र शुंग अपने स्वामी ब्रहद्रथ को मारकर स्वयं राजा बन गया। इस प्रकार शुंगों के राज्यकाल का आरंभ विक्रम सवंत के १२७ वर्ष पूर्व हुआ।यह वंश, जाति का ब्राहम्ण था। (२८) राजकुमार अग्निमित्र विदिशा में राज्यपाल के रूप में नियुक्त था जहाँ से बुन्देलखण्ड तथा पूर्वी मालवा का शासन चलाता था। सम्भवतः शुगों के समय में ही यवनों के आक्रमण हुए। यवनों के आक्रमण का उल्लेख पंतजलि के महाकाव्य में भी हुआ है। इससे यह क्षेत्र भी प्रभावित हुआ होगा। हमीरपुर जिले के पचोखरा ग्राम से मिले हुए इण्डोग्रीक सिक्के इस मत को बल प्रदान करते हैं कि इस क्षेत्र में यवन राजाओं का शासन रहा होगा। शुगों के पश्चात यह साम्राज्य छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। लगभग प्रथम शताब्दी के अन्तिम भाग में यह क्षेत्र कुषाण वंश के महान सम्राट कनिष्क के साम्राज्य में हो गया था। इस वंश का अधिपत्य यहाँ अधिक वर्षों तक नहीं रह सका। पद्मावती के नाग राजाओं ने कुषाणों को सम्भवतः वासुदेव (लगभघ १४५-१७६ ई०) के समय में यहाँ से खदेड़ दिया। नाग सिक्कों पर ग्यारह नाग राजाओं के नाम मिलते हैं जो इस प्रकार है - वृष , भीम, स्कन्द, बसु,ब्रहस्पति, विभु, रवि, भव, प्रभाकर, देन और गणपति। नाग राजाओं ने इस प्रदेश पर दूसरी शताब्दी के अन्त से चौथी शताब्दी तक राज्य किया। कुछ विद्वानों का मत है कि बुन्देलखण्ड क्षेत्र पर गुप्त राजाओं के अन्तर्गत सर्वप्रथम समुद्रगुप्त का ही, आधिपत्य स्थापित हुआ था। उसकी प्रयाग प्रशस्ति में गणपतिनाग, नागसेन जैसे नागराजाओं को पराजित करने का उल्लेखहै। समुद्रगुप्त (३३५-३७५ई०) का एरण अभिलेख इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण है कि उस समय तक यह क्षेत्र गुप्त साम्राज्य का अंग बन चुका था। इस क्षेत्र से समुद्रगुप्त के सिक्के भी प्राप्त हुये हैं। (२९)

एरण की भौगोलिक स्थिति महत्वपूर्ण थी । एरण एक ओर मालवा का तथा दूसरी ओर बुन्देलखण्ड का प्रवेशद्वार माना जाता है । उज्जैयिनी से एक राजमार्ग विंदिशा तक जाता था । विंदिशा से एरण होता हुआ वह दशार्ण कौशम्बी और काशी की ओर जाता था ।(३०) पूर्वी मालवा की सीमा रेखा पर स्थित होने के कारण यह दशार्ण को चेदि जनपद से जोड़ता था।(३१) नागराजाओं का कार्यकाल विक्रम सवंत ५७ से भीमनाथ के समय से नागवंश के अन्तिम राजा देवनाग विक्रम सवंत २७७ तक रहा है । इस नाग राज्य के छठें राजा गणपति नाग (विक्रम सवंत २०२) के समय से ही समुद्रगुप्त ने इसे अपने अधिकार क्षेत्र में ले लिया था । इसका वर्णन इलाहाबाद के विजय स्तम्भ में अंकित है ।

ज़बलपुर के भेड़ाघाट नामक स्थान से कुछ मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जिनपर यह लिखा है कि इन मूर्तियों की स्थापना भूमक की पुत्री ने की है । इससे ज्ञात होता है कि भूमक (क्षत्रप) का राज्य यहाँ तक रहा है । इससे यह तथ्य उद्‌घाटित होता है कि सारे बुन्देलखण्ड पर शक लोगों का राज्य हो गया । मालवा का यह पहला मध्य क्षत्रप चेष्टन था जिसने विक्रमी सवंत १३८ में उज्जैन को अपनी राजधानी बनाया । वि० सवंत ३५८ तक मालवा पर महाक्षत्रपों का राज्य रहा । शकों के प्रान्तीय शासक, क्षत्रप, महाक्षत्रपों के बाद बुन्देलखण्ड में कुषाणों का राज्य स्थापित हुआ । काबुल, पंजाब, मथुरा के अलावा मालवा में भी इनके सिक्के मिले हैं कुछ सिक्के झाँसी के एरच ग्राम में भी मिले हैं जो कि कुषाणों के अधिपत्य का इस बुन्देलखण्ड पर होना प्रमाणित करते हैं । कुषाणों का अन्तिम राजा कनिष्क था जिसके मरते ही बुन्देलखण्ड से कुषाणों का राज्य समाप्त प्रायः हो गया था । इसी समय मगध में गुप्त राज्य की ताकत बढ़ने लगी और बुन्देलखण्ड भी गुप्तों की उस ताकत से अछूता न रहा और उसे भी उनके आधीन होना पड़ा । समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात चन्द्रगुप्त द्वितीय (वि० संवत ४३१) ने राज्य को सम्भाला और राज्य की विस्तारवादी परम्परा को आगे बढ़ाया । उदयगिरि गढ़वा तथा साँची के लेख इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण है यह क्षेत्र गुप्त साम्राज्य अधिपत्य में था । गुप्तों के साम्राज्य के पश्चात् इस बुन्देलखण्ड पर हूणों का साम्राज्य रहा । इन हूणों का राज्यकाल ४० वर्ष से अधिक नहीं रहा । ग्वालियर एवं मंडसर के शिलालेख इस बात के प्रमाण हैं ।

ह्वेनसांग अपने भारत भ्रमण के सम्बन्ध में लिखता है कि पूर्वी मालवा, ग्वालियर तथा बुन्देलखण्ड पर ब्राहम्ण राज्य करते थे । बुन्देलखण्ड को उसने चि-चि-टो से सम्बोधित किया है।(३२)

सारा बुन्देलखण्ड हर्षवर्द्धन के राज्य में था । हर्षवर्द्धन ने कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया तथा वि० सवंत ७०३ में मृत्यु को प्राप्त हुआ । इस बुन्देलखण्ड को अपने अधिपत्य में करने की ललक सभी के मन में रही है । इसलिए इन ब्राहम्णों को हराकर गुर्जर प्रतिहारों ने अपना साम्राज्य स्थापित किया । देवगढ़ अभिलेख (३३) में इस बात का वर्णन मिलता है कि कन्नौज में जिस भोज राजा का वर्णन मिलता है, वह गुर्जर प्रतिहार राजा मिहिर भोज (ठ८३६-८८५ई०) ही है जिसका विक्रम सवंत ६१६ अंकित है । भोज द्वारा चलाये गये वराह प्रकार के सिक्के इस क्षेत्र में काफी मिलते हैं जो कि ६वी शताब्दी में बुन्देलखण्ड पर भोजों के राज्य को प्रमाणित करते हैं ।

चेदि राज्य का आरम्भ काल वि०सवंत ३०६ माना जाता है।(३४) वि०सवंत ३०७ में चेदि का राजा काकर्वण था जिसे शिशुपाल के वंशजों ने मारा । वि० सवंत ५५७ में शंकरगण चेदि का राजा हुआ । वि० सवंत ६०७ में बुद्ध ने चेदि की राज्यसत्ता सम्हाली। इसी का पुत्र मंगल चालुक्य से हारा था । वि० सवंत ७३७ में हैहय राजा हुआ जिसे विनयादित्य चालुक्य ने हराया । वि० सवंत ७८७ में हैहय की राजकुमारी लोक महादेवी का विवाह विक्रमादित्य चालुक्य द्वितीय के साथ सम्पन्न हुआ । वि० सवंत ६३२ में कोकल्ल प्रथम ने राज्य सत्ता सम्हाली । यह कन्नोज के राजा भोज का समकालीन था । वि० सवंत ६५७ में मुग्धतुंग, ६८२ में युवराज तथा वि० सवंत १००७ में लक्ष्मण ने राज्य सत्ता सम्हाली। इसी वर्ष विलहरी ने लक्ष्मण सागर तालाब बनवाया । वि० सवंत १०३२ में युवराज जो कि वाक्पति का समकालीन था, ने सत्ता पर अपना अधिपत्य बनाया । वि० सवंत १०७७ में कोकल्ल द्वितीय का पुत्र गांगेय देव राजगद्दी पर बैठा । यह बड़ा प्रतापी राजा था । जबलपुर के निकट कुम्ही नामक ग्राम में एक ताम्रलेख मिला है । (३५) जिसमें यह वर्णन है कि गांगेय देव प्रयाग के निकट अक्षयवर के नीचे मृत्यु को प्राप्त हुए और उनकी मृत्यु के पश्चात उनकी १५० रानियाँ सती हो गयी । इस राजा का युद्ध कन्नोज के राठौर राजाओं से हुआ । वि०११०० सवंत में गांगेयदेव के पुत्र कर्णदिव ने राज्य सम्हाला और उसका वृह्द विस्तार किया । प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता काशीप्रसाद जायसवाल उसे भारतीय नेपोलियन कहते हैं । इसके समय में कलाचुरि वर्ष की कीर्ति सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गई थी । इसका कार्यकाल वि०सवंत ११०० से ११२५ तक रहा । कर्णदेव के पश्चात् उसका पुत्र यश कर्ण (वि०सवंत ११३७) तथा उसके पश्चात उसका पुत्र गयाकर्ण (वि० सवंत ११७२) एवं उसके बाद उसका पुत्र नरसिंहदेव वि० सवंत १२०८ और फिर उसके पश्चात् वि० सवंत १२३६ में उसका भाई जयसिंह देव राजगद्दी पर बैठा। वि० सवंत १२३८ का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है जिसमें जयसिंह के पुत्र अजयसिंह का नाम

आया है वि० सवंत १२३८ के पश्चात् कोई लेख इन राजाओं के नहीं मिलते हैं । चन्देलों की राज्य सत्ता बुन्देलखण्ड में लगभग ३०० वर्षों तक रही । प्रारम्भ में ये चन्देल प्रतिहारों के सामन्त थे । इधर राष्ट्रकूटों के उदय से सम्पूर्ण देश में राजनैतिक उथलपुथल प्रारंभ हो गई थी । राष्ट्रकूटों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में डा० फ्लाट का विचार था कि राष्ट्र कूट वास्तव में उत्तर के राठौर के वंशज थे । राधनपुर के लेख में इस वंश के गोविन्द यदुवंशी कृष्ण से की गई है।

" यस्मिन्सर्वगुणाश्रये क्षितिपतौ श्री राष्ट्र कूटान्वयो ।
जाते यादव वंशवन्मधुरि पावासीदलंध्य परैः ॥

राधनपुर ताम्रपत्र

चन्देल राजा धंगदेव के खजुराहो अभिलेख (३६) से ज्ञात होता है कि वि० संवत १०११के बाद ही उसका स्वतंत्र शासन उस क्षेत्र पर स्थापित हो पाया था । जो देश चन्देल लोगों के अधिकार में रहा । वह धसान नदी के पूर्व में और विन्ध्याचल पर्वत के उत्तर और पश्चिम में था । यह उत्तर में यमुना नदी तक फैला था और दक्षिण में केन नदी के उदगम् स्थान तक फैला था । केन नदी इस प्रदेश के बीच में से बहती है और महोबा तथा खजुराहो इसके पश्चिम में और कालिंजर तथा अजयगढ़ इसके पूर्व में हैं । इस प्रदेश में आजकल के बाँदा और हमीरपुर जिले तथा चरखारी, छतरपुर, बिजावर, जैतपुर, अजयगढ़, और पन्ना की रियासतें थीं । चन्देल राजाओं ने अपनी उन्नति के दिनों में इस प्रान्त की सीमा पश्चिम में बेतवा नदी तक बढ़ा ली थी ।(३७)

विक्रम संवत ८५७ से १४४७ तक चन्देलों का राज्य इस क्षेत्र पर रहा । चन्देल राजाओं में नानुकदेव के पूर्व के राजाओं का कोई वर्णन या शिलालेख आदि नहीं मिलता है । इससे यह स्पष्ट है कि नवीं शताब्दी के प्रारंभ में ही चन्देलों ने अपने राज्य की नीवें डाली और इसका सूत्रपात नन्नुक ने किया जो कि पहले प्रतिहारों के सामन्त थे ।(३८) नाममेह प्रतिहार राजा की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी पुत्र रामभद्र ने राज्य सम्हाला परन्तु वह उसका निर्वाह करने में असमर्थ रहा और इसीकारण नन्नुक ने अपने स्वतंत्र राज्य की घोषणा कर दी और उचेहरा को अपनी राजधानी बनाया । नन्नुक के पश्चात् उसका पुत्र वाकपति शासक बना। वाकपति के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र जयशक्ति या जेजा शासक बना । कहा जाता है कि इसी के नाम पर इस क्षेत्र का नाम जेजाकमुक्ति या जेजामुकि पड़ा ।(३९) जयशक्ति प्रतापी राजा था और इसने अपने राज्य को ठोस आधार प्रदान करते हुए अपनी सीमाओं का विस्तार किया । उसके तत्पश्चात् उसके पुत्र राहिल को उत्तराधिकार मिला । राहिल ने (८९०से९१०) चन्देल शक्ति को संगठित किया । इसने रोहिला नामक ग्राम बसाया जिसमें एक सुन्दर मन्दिर भी बनवाया

जो कि आज भी जीर्ण शीर्ण अवस्था में महोबा से दो मील की दूरी पर स्थित है तथा अपने प्राचीन वैभव का उद्घोष कर रहा है ।(४०)

राहिल के बाद उसके पुत्र हर्षदेव (६१०से६३०) ने राज्य सत्ता सम्हाली और चन्देल शक्ति को मजबूत बनाया । इसने कन्नोज के राजा क्षितिपाक (महिपाल) पर आक्रमण किया परन्तु विजयश्री का वरण न कर सका और उसकी आधीनता स्वीकार कर ली ।(४१) हर्षदेव ने प्रतिहारों की ग्रहकलह में दखल देकर महिपाल को गद्दी पर बिठाने में सहायता की और चन्देल वंस की प्रतिष्ठा बढ़ाई ।(४२) हर्षदेव के पश्चात् उसका पुत्र यशोवर्म्मन राज्य का उत्तराधिकारी बना । खजुराहो शिलालेख में वर्णित है कि इसने अपने पराक्रम से गौड़, खस, कोशल, काशमीर, कन्नोज, मालवा, चेदि, कुरू, गुर्जर आदि देशों को विजय करके कालिंजर के कलाचुरियों को हराकर, कांलिजर पर अपना अधिकार कर लिया । इसने कन्नोज के राजा को भी हराकर वहाँ से एक विष्णु प्रतिमा लाया ।(४३) यशोवर्म्मन के पश्चात् उसका पुत्र धंगदेव गद्दी पर बैठा । खजुराहो शिलालेख के अनुसार यह विक्रम संवत १०५६ में मृत्यु को प्राप्त हुआ ।इसने शिवजी का एक विशाल मन्दिर बनवाया था । यह बड़ा प्रतापी राजा था । भटिंडा के राजा जयपाल पर जब गजनी के मुसलमान बादशाह सुबुक्तगीन ने आक्रमण किया तब उसने अपनी सहायता के लिए भारतवर्ष के कई क्षत्रिय राजाओं को सहायता के लिए बुलवाया था । उस समय धंगदेव भी अपनी विशाल सेना को लेकर उसकी सहायता को गया था । राजा धंगदेव ने अपने आसपास के कई राज्यों को जीतकर अपने राज्य की सीमा का विस्तार किया था । इसका राज्य उत्तर में यमुना पूर्व में काशी, पश्चिम में वेतवा तथा दक्षिण में केन नदी के उदगम् के पास तक पहुँच गया था । इसके राज्य का विस्तार १२० मील लम्बा व १०० माल चौड़ा हो गया था ।(४४)

धंगदेव के पश्चात उसके पुत्र गंडदेव को उत्तराधिकार प्राप्त हुआ (वि०संवत १०५६) । यह भी अत्यन्त पराक्रमी राजा था । वि० संवत १०७७ में जब कन्नोज के राजा महेन्द्रपाल ने महमूद गजनवी की अधीनता स्वीकार की तब इस बात से क्रुद्ध होकर राजा धंगदेव ने कन्नोज पर चढ़ाई करके उसे अपने अधिकार में लेकर वापिस चला आया था । इस समाचार के सुनते महमूद गजनवी ने वि०संवत १०७८ में पुनः चढ़ाई की । इस बार वह सीधा कांलिजर की ओर गया, जिसका धंगदेव ने बड़ी वीरता के साथ विरोध किया और परिणाम स्वरूप महमूद गजनवी को वापिस लौटाना पड़ा ।(४५) डा०एस०डी० त्रिवेदी अपनी पुस्तक बुन्देलखण्ड का पुरातत्व में 'तबकात ए अकबरी' अनुवाद पृष्ठ १२ का सन्दर्भ देते हुए लिखते हैं कि सन् १०२३ ई० में महमूद ने कांलिजर फतेह किया और प्रभूत धन लूटकर चला गया । गंडदेव के पश्चात्

विद्याधर राज्य का उत्तराधिकारी बना जिसका बहुत दिनों तक कन्नोज के राजा त्रिलोचन पाल से युद्ध चला। विद्याधर के पश्चात् उसके पुत्र विजयपाल (वि०संवत १०६७) को राजा सत्ता प्राप्त हुई। वि०संवत ११०७ में विजयपाल के पुत्र देववर्मदिव राज्य के राजा हुए। वि०संवत ११२० में देववर्मा के पुत्र कीर्तिवर्मा ने सत्ता सम्हाली। इसका राज्य १०६०-११००ई० तक रहा। यह बड़ा प्रतापी राजा था। महोबा के पास स्थित कीर्तिसागर ताल, इसी का बनवाया हुआ है। इसके नाम के स्वर्ण के सिक्के भी प्राप्त हुए हैं जिनपर श्रीमत् कीर्तिवर्म्मन देवअंकित है। चेदिदेश के कलाचुरि राजा कर्णदिव को कीर्तिवर्म्मा ने हरा दिया था। कीर्तिवर्म्मा के पश्चात् उसका पुत्र हलक्षण अथवा सलक्षण गद्दी पर आसीन हुआ। इसने भी अपने नाम के स्वर्ण तथा ताबें के सिक्के चलवाये। हलक्षण के पश्चात् जयवर्म्मन राजगद्दी पर बैठा (वि० संवत ११६७) इसने भी अपने नाम के सिक्के चलवाये। इसके नाम के कुछ सिक्के ब्रिटिश म्यूजियम इग्लैंड में सुरक्षित हैं। जयवर्म्मन के पश्चात् उसके छोटे भाई हलक्षण द्वितीय (वि० संवत ११७७) गद्दी पर बैठा। इसने दो वर्षों तक राज्य किया। इसने भी अपने नाम के तांबे के सिक्के चलवाये। इसने कन्नोज के परिहार राजा से मैत्री करली थी। इसके बाद सदनवर्मा का राज्य प्रारंभ हुआ। इसने लगभग११२५-६३ ई० के मध्य महोबा के निकट मदनसागर नामक तालाब व दो मन्दिरों का निर्माण कराया। इसने गुर्जर प्रान्त के राजा को भी शिकस्त दी थी। इसने जो नगर वसाया वह मदनपुर के नाम से जाना जाता है। मदनवर्मा के बहुत सारे शिलालेख प्राप्त हैं। कांलिजर , खजुराहो, हरिहर आदि उनमें प्रमुख हैं। मदनवर्मा के पश्चात कीर्तिवर्मा गद्दी पर बैठा। इसका राज्य काल शायद एक वर्ष ही रहा हो ततपश्चात् परमार्दिदेव या परमाल राजगद्दी पर.बैठे। यह बड़े पराक्रमी, विचारवान व्यक्ति थे। आल्हामहाकाव्य के अनुसार उसकी राजधानी महोबा थी। उसके यहाँ एक आल्हा नाम का एक प्रसिद्ध योद्धा था जोकि दशरथ का पुत्र था तथा वह बनाफर जाति का था कहा जाता है कि आल्हा ने अपनी बचपन की अवस्था में ही सुल्तान महमूद के विरूद्ध पृथ्वीराज चौहान आदि को सहयोग देकर विजयश्री दिलवायी थी। परमाल और पृथवीराज चौहान का युद्ध वि०संवत १२३६ में हुआ। इस युद्ध में परमाल की हार हुई और धसान नदी के पश्चिम का भाग पृथ्वीराज चौहान के अधिकार में चला गया। इसके बाद वि० संवत १२६० में कुतुबुद्दीन ऐवक ने चन्देल राज्य पर चढ़ाई की। इसने चन्देल राजा परमाल को कांलिजर में घेरा जहाँ पर परमाल के मंत्री ने ही उसे मौत के घाट उतार दिया। फिर कुतुबुद्दीन ऐवक ने कांलिजर किले पर अधिकार करके परमाल के मंत्री को मौत की नींद सुला दिया और फिर मन्दिरों को गिरवाकर मस्जिदें बनवाने का कार्य प्रारंभ हुआ परन्तु यह ज्यादा दिनों तक न हो सका क्योंकि परमाल के पुत्र त्रैलोक्यवर्म्मन ने कांलिजर के किले को कुतुबुद्दीन ऐबक के अधिकार से अपने अधिकार में ले लिया था विक्रम संवत १२६६ का एक शिलालेख

अजयगढ में मिला है । वि० संवत १२६० में दिल्ली के बादशाह शमसुद्दीन अलतमश ने बुन्देलखण्ड पर चढ़ाई की थी तथा कालिंजर के किले से सवा करोड़ स्वर्ण मुद्रायें लूटकर ले गया था । ककरेड़ी ग्राम (कालिंजर के पूर्व ४० मील पर स्थित) से प्राप्त वि०संवत १२३२, १२५२ एवं १२६६ के शिलालेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि त्रैलेक्यवर्म्मन ने कलाचुरि वंश के अन्तिम शासक राजा विजयसिंह को परास्त कर नर्मदा नदी के उत्तरीय भाग को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया था ।

त्रैलोक्यवर्म्मन के पश्चात् उसका पुत्र वीर वर्म्मन प्रथम (वि०संवत १२६७) गद्दी पर बैठा । इसने नलपुरा के राजागोविन्द और मधुबनी के राजा गोपाल तथा गोपगिरि ग्वालियर). के राजा हरिदेव से युद्ध किया । वीरवम्मर्न के पश्चात उसके पुत्र भोजवम्मर्न ने (वि०संवत १३०६) गद्दी सम्हाली । इसके समय में भी कालिजंर दुर्ग चन्देलों के अधीन था । भोजवम्मर्न के पश्चात वीरवर्म्मन द्वितीय (वीरनृप) (विक्रम संवत १३५७) गद्दी पर वैठा और फिर उसका पुत्र शशांक भूप (वि०सवंत१३८७) गद्दी पर बैठा । शशांक भूप के पश्चात वि० संवत १४०३ मे भिलमा देव राजा बना । इस बात की पुष्टि अजयगढ के समीप मिले लेख से होती है । भिलमादेव के बाद परमार्दिदेव द्वितीय वि०संवत १४४७ में गद्दी पर बैठा । परमार्दिदेव द्वितीय के लगभग एक सौ वर्षों बाद कीरत सिंह का राज्य काल प्रारंभ हुआ। इस समय तक कालिंजर चन्देलों के ही पास था । सन् १५४५ में कीरत सिंह , शेरशाह के साथ लड़ा और उसके एक सैनिक (शेरशाह) द्वारा मारा गया । दुर्गावती इसी की कन्या थी जो कि गढ़मंडल के राजा दलपति शाह को ब्याही गई थी ।(४७) वि० संवत १६०० में जिस समय शेरशाह ने कालिंजर पर चढ़ाई की थी, उस समय यहाँ पर बुन्देलों का राज्य था और भारतीचन्द्र ओड़क्षे के राजा ने इसका सामना करने के लिए अपने भाई मधुकरशाह को भेजा था परन्तु कुछ लाभ न हुआ और किला मुसलमानों के कब्जे में चला गया ।(४८)ई० सन् १५३० में बाबर ने चन्देरी पर आक्रमण किया था । बाद के मुगल सम्राटों ने भी आक्रमण करके बुन्देलखण्ड के कुछ भागों को अपने कब्जे में कर लिया था । गुजरात के शासक, बहादुर शाह ने मालवा को अपने अधिकार में ले लिया था परन्तु हुमायूँ ने उसे हराकर मालवा पर अपना अधिकार कर लिया। हुमायूँ ने कालिंजर पर आक्रमण किया था परन्तु कालिंजर के चन्देल राजा ने हुमायूँ की अधीनता स्वीकार कर ली थी, इस कारण हुमायूँ ने कालिंजर को नहीं घेरा । वि० संवत १६१८ में मालवा का शासक बाजबहादुर था जिसे हुमायूँ के पुत्र अकबर ने हराकर, मालवा पर अपना अधिकार कर लिया था । इस समय में बुन्देलखण्ड का पश्चिमी भाग मालवा के अन्तर्गत ही समझा जाता था । इस समय बुन्देलखण्ड के पूर्व में बघेलों का राज्य बढ़ रहा था तथा कालिंजर

एवं बाधौगढ़ दोनों ही बघेल राजा रामचन्द्र ने कालिंजर एवं उसके आसपास क बहुत सा क्षेत्र अकबर को दे दिया था। कालिंजर का किला लगभग १२० वर्षों तक मुगलों के हाथों में रहा। रामचन्द्र से कालिंजर का किला लेने पर बुन्देलखण्ड का अधिकांश भाग अकबर के अधीन हो गया था। पूर्व में कालिंजर पश्चिम में धसान उत्तर की ओर कालपी का आसपास का क्षेत्र व दक्षिण में ओड़क्षा तक मुगलों का राज्य हो गया था। अकबर के मरने के बाद उसका लड़का जहाँगीर तख्त पर बैठा और जहाँगीर के पश्चात् वि०संवत १६८४ में शाहजहाँ बादशाह बना। इसी के समय में ओड़क्षे के राजा जुझारसिंह बुन्देले ने स्वतंत्र होने का प्रयास किया परन्तु शाहजहाँ ने उसे हरा दिया। शाहजहाँ के लड़कों में औरंगजेब युद्ध में सफल हुआ। औरंगजेब के समय में बुन्देलखण्ड में बुन्देले और महाराष्ट्र में मराठे बढ़े। गौड़ लोगों ने भी बुन्देलखण्ड के कुछ भागों पर शासन किया। ई० सन १५१५ में संग्राम सिंह गद्दी पर बैठा। बुन्देलखण्ड कते कुछ भागों पर शासन किया। ई० सन १५३१ में रूद्रप्रताप ने अपनी राजधानी गढ़कुन्डार से ओरक्षा बदली। ओरक्षा वंशवृक्ष में वीरसिंह देव (१६०६-१६२७) ई० बड़ा प्रतापी राजा था। उसने वि० संवत १६८२ में महावत खाँ की कैद से जहाँगीर को छुड़ाने के लिएअपने पुत्र मंगतराय को भेजा था जिससे जहाँगीर इनसे बहुत खुश था। इन्होंने अपने बाहुबल से अपनी रियासत की आमदनी दो करोड़ रूपये कर ली थी। इनकी रियासत में ८१ परगने और १२५००० ग्राम थे। इन्होने ओरक्षे को पुनः बसाया और उसका नाम जहाँगीरपुर रखा और बाद में वहीं पर एक जहाँगीर महल भी बनवाया। इन्होंने बीरपुर ग्राम बसाया एवं वीरसागर नाम का तालाब भी खुदवाया। कहा जाता है कि इन्होंने मथुरा में ८१ मन स्वर्ण का दान किया था। यह दान वि० संवत १६८१ में किया गया था। महाराज वीर सिंह के सलाहकार कृपाराम सिंह और कन्हरदास ब्राहम्ण थे। कृपाराम सेनापति तथा कन्हरदास मंत्री थे। जो कि चपंतराय महाराज के अन्तरंग सहयोगी थे

चम्पतराय के पिता ओरक्षा के संस्थापक राजा रूद्रप्रताप के तृतीय पुत्र उदयजीत के पौत्र भागवतराय थे। राजा रूद्रप्रताप की मृत्यु के पश्चात् महारानी मेहरबान अपने पुत्र उदयजीत सहित ओरक्षा छोड़कर कटेरा चली गई। उदयजीत ने कटेरा के पास महेबा नाम का एक ग्राम बसाया। वहीं तीन पीढ़ियों तक साधारण अवस्था में उनके वंशज रहते रहे। चम्पत राय इसी वंश के एक मात्र प्रथम वीर थे जिन्होंने काफी प्रतिष्ठा पाई। ये जैसे ही युवाहुए, महाराज वीरसिंह देव बुन्देला की सेवा में चले आये।

अकबर के विरूद्ध महाराज वीरसिंह के युद्ध में चम्पतराय ने विशेष सहयोग दिया। चम्पतराय ने महाराज वीरसिंह की सभी लड़ाइयों में भरपूर सहयोग दिया वीरसिंह

बुन्देला का मुगलों के अधीन रहना, चम्पतराय को कभी अच्छा नहीं लगा । इसीलिए जहाँगीर की मृत्यु के पश्चात् वीरसिंह ने शाहजहाँ को कर देना बन्द करा दिया और ओरक्षा राज्य स्वतंत्र घोषित कर दिया । शाहजहाँ को यह बात खटकी और उसने बाकीखाँ को, बुन्देलों को दबाने के लिए भेजा । चम्पतराय ने वीरसिंह को पूर्ण सहयोग दिया और समूचा बुन्दोलखण्ड स्वतंत्र प्राय हो गया। बुन्देलखण्ड के छोटे बड़े सभी जागीरदारों के स्वाभिमान को जागृत कर चम्पतराय ने बुन्देलखण्ड में अजेय सामर्थ्य खड़ी कर दी थी जिसके कारण बाकीखाँ को परास्त होकर लौटना पड़ा फिर गुस्से से ग्रसित शाहजहाँ ने पुनः ओरक्षे पर आक्रमण कर दिया जिसमें चम्पतराय के नेतृत्व में बुन्देलों ने भारत के शंहशाह शाहजहाँ को भागने के लिए विवश कर दिया । इस प्रकार से तीन बार शाहजहाँ को चम्पतराय के साथ युद्ध में मुँहकी खानी पड़ी । तब शाहजहाँ ने वीरसिंह से सन्धि का प्रस्ताव रखा । इसी समय वीरसिंह देव की मृत्यु हो गई । अस्तु इतनी कम अवधि में तीन तीन लड़ाइयाँ लड़ने से बुन्देलों को काफी आर्थिक क्षति हो गई थी अतः सन्धि करना उचित जानकर सन्धि की गई । चम्पतराय की वीरता की भूरि भूरि प्रशंसा की गई । ओरक्षा राज्य को स्वतंत्र राज्य की मान्यता मिल गई ।(४९)

४ अक्टुवर १६३५ ई० को मुगलों ने ओरक्षे पर अधिकार करके चंदेरी के राजा देवीसिंह को वहाँ का राजा घोषित कर दिया और जुझारसिंह ने अपने परिवार सहित धामोनी और बाद में चौरागढ़ के किले में शरण ली ।

जुझार सिंह के राज्य को मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया और वहाँ के शासन के लिए शाही कर्मचारी नियुक्त कर दिये गये।(५०)

इधर औरंगजेब चम्पतराय से सदैव द्वेनष रखता था इसी कारण सदैव चंपतराय को परेशान करने का प्रयत्न करत रहता था । अन्त में चंपतराय व महारानी ने अपनी अपनी कटारों से आत्म हत्या कर ली । इस समय चंपतराय के पुत्र छत्रसाल सहरा में, अपनी बहिन के यहाँ ज्चर से तपते हुए गये थे जहाँ उनकी कोई पूँछ नहीं हुई । इससे वे वापिस लौट आये। छत्रसाल का जन्म ज्येष्ठ शुक्ल तीज शुक्रवार संवत १७०६ को विलंबि नामक मोर पहाड़ी के जंगल में कटेरा नामक ग्राम से तीन कोस की दूरी पर फकर कचनए स्थान पर हुआ था। जिस समय छत्रसाल का जन्म हुआ उस समय चम्पतराय की सेना मुगलों से लड़ रही थी। इनके जन्म के विषय में निम्न दोहा प्रचलित हैं -

"संवत सत्रह सै अरू छै, सुभ ज्येष्ठ सुदि तिथि तीजि बखानी ।
दिन शुक्रवार है, शिवके नक्षत्र में , पुत्र जन्यो, राय चम्पतरानी ॥"

छत्रसाल का बाल्यकाल बड़े अभाव में बीता । अपने बाल्यकाल से ही मुगलों से लोहा लेने में उन्हें बहुत आनन्द आता था । उनकी हार्दिक इच्छा थी कि वे अपने स्वर्गनिवासी पिता चंपतराय की मृत्यु का बदला मुगलों से लेकर , पुनः स्वतंत्र राज्य स्थापित करें ।

जब छत्रसाल ८० वर्ष के थे परन्तु फिर भी जमकर लोहा लिया और बगंश खाँ को मुँह की खानी पड़ी । जनवरी १७२७ में दुवारा मुहम्मद खाँ बगंश ने प्रचण्ड आक्रमण करके छात्रसाल को जैतपुर के किले में घेर कर आत्म समपर्ण हेतु बाध्य किया । अतः छत्रसाल ने पेशवा बाजी राव को सहायता हेतु आमंत्रित किया और अपने पत्र में यह लिखकर भेजाकि

"जो गति ग्राह गजेन्द्र की, सो गति भई है आय ।
बाजी जात बुन्देल की , राखौ बाजी आय ॥

पेशवा बाजीराव तुरन्त बुन्देलखण्ड आये और महारज छत्रसाल को बंधन मुक्त कराया । उनका ८१ वर्ष का दीर्घजीवन मुगल सत्ता के बुन्देलखण्ड में पूर्णतः विनष्ट होने के साथ ही १७३१ ई० में समाप्त हो गया ।

सरस्वती के वरद् पुत्र कृपाण के सच्चे उपासक वीर छत्रसाल बुन्देला की गणना, बुन्देलखण्ड में देवता स्वरूप की जाती है । उनके न्यायप्रिय शासन, धार्मिक सहिष्णुता आदि गुणों की सदैव ही स्मृति की जाती है । महाराज छत्रसाल के राज्य की ससीमाओं के विषय में प्रचलित दोहा काफी प्रमाणिक लगता है -

" इत यमुना, उत नर्मदा, इत चंबल उत टौंस ।
छत्रसाल सो लरन की, रही न काहू हौंस ॥"(५१)

अस्तु महाराज छत्रसाल तथा मरहठों की मित्रता स बुन्देलखण्ड पर मरहठों का अधिकार परिलक्षित होने लगा । सन् १७८१ के आसपास दिल्ली के सुल्तान ने पेशवा को एक सनद दी जिसने सारे भारत में तहलका मचा दिया और इसी से मरहठों को बुन्देलखण्ड का शासक बनने का अधिकार मिल गया । बसई की सन्धि के अनुसार सम्पूर्ण बुन्देळखण्ड ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकार में आ गया । स०१८०१ में १ अक्टूवर को बाँदा जनपद के शासक शमसेरबहादुर की सेना तथा अंग्रेजी सेना मे केननदी के किनारे युद्ध हुआ लेकिन शमसेर बहादुर हार गये और सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड अंग्रेजों के अधिकार में आ गया । भारत के प्रथम स्वाधीनता संग्राम में अंग्रेजों के विरूद्ध १८५७ में बुन्देलखण्ड ने भी अपनी आवाज बुलन्द की और झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के साथ बानपुर, शाहगढ़ तथा बाँदा आदि पड़ौसी रियासतों ने भी अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया । इस क्रान्ति में बाँदा के नबाव और राव

साहब ने तात्या टोपे के साथ प्रमुख भूमिकायें निभाई । १४ अगस्त १८५७ को अग्रेजी सेना से इन तीनों का युद्ध हुआ और ये परास्त हो गये। इन्होंने क्रान्तिकारियों का संगठन करके अग्रेजों से टक्कर ली किन्तु ये असफल रहे । १८ अप्रैल १८५६ में तात्या टोपे को फाँसी दे दी गई। बुन्देलखण्ड का इतिहास समुज्ज्वल है कि जोकि बुन्देलखण्ड के प्रति उनके अमर बलिदान की कथा आज भी प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान करती है। (५२) किसी कवि की ये पक्तियाँ बुन्देलखण्ड के इतिहास को दृष्टिगत रखते हुए, बिल्कुल सत्य प्रतीत होती हैं -

" पानी दार यहाँ का पानी, आग यहाँ के पानी में "

संदर्भ-सूची

१- मधुकर पाक्षिक मार्च १६४५ - पृष्ठ ४८३
२- "बुन्देलखण्ड दर्शन" - मोतीलाल त्रिपाठी पृष्ठ ११
३- "बुन्देलखण्ड केसरी महाराज छत्रसाल बुन्देला" - डा० भगवान दास गुप्त पृष्ठ १७
४- 'मेघदूत' पूर्वमेध - कालीदास श्लोक संख्या २५
५- संकल्प वर्ष १६७० - 'बुन्देलखण्ड परिचय' पृष्ठ ७
६- सहयोग वर्ष १६८६ - 'बुन्देलखण्ड की इतिहास यात्रा" पृष्ठ५३
७- बुन्देलखण्ड का इतिहास - दीवान प्रतिपाल सिंह पृष्ठ ३२५
८- बुन्देलखण्ड का इतिहास - दीवान प्रतिपाल सिंह पृष्ठ ३२६
६- बुन्देलखण्ड का इतिहास- दीवान प्रतिपाल सिंह पृष्ठ ३१६
१०- 'बुन्देलखण्ड का इतिहास' - दीवान प्रतिपाल सिंह पृष्ठ ३२६
११- 'बुन्देलखण्ड का इतिहास - दीवान प्रतिपाल सिंह पृष्ठ ३२७
१२- बुन्देलखण्ड का इतिहास '- दीवान प्रतिपाल सिंह पृष्ठ ३२२,३२३
१३- साक्षात्कार - डा० जयदयाल सक्सेना (६० वर्ष) दिनांक १४-३-६५
१४- राष्ट्रदेव जनवरी ६५ पृष्ठ ३
१५- 'प्राचीन भारत' - राधा कुमुद मुखर्जी पृष्ठ २५
१६- प्राचीन भारत का इतिहास - झा एवं श्रीमाली पृष्ठ ११५
१७- प्राचीन भारत का इतिहास - बी० डी० महाजन पृष्ठ ७५
१८- प्राचीन भारत का इतिहास - बी० डी० महाजन पृष्ठ ७६
१६- सामान्य अध्ययन पृष्ठ १८-१६
२०- भारत का इतिहास को०आ० अतोनोना,लेविन व कोतोवसकी पृष्ठ ४२-४३
२१- 'पाञ्चजन्य' जनवरी ६५ - पृष्ठ ६३-६४
२२- ब्रम्हाण्ड पुराण - तृतीय अध्यायती- श्लोक संख्या १८७
२३- "आर्य आक्रमण पर एक ठोकर और - फ्राले -डेविड -राष्ट्र धर्म १६६५ पृष्ठ ८०-८१व८२
२४- शोधपत्र 'जालौन नगर की ऐतिहासिक पृष्टबूमि एवं शक्तिवाहन संस्कृति' हरीमोहन पुरवार दिनांक १४-३-सोमवार-अभिनन्दन गेस्ट हाउस, उरई
२५- बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास- गोरेलाल तिवारी पृष्ठ ७

२६- बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास- गोरेलाल तिवारी पृष्ठ १०

२७- बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास - गोरेलाल तिवारी पृष्ठ १०

२८- बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास - गोरेलाल तिवारी पृष्ठ ११

२६- 'बुन्देलखण्ड का पुरातत्व' - डा०एस०डी० त्रिवेदी पृष्ठ १४

३०- बुले - आफ ए० ह० हि० - खण्ड १ पृष्ठ २५

३१- म०प्र० के नगवंशीय सिक्के - अतिमा बाजपेयी - पृष्ठ २

३२- क्वाइन्स आफ दि रीजन आफ बुन्देलखण्ड निबन्ध, - एच० बी० त्रिवेदी संगोष्ठी वर्ष १६८४ राजकीय संग्रहालय, झाँसी

३३- 'आर्किलोजिकल सर्वे रिपोर्ट ' - खण्ड १० एलेक्जेन्डर कनिंघम - पृष्ठ १०१

३४- 'बुन्देलखण्ड का संछित्त इतिहास - गोरेलाल तिवारी - पृष्ठ ४०वर्ष

३५- आकिलोजिकतु सर्वे रिपोर्ट' - खण्ड ६ एलेक्जेन्डर कनिधंम - पृष्ठ ८७

३६- दि डायनैस्टिक हिस्ट्री आफ नार्दन इण्डिया' खण्ड दो- रे०एच०सी० - पृष्ठ ६७२

३७- 'बुन्देलखण्ड का संछित्त इतिहास' - गोरेलाल तिवारी - पृष्ठ ४१-४

३८- 'बुन्देलखण्ड का पुरातत्व' - डा० एस०डी० त्रिवेदी - पृष्ठ १६

३६ 'बुन्देलखण्ड का संछित्त इतिहास - गोरेलाल तिवारी' पृष्ठ ४२वर्ष

४०- बुन्देलखण्ड का संछित्त इतिहास - गोरेलाल तिवारी - पृष्ठ ४४

४१- 'बुन्देलखण्ड का संछित्त इतिहास - गोरेलाल तिवारी - पृष्ठ ४४

४२- 'चंदेलॉज आफ जेजाकमुकि ' - आर० के० दीक्षित - पृष्ठ ३२-३६

४३- 'बुन्देलख का संछित्त इतिहास' - गोरेलाल तिवारी - पृष्ठ ४५

४४- 'बुन्देलखण्ड का संछित्त इतिहास - गोरेलाल तिवारी - पृष्ठ ४६

४५- ' बुन्देलखण्ड का संछित्त इतिहास - गोरेलाल तिवारी - पृष्ठ ४६

४६- 'बुन्देलखण्ड का संछित्त इतिहास - गोरेलाल तिवारी - पृष्ठ ४६से ५२ तक

४७- आर्किलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया एवं जनरल ए०से० बंगाल भाग एक - एलेक्जेन्डर कनिघंम - वर्ष पृष्ठ ४२

४८- बुन्देलखण्ड का संछित्त इतिहास - गोरेलाल तिवारी - पृष्ठ ६२

४६- शक्ति पुत्र छत्रसाल' - सोमदत्त पथिक त्रिपाठी - पृष्ठ ६२-६३

५०- बुन्देलखण्ड केसरी महराज छत्रसाल बुन्देला - डा०भगवान दास गुप्ता - पृष्ठ २

५१- बुन्देलखण्ड दर्शन मोतीलाल त्रिपाठी अशांत - पृष्ठ ७७-७८

५२- बुन्देलखण्ड का इतिहास - मोतीलाल त्रिपाठी अशांत- पृष्ठ ६१

बुन्देलखण्ड नाम की व्युत्पत्ति एंव सीमा

''यमुना उत्तर और नर्मदा दक्षिण अंचल
पूर्व ओर है टौंस पश्चिमांचल में चम्बल
उर पर केन धसान बेतवा सिन्ध बही है
विकट विन्ध्य की शैल श्रेणियां फैल रही है
प्रकृति छटा बुन्देलखण्ड़ स्वछन्द भूमि है ।

स्व०मुंशी अजमेरी जी की उक्त पंक्तिया जँहा बुन्देलखण्ङ का यशोगान करती है वही उसकी सीमाओं का संकेत भी देती है । यमुना, नर्मदा, चम्वल और टौंस नदियों से घिरा समूचा क्षेत्र बुन्देलखण्ड़ कहलाता है । यह भारत वर्ष का ह्रदयस्थल भी जाना जाता है । इस भूभाग का सर्वाधिक प्रृचलित नाम बुन्देलखण्ड़ है जो कि लगभग १४वीं शताब्दी में पड़ा । इससे पूर्व महाभारत काल में यह क्षेत्र चेदि क्षेत्र रहा था तथा इसका राजा शिशुपाल (कृष्ण का फुफेरा भाई) था महाकवि कालिदास ने इस प्रदेश को दशार्ण कहा है । अपने मेघदूत में उन्होंने लिखा है -

पाण्डुछायो पवनवृतयः केतकैः सूचि भिन्ने
नीड़ारम्भर्तहवलि भुजाकुल ग्राम चैत्याः
त्वय्यासन्नै परिणत फलश्याम जम्बूबनान्ताः
संयत्स्यन्ते कतिपयदिन स्थायिहंसा दशार्णः ॥

इस प्रदेश को दशार्ण सम्भवतः इसलिए कहा गया है किं यह प्रदेश धसान नदी के किनारे बसा है । चन्देलों के समय में चन्देलवंश के तृतीय महापराक्रमी राजा जेजा अथवा जयशक्ति के नाम पर इस प्रदेश का नाम जेजाभुक्ति अथवा जेजाकमुकि पड़ा। (1)

इस क्षेत्र में जुझौति गोत्र के ब्राह्मणों का प्रभुत्व एवं बाहुल्य होने के कारण कदाचित इस क्षेत्र का नाम जुझौति प्रदेश रहा हो । इसका उल्लेख स्कन्द पुराण के ३० वें अध्याय में भी मिलता है । इस भूभाग के बुन्देलखण्ड नाम की सार्थकता ५०0-६०० वर्षों से अधिक पुरानी प्रतीत नहीं होती । जनश्रुति के अनुसार गहरवार वंशीय महराज हेमकर्ण से जब उनके भाइयों द्वारा राज्य छीन लिया गया तब उन्होंने विन्ध्याचल पर्वत पर स्थित माँ विन्ध्यावासिनी की पूजा अर्चना की तथा अपना सिर काटकर माँ विन्ध्यवासिनी के श्रीचरणों में अर्पित करने जा रहे थे, उसी समय महराज हेमकर्ण के रक्त की कुछ बूदें पृथ्वी पर गिर पड़ी थी इसी से माँ विन्ध्यवासिनी ने प्रकट होकर, उन्हें राज्य प्राप्ति का वरदान दिया ।

अस्तु बूँद से राज्य मिलने के कारण यह क्षेत्र बुन्देलखण्ड तथा राजा बुन्देले कहलायें। गहरवार वंशीय काशीस्थ क्षत्रिय जिन्होंने किन्हीं कारणों से काशी से भागकर विन्ध्यभूमि में अपना प्रभुत्व स्थापित किया, विन्ध्य से सम्पर्क रखने के कारण -

विन्ध्यके - विन्देले बुन्देले कहलाये। (२)

हकीकत-उक-आलिमा में बुन्देलों की उत्पत्ति एक बाँदी के पुत्र के रूप में वर्णित है । इस कथा के अनुसार गहरवार वंश के राजा हरदेव एक बाँदी के साथ खैरागढ़ से आकर ओरक्षा बस गये थे । उसने यहाँ के खँगार राजा का वध करके वेतवा तथा धसान नदी के मध्य भाग को हथिया लिया था जिसके कारण उनके उत्तराधिकारी गण बुन्देला कहलाये।

बुन्देलखण्ड की सीमा के विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद है । महाराजा क्षत्रशाल के विषय में कहा जाने वाला निम्न दोहा एक प्रकार से बुन्देलखण्ड की सीमा निर्धारित करत सा प्रतीत होता है -

'इत यमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टौंस ।
छत्रसाल सो लरन की, रही न काऊ हौंस ।।'' (३)

बुन्देलखण्ड को एक भौगोलिक , भाषिक एवं सांस्कृतिक इकाई मानते हुए उत्तर प्रदेश के पाँच जिले जिनमें जालौन, झाँसी, ललितपुर, बाँदा एवं हमीरपुर तथा मध्यप्रदेश के पन्ना, छतुरपुर, टीकमगढ़ दतिया, सागर, दमोह, नरसिंहपुर , जबलपुर , पटना, होशँगाबाद, रायसेन, विदिशा , गुना, शिवपुरी , ग्वालियर, भिंड आदि १७ जिलों को मानकर बुन्देली भूभाग बुन्देलखण्ड माना जा सकता है । (४)

बुन्देलखण्ड का संछिप्त इतिहास के रचनाकार श्रीगोरेलाल तिवारी के अनुसार बुन्देलखण्ड की सीमाओं का निर्धारण इस प्रकार है -

"भारत के मध्य भाग में नर्मदा के उत्तर और यमुना के दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत की शाखाओं से समाकीर्ण और यमुना की सहायक नदियों के जल से सिंचित सृष्टि - सौन्दर्यालंकृत जो प्रदेश हैं, उसे बुन्देलखण्ड कहते हैं ।"(५)

बुन्देलखण्ड गंगा यमुना के दक्षिण तथा पश्चिम वेतवा नदी से लेकर पूर्व में विन्ध्यवासिनी देवी के मन्दिर तक, दक्षिण में चंदेरी सागर तथा विलहरी जिलों को सम्मिलित कर नर्मदा तक फैला हुआ था । " पुरातत्ववेत्ता एलैक्जेन्डर कनिधंम का यही मत है। (६)

ईर्स्टन इण्डिया भाग दो के पृष्ठ संख्या ४५२ पर बुचमैन की सूचनानुसार अंकित है कि जुझौतिया ब्राह्मणों का इस प्रदेश में बाहुल्य था । वे उत्तर में यमुना से लेकर दक्षिण में नर्मदा तक पश्चिम में ओरक्षा की वेतवा नदी से लेकर पूर्व में बुन्देला नाला तक फैले थे । बुन्देला नाला एक छोटी सी नदी है जो बनारस के पास गंगा में मिलती है । डा० एम०एल० निगम की मान्यता है कि बुन्देलखण्ड में कौशाम्बी , कोसम, मीटा, त्रिपुरी, साँची, उदयगिरि आदि पुरातत्विक स्थल भी सम्मिलित हैं । (७)

बुन्देलखण्ड की सीमा के विषय में डा० जार्ज ग्रियर्सन ने बुन्देली भाषा को आधार मानते हुए लिखा है कि बुन्देलखण्ड के उत्तर में यमुना, उत्तर पश्चिम में चम्बल दक्षिण में मध्यप्रदेश के जबलपुर तथा सागर सम्भाग स्थित है । इसके दक्षिण और पूर्व में रीवा था । बुघेलखण्ड तथा मिर्जापुर की पहाड़ियाँ हैं । (८)

गंगा यमुना , नर्मदा तथा चम्बल से सिंचित प्रदेश में बुन्देलखण्ड मानने वालों में दीवान प्रतिपाल सिंह जी भी हैं । (६)

यहाँ यह भी उल्लेखनीय होगा कि झाँसी जिले के ऐरच स्थान पर भारतीय इतिहास के तथा कथित अन्धकार युग में (२३०BCसे २२०AD) एक राज्य उदय हो रहा था जिसमें दाममित्र राजा की सीमा उत्तर पूर्व में यमुनापार मूसानगर तक फैली थी । (१०) इसमें दीवान प्रतिपाल सिंह की इस बात को यह बल मिलता है कि गंगा नदी के दक्षिणीय क्षेत्र में बुन्देलखण्ड का प्रभाव रहा होगा ।

लखनऊ दूरदर्शन द्वारा प्रसारित "तपोभूमि बुन्देलखण्ड" में बुन्देलखण्ड की सीमाओं का निर्धारण करते हुए कहा गया था कि उत्तर प्रदेश में इटावा, दक्षिण में सागर, पूर्व में वाराणसी तथा पश्चिम में ग्वालियर स्थित है । इस बुन्देलखण्ड में उत्तर प्रदेश के ५ जिले व म० प्र० के २२ जिले सम्मिलित हैं । (११)

"बुन्देलखण्ड में ३५ राज्यथे जिनमें टेहरी अर्थात् उरक्षा, दतिया , क्षत्रपुर , पन्ना, अजयगढ़ मुख्य हैं । (१२)

वर्तमान में उत्तर प्रदेश के ६ जिले जिनमें हमीरपुर , बाँदा , जालौन, झाँसी, ललितपुर तथा वर्ष १९९५ में नव निर्मित जिला महोबा सम्मिलित है तथा मध्य प्रदेश के १७ जिलों को मिलाकर बुन्देलखण्ड का क्षेत्र माना जा सकता है

संदर्भ-सूची

१- मदनपुर लेख - राजा पृथ्वीराज चौहान का वि० संवत १२३६

२- डा० यामिनी श्रीवास्तव - शोधप्रबंध - स्थान नामों का व्युत्पत्तिगत ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अनुशीलन ।
सप्तम अध्याय पृष्ठ सं० २

३- बुन्देलखण्ड का पुरातत्व डा० एस०डी० त्रिवेदी पृष्ठ ३

४- "बुन्देलखण्ड का सीमांकन " डा० नर्मदा प्रसाद गुप्ता - वर्ष १६८८ - पत्रिका सहयोग लखनऊ

५- बुन्देलखण्ड दर्शन मोतीलाल त्रिपाठी अशान्त - पृष्ठ २७

६- दि एन्शिमेन्ट ज्योग्राफी आफ इंडिया - एलेक्जेन्डर कनिघंम - पृष्ठ ४०६

७- 'कल्चरल हिस्ट्री आफ बुन्देलखण्ड 'एम०एल० निगम - पृष्ठ २४

८- 'लिंगवेस्टिक सर्वे आफ इंडिया' खण्ड द्वितीय भाग १ - जार्ज ग्रियरसन - पृष्ठ संख्या ८६

६- पाक्षिक पत्रिका मधुकर - वर्ष १६४५ जनवरी पृष्ठ २१

१०- शोधपत्र - मूसानगर के दाममित्र अभिलेख की पर्हिचान"- ओ०पी०लाल श्रीवास्तव

११- वाडियो कैसिट - तपोभूमि बुन्देलखण्ड '

१२- जगद्वर्णन पं० माधव प्रसाद पृष्ठसंख्या ८४-८५

जालौन जनपद - बुन्देलखण्ड का प्रवेशद्वार

जालौन जनपद भारत का ह्रदय प्रदेश है । इसने कभी भी परतंत्रता में रहना स्वीकार नहीं किया है , इसलिए इसने उत्तर की ओर से दक्षिण की ओर अपनी विजय पतका लहराने की इच्छा से आगे बढ़ते लोगों का सामना करते हुए डटकर लोहा लिया है । किसी भी सत्ता के अधिपत्य में रहना इस बुन्देली भूमि को कभी भी गवारा नही हुआ है । महाभारत काल में इस बुन्देलखण्ड, जो कि उस समय चेदि के नाम से जाना जाता था , का प्रबल प्रतापी राजा शिशुपाल था । उसने भी कभी अपने जीवन पर्यन्त भगवान कृष्ण की अधीनता स्वीकार नहीं की और यहाँ तक की उसने सदैव ही कृष्ण का तिरस्कार तथा अपमान किया । यदि कृष्ण अपने मुकुट में मोर पंख लगाते थे तो शिशुपाल अपने पैर के जूते में मोरपंख लगाकर कृष्ण के प्रति अपना तिरस्कार भाव प्रदर्शित करता था और आज भी शिशुपाल के जूतों की भाँति चमड़े की मोर पंख की आकृति से अंकित "फिचहा" नामक जूतों का प्रचलन इस बुन्देल खण्ड में है। (१)

ईसापूर्व ३२३ में जब सिकन्दर भारत से वापिस लौट गया तब चन्द्रगुप्त मौर्य का कार्यकाल प्रारंभ हुआ उसका साम्राज्य उत्तर में काश्मीर से लेकर दक्षिण में मैसूर तक फैला हुआ था । सिंह नदी के पश्चिम से लेकर हिन्दुकुश तक के प्रदेश उसे यूनानियों से प्राप्त हुए थे । बुन्देलखण्ड में नन्दवंश के विनाश के पश्चात् उसका यहाँ भी अधिपत्य होगा। (२) इस जनपद में अभी तक इस प्रकार के कोई पुरातात्विक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है परन्तु उरई से २५ किलो मी० दूर दक्षिण में ग्रामपुर ऐंधा में सैन्ड स्टोन की कुछ खण्डित अस्पष्ट मूर्तियाँ पड़ी हैं जिनके विषय में यह कहा जाता है कि ये मूर्तियाँ मौर्यकालीन हैं। (३) इससे इस बात का अन्दाजा लगाया जा सकता है कि यह जनपद मौर्य साम्राज्य के प्रभाव में था. और चूंकि मौर्य साम्राज्य का विस्तार दक्षिण तक था अतः यह कहना भी उचित होगा कि मौर्य सेनाओं ने यमुना के दक्षिण में स्थित कालपी जो कि जालौन जनपद की उत्तरी सीमा पर स्थित है, से ही हेकर दक्षिण की यात्रा पूर्ण की होगी ।

इसके पश्चात् लगभग १६५ई० पूर्व में डेमिट्रियस की मृत्यु के पश्चात् उसके तीसरे पुत्र एपोलोड़ोटस डेमिट्रियस का राज्य विस्तार कपिशा से लेकर मथुरा तकऔर दक्षिण पश्चिम में भड़ोंच तथा दक्षिण में बुन्देलखण्ड तथा उसकी राजधानी शाकल (वर्तमान स्यालकोट) थी। (४) इससे भी स्पष्ट है कि बुन्देलखण्ड पर अधिकार हेतु उत्तर से जब उसने (एपोलोड़ोटस) बुन्देलखण्ड पर अधिकार करने का मन बनाया होगा तो उस स्थिति मे

भी यमुना के दक्षिण मे स्थिति कालपी से ही प्रवेशकर बुन्देलखण्ड पर अपना साम्राज्य स्थापित किया होगा । क्योंकि यही मार्ग सबसे सुगम मार्ग था ।

इसके बाद यह जनपद गुप्त साम्राज्य का एक अंग रहा है। (५) समुद्रगुप्त ने आर्यावर्त के गणपति नाग को जो कि बुन्देलखण्ड का तत्कालीन शासक था , हराकर अपनी विजयश्री अंकित की और फिर यहीं से दक्षिण पथ के लिए अंग्रसरित हुआ। (६) इससे से भी यह आभास होता है कि समुद्रगुप्त ने दक्षिण की ओर कूच के लिए पहले इस जनपद पर अपना प्रभुत्व बनाया होगा । गुप्तों के शासन के पश्चात् हर्षवर्धन का अधिपत्य इस जनपद पर रहा और उसकी राजधानी कन्नोज में थी । हर्षवर्धन के पश्चात् यह जनपद मिहिर भोज (८३६-८८५)ई० के शासन में आ गया । उसने ८४३ ई० में बुन्देलखण्ड पर विजय प्राप्त की। (७) तत्पश्चात् कन्नोज के राजाओं ने कालपी को एक राजनैतिक गढ़ बनाना चाहा परन्तु १०वीं शताब्दी में जबकि पूरे भारत में राजपूतों ने कतिपय छोटे छोटे राज्य स्थापित कर दिये थे, चन्देल वंश के राजाओं ने यहाँ एक सुद्रढ़ गढ़ बनवाया । राजपूत काल में राज्यों की शक्ति का प्रतीक उनके गढ़ हुआ करते थे । वह अपने राज्य के मार्मिक स्थलों में गढ़ बनाया करते थे । (यही कारण है कि अब भी बुन्देलखण्ड में अनेकों गढ़ या गढ़ियों के खण्डहर पाये जाते हैं । चन्देलवंश के राजाओं ने ८प्रसिद्ध गढ वनवाये थे । उनमे से कालपी भी एक था । कालपी यमुना नदी पर स्थित थी और कालपी होकर उत्तरी भारत से दक्षिण भारत जाने का एक थल का रास्ता भी था। जल और थल मार्ग के समागम पर स्थित कालपी एक व्यापारिक तथा राजनैतिक केन्द्र हो गया था । उस समय की राजनैतिक व्यवस्था के निरीक्षण से विदित होता है कि यमुना, वेतवा तथा चम्बल के भूभाग पर अधिकार स्थापित करने के लिये कालपी का मजबूत होना आवश्यक था । इसी कारण चन्देलों के समय इसकी काफी उन्नति हुई । चन्देलों के पश्चात् १२०२ ई० में कुतुबुद्दीन एबक ने इसको जीता । इसके बाद कालपी , दिल्ली शासन में एक महत्वपूर्ण स्थान रखने लगी । यहाँ हमेशा अच्छी फौज रखी जाती थी । दक्षिण की ओर प्रहार करने का मुख्य स्थान रहा है यह ।

बाबर के समय में कालपी मुगल राज्य का पश्चिमी फाटक बन गया । बाबर के बाद अकबर के शासन काल में कालपी का इतिहास अत्यन्त रोचक रहा । १५८३ ई० मे अकबर स्वंय कालपी आया था । अकबर कालपी से हाथी खरीदता था और दक्षिण आक्रमण के लिये सेनायें इसी स्थान से चलती थी । औरगंजेब की मृत्यु के पश्चात स० १७०७ में सम्राट बहादुर शाह ने छत्रसाल को सरकारी तौर पर कालपी आदि क्षेत्र दे दिया परन्तु सन १७३४ में मालवा के सूबेदार बंगश खाँ ने दुबारा जोरदार आक्रमण किया जिसका मुकाबला करना

छत्रसाल के लिये असम्भव था जबतक कि दक्षिण से मरहठा उनकी मदत न करे । पेशवा बाजीराव भी खानदेश और मालवा को कुचलकर बुन्देलखण्ड के द्वारा उत्तरी भारत को पहुँचना चाहता था अतः छत्रसाल द्वारा जब पेशवा से सहायता माँगी गई तो पेशवा तुरन्त सहायतार्थ आ गये । (८) इससे कालपी की राजनैतिक तथा सामरिक उपादेयता प्रारम्भिक स्तर पर ही स्पष्ट होती है।

भौगोलिक दृष्टि से यमुना नदी , चम्बल नदी के संगम के बाद तेजी से दक्षिण और पूर्व की तरफ बहती हुई उत्तर की ओर मुड़ जाती है। इकौना के पश्चात इसी स्थान पर गंगा और यमुना का दोआबा का रास्ता दक्षिण भारत को जाने के लिये बन जाता है । इस स्थान पर नदी पार करना सबसे सुगम रहा है । एटं किंग्शन ने लिखा है कि यही स्थान बराबर दक्षिण की ओर प्रस्थान करने के लिये प्रयुक्त रहा है फिलिप जे० व्हाईट ने परगना कालपी के बन्दोबस्त में लिखा कि गंगा यमुना के दुआबा तथा बुन्देलखण्ड में प्रबेश का मार्ग कालपी होकर हमेशा सरल तथा मुख्य मार्ग रहा है । (६)

अब भौगोलिक दृष्टि से से भी विचार किया जाना उचित होगा । बुन्देल खण्ड की स्थिति नक्से पर २३-४५ और २६-५० उत्तरीय तथा ७७-५२ और ८२-० पूर्वीय भूरेखाओं के मध्य में है । बुन्देलखण्ड की सीमा के विषय में अनेकों विद्वानों के अलग अलग मत हैं, परन्तु सभी विद्वानों का एक ही मत है कि बुन्देलखण्ड के उत्तर में यमुना नदी है ।

ईसवी सन १८८१ दिसम्बर में प० माधवप्रसाद की सहायता से लखनऊ में छपी जगद् वर्णन पुस्तक के नक्शा नम्बर ३ में वर्णित है कि यमुना नदी के तट पर कालपी - मथुरा- आगरा- दिल्ली- इटावा - हमीरपुर आदि मुख्य नगर बसते हैं । इसी पुस्तक के नक्शा नम्बर ७ में वर्णन है कि जालौन जिला हमीरपुर के ईशान कोण में स्थित है जिसका क्षेत्रफल १५५५ वर्ग मील है । इसकी कैफियत में वर्णन है कि कालपी का कागज और मिश्री प्रसिद्ध है। जालौन और कोंच भी प्रसिद्ध स्थान है । इस सबसे यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि कालपी जो कि जनपद जालौन का ही एक प्रसिद्ध स्थान है, यमुना के दक्षिण में बसा है । यमुना नदी पार करने के पश्चात् दक्षिण की ओर जाने के लिए सीधा पहला स्थान कालपी पड़ता है । यह शहर २६° ८° आक्षांश उत्तर तथा ७६°-४५° देशान्तर पूर्व में स्थित है । १६वीं शताब्दी में कालपी बुन्देलखण्ड के बड़े व्यापारिक केन्द्रों में से एक था । दिल्ली के सुल्तान, मालवा के हुसंग शाह , तथा जैनपुर के मुख्य, बाबर व हुमायूँ द्वारा अधिग्रहित एवं पुनर्ग्रहीत कालपी पश्चिम प्रवेश हेतु एक द्वार बन गया ।ई० सन १८१६ से १८२३ के मध्य कालपी उत्तर बुन्देलखण्ड का मुख्य केन्द्र बन गया। (१०)

इस प्रकार से यह बात स्पष्ट हो गई कि कालपी जनपद का एक महत्वपूर्ण स्थान है जो कि यमुना के दक्षिण में पड़ता है तथा बुन्देलखण्ड का एक भाग है । (११)

जनपद जालौन, बुन्देलखण्ड का प्रवेश द्वार है और ऐसा प्रवेश द्वार है कि यहाँ से यदि प्रवेश किया जाये तो सभी सिद्दियों एवं अभीष्ट की प्राप्ति होती है । आमतौर पर द्वार तो किसी भवन का ही होता है और भवन रचना में द्वार का विशिष्ट स्थान होता है । अतः द्वार की स्थिति बहुत महत्वपूर्ण होती है । पदानुरूप विद्यान के अनुसार-

"पूर्वद्वार तु माहेन्द्रं प्रशंस्त सर्वकामदुम
ग्रहक्षतं तु विहितं दक्षिणेन शुभावहम्
गन्धर्व मथवा तत्र कर्तव्यं श्रेयसे सदा
पश्चिमेन प्रशंस्त स्यात् पुष्पदंन्त जयावहम्
भल्लाट मुत्तरे द्वार प्रशंस्त स्याद् ग्रहेशितुः"

समरांगण में चार विशिष्ट कोटि के द्वारों का वर्णन है । वास्तु प्रवेश से भवन जहाँ दक्षिण है उसे पूर्ण बाहु नामक कहते हैं और वह पूर्ण सिद्धियों का प्रवर्तक भी है। (१२)

ठीक बिल्कुल यही स्थिति जालौन जनपद की बुन्देलखण्ड तथा दक्षिण भारत के साथ हैं । यदि बुन्देलखण्ड और दक्षिण भारत को एक भवन माना जाये तो उसके उत्तर में द्वार होना चाहिए और उसके उत्तर में यमुना के दक्षिण में कालपी ही है जो कि जनपद जालौन का एक अभिन्न अंग है । इस प्रकार से यदि यूँ समझा जाय कि जिस भवन के उत्तर में द्वार होता है वह भवन सदैव धनधान्य से पूरित होता है, तो यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि कालपी से प्रवेश करने पर बुन्देलखण्डी आँगन को पार करने के पश्चात् जिन कक्षों में प्रवेश करना होता है वे दक्षिण भारत के रूप में हैं जो कि पूर्णरूपेण धनधान्य से सम्पूरित है और आज भी यह स्थिति सर्वविदित है कि समूचा दक्षिण भारत धनधान्य से भरा पड़ा है । अतः समराँगण के अनुसार - जनपद जालौन, बुन्देलखण्ड का पूर्ण बाहु द्वार है जो कि सब प्रकार के मनोरथ पूर्ण करने वाला द्वार है एवं बुन्देलखण्ड की उत्तरी सीमा पर सशक्त प्रहरी बनकर न केवल बुन्देलखण्ड एवं सम्पूर्ण दक्षिण भारतं की रक्षार्थ , एवं सर्वमंगल हेतु अडिग रूप से तत्पर है ।

सन्दर्भ-सूची

१- साक्षात्कार -	डा० रामशंकर द्विवेदी अधिवक्ता इलाहाबाद हाईकोर्ट दिनांक २८-४-६४	
२- भारत का इतिहास -	परिख व दहीभाते -	पृष्ठ ७६
३- साक्षात्कार -	श्रीमानवेन्द्र सिंह (७२वर्ष) जमींदार निवासी पुर ऐंधा दिनांक ८-४-६५	
४- भारत का इतिहास -	परिख व दहीभाते - वर्ष ६२-६३	पृष्ठ१०७
५- जालौन गजेटिगर -	डी०एल० ड्रेक ब्रोकमैन -	पृष्ठ ११५
६- "भारत का इतिहास" -	परिख व दहीभाते -	पृष्ठ ११२व१२५
७- भारत का इतिहास	डा०ए०के० मित्तल -	पृष्ठ २६०
८- 'कालपी की पवित्र भूमि' -	लालकृष्ण बिहारी -	पृष्ठ ११२ से १२६ तक
९- कालपी की पवित्र भूमि '-	लालकृष्ण बिहारी -	पृष्ठ ११२-११३
१०- जालौन गजेटियर -	डी०एल०ड्रेक ब्रोकमैन -	पृष्ठ १५७-१६२
११- "	"	"
१२- भारतीय स्थापत्य	डा० द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल	पृष्ठ १६६

द्वितीय अध्याय

जनपद जालौन का ऐतिहासिक महत्व

जनपद जालौन के ऐतिहासिक महत्व का अध्ययन हम इसकी भौगोलिक सीमाओं व स्थिति तथा उसके सामाजिक, राजनैतिक व प्राचीन ऐतिहासिक परिदृष्य के अन्तर्गत निम्नानुसार कर रहे हैं ।

भौगोलिक सीमायें व स्थिति

जालौन जनपद उत्तरी गोलार्द्ध में कर्क रेखा के उत्तर में २६° २७° और २५° ४६° उत्तरी अंक्षाश एवं ७६° ५२° और ७८° ५६° पूर्वी देशान्तर के मध्य त्रिभुजीय आकार में स्थित है ।[१] इसकी सीमा तीन नदियों से घिरकर बनी है एवं इसकी उत्तरी पूर्वी सीमा यमुना नदी के द्वारा बनी है तथा इसके उत्तर में जिला कानपुर व जिला इटावा स्थित है । जनपद की दक्षिणी सीमा बेतवा नदी द्वारा बनी है जिसके पार हमीरपुर व झाँसी जिला स्थित हैं । इस जनपद की पश्चिमी सीमा पहूज नदी द्वारा निर्मित है जिसके दूसरी ओर मध्य प्रदेश के लहार, मिहौना आदि जनपद स्थित हैं । यह जनपद जालौन उत्तर प्रदेश का एक ऐसा भाग है जो कि प्रदेश के दक्षिणी भाग पर स्थित होते हुए प्रदेश को मध्यप्रदेश के साथ जोड़ता है । इस जालौन जनपद की लम्बाई एक सौ किलोमीटर एवं चौड़ाई चौरासी किलोमीटर है ।[२] तथा इसका क्षेत्रफल ४५६५ वर्ग किलोमीटर है।[३]

यमुना नदी इस जनपद की चौरासी किलोमीटर की सीमा रेखा को अभिसिंचित करते हुए बहती है । इसका किनारा ढलवाँ होने के कारण इसके द्वारा लाई गई मिट्टी यहाँ बहुत कम ठहर पाती है । यह नदी पश्चिम से उत्तर की ओर बहते हुए आगे बढ़ती है । इस यमुना नदी के विपरीत दिशा में पश्चिम से पूर्व की ओर टेढ़े मेढ़े रास्तों से गुजरते हुए वेतवा नदी बहती है जो कि एकसौ उन्नीस किलोमीटर लम्बे क्षेत्र के लोगों की प्यास बुझाती हुयी बहती है । इसके किनारे पर कुछ दूरी तक काफी बड़ी बड़ी कन्दरायें हैं । जनपद की तीसरी सीमा भुजा का निर्धारण करते हुए दक्षिण से पूर्व की ओर पहूज नदी बहती है । यह अपेक्षाकृत काफीछोटी नदी है तथा इस जनपद में मात्र अरसठ किलोमीटर लम्बे भूभाग को अमिसिंचित करते हुए चली जाती है । इसके किनारे पथरीले तथा जमीन बालुई है । यह नदी बड़ी गहराई में बड़ेऊँचे किनारों का निर्माण करती है । इसके भी दोनों किनारों पर एक लम्बे भूभाग तक कन्दरायें तथा नाले पाये जाते हैं ।

प्रसिद्ध बुन्देली इतिहासकार दीवान प्रतिपाल सिंह अपनी पुस्तक में हवाला देते हुए लिखते हैं कि उरई तहसील से 'नौन' नामक एक नदी निकलती है जोकि कालपी में यमुना

नदी में मिल जाती है । इसी की एक सहायक नदी मलुंगा भी है जो कि कोंच जालौन से निकलकर महेबा में 'नौन' नदी से मिल जाती है । यहाँ के निवासीगण इसे नाले की संज्ञा देते हैं । एक अन्य सहायक नदी 'बरमान' भी जालौन में बहती है।(४)

जनपद जालौन लगभग चौरस है तथा इसमें कोई पहाड़ इत्यादि नहीं हैं फिर भी यह विन्ध्याचल श्रेणी के अन्तर्गत आता है । नदियों के किनारे ऊँचे-ऊँचे टीले व कंगूरे अवश्य हैं । उरई तहसील में दक्षिण की ओर पहाड़गाँव, सला, गुनावली, छिरावली, नुनवई, सैदनगर आदि स्थानों पर छोटी छोटी ग्रेनाईट पत्थर की पहाड़ियाँ हैं । कोंच के पास पठा की पहाड़ी है जिसके उचित उत्खनन से 'मानिक' पत्थर मिलने की सम्भावना है ।

इस जनपद में चार प्रकार की मिट्टी पाई जाती है । जालौन के दक्षिण पश्चिम, कोंच के दक्षिण में "मार" मिट्टी पाई जाती है । कोंच के उत्तर पश्चिम उरई के उत्तर तथा कालपी तहसील के मध्य और उत्तरी भाग में "काबर" मिट्टी पाई जाती है । नदियों और नालों के किनारे विशेष तौर पर कालपी तहसील में "राँकड़" मिट्टी पाई जाती है । इन सब स्थानों के अतिरिक्त शेष स्थानों पर "पडुआ" मिट्टी मिलती है । यमुना नदी के तटवर्ती क्षेत्र द्वाब की पडुआ मिट्टी की मोटी तह से ढका है।' पर्याप्त सिंचाई मिलने पर यह मिट्टी अत्यन्त उर्वर हो जाती है । जनपद का मध्यवर्ती क्षेत्र तीन मीटर मोटी काली कंकरीली मिट्टी की पर्त से ढका है । यह भी उर्वर मिट्टी है तथा इसे अधिक सिंचाई की भी आवश्यकता नहीं होती है । इस जनपद की कृषि योग्य भूमि में गौहन मिट्टी १.११% मार ३०.५४% काबर २६.७४%पडुआ२७.४७% व राकर ८.६८% हैं।(५)जनपद में गैर उपजाऊ भूमि १६५६६७ एकड़ अर्थात् २०.७८% है।(६)

जालौन जनपद में वह निरर्थक भूमि जो कृषियोग्य नहीं है लगभग २२३२७ एकड़ अर्थात् कुल भूमि का २३% है । इसका कुछ भाग 'काँस' नामक घास से युक्त है तथा शेष भाग अन्य घासों एवं पेड़ों से भरा है । अंग्रेजी सरकार द्वारा घास तथा लकड़ी सुरक्षित रखने हेतु दो स्थान निश्चित किये गये थे । एक उरई तहसील के अन्तर्गत टिमरों ग्राम एव द्वितीय स्थान जो निश्चित किया गया था उसमें चिरौली, ज़मरोही , गुमली, तथा मुवई एट (कोंच तहसील) सम्मिलित थे । प्रथम स्थान का क्षेत्रफल ६५८ एकड़ था तथा द्वितीय का क्षेत्रफल मराठा समय से १०७५ एकड़ था । इन स्थानों पर उपलब्ध मार एवं काबर मिट्टी में मूसल एवं अन्य प्रकार की घासों की पैदावार अच्छी आई थी । जनपद के जंगली क्षेत्र में बबूल, ढाक और करोंदा के वृक्ष विशेष तौर पर पाये जाते हैं ।

सन १६०६ में इस जालौन जनपद में ८३४८ एकड़ भूमि ऊबड़ खाबड़ भूमि के रूप में अंकित थी जो कि कुलभूमि का लगभग १% थी परन्तु शनैःशनैः मानवीय

प्रयासों के फलस्वरूप अब यह ऊबड़ खाबड़ भूमि का काफी भाग कृषि योग्य भूमि में परिवर्तित हो गया है । दोआब प्रकार का क्षेत्र इस जनपद में नहीं है । बबूल का पेड़ बगैर किसी प्रयास के खूब आसानी से यहाँ पाया जाता है जबकि काली मिट्टी के क्षेत्र में यत्र तत्र नीम के वृक्ष भी देखने को मिलते हैं । नीम के पेड़ के साथ साथ महुआ के भी वृक्ष यहाँ पर दिखलाईपड़ते हैं । जलाऊ सामग्री का अभाव इस जनपद में हमेशा से रहा है । महुआ ही एक मात्र ऐसा वृक्ष है जिसके फल एवं फूल का उपयोग जलाऊ लकड़ी के रूप में किया जाता रहा है । बबूल की लकड़ी का उपयोग कृषि उपयोगी उपकरणों तथा गाड़ियों आदि के बनाने में किया जाता है । ये सभी स्थितियाँ कृषि कार्य हेतु अच्छा अवसर प्रदान करती हैं ।

.जलवायु की दृष्टि से यह जनपद गर्म व खुश्क है ।यहाँ पर बारिश कम होती है । गर्मी में अत्यधिक गर्मी होती है और तापमान ४८° सैल्सियस तक पहुँच जाता है । जाड़ों में ठण्डक खूब होती है और न्यूनतम धरातलीय ताप ०° सैल्सियस तक हो जाता है । रात्रि मे सुखदाई ठण्डक पड़ती है । मानसून भी इस जनपद को प्रभावित करता है । जून के अन्तिम सप्ताह से सितम्बर के अन्त तक दक्षिण पश्चिम मानसून से वर्षा होती है जिसका औसत ४५० मिलीमीटर है । इधर पिछले ५-७ वर्षों से वर्षा की गति असामान्य हो गई है । कभी वर्षा नगण्य होती है तथा कभी व्यापक भी होती है । जाड़ों में उत्तर पश्चिमी मानसून से बहुत कम वर्षा होती है । कभी कभी कुहरा भी छाया रहता है । दिसम्बर जनवरी के महीनों में रात्रि में ओस भी पड़ती है तथा कभी कभी शीत लहर का भी प्रकोप हो जाता है। (७)

यमुना की तलहटी को छोड़कर शेष जनपद में अर्ध मरूस्थली कटीली झाड़ियाँ तथा वृक्ष पाये जाते हैं । यमुना की पडुआ मिट्टी के क्षेत्र में पतझड़ वाले भी वृक्ष उगते हैं । कुछ जीरोफिटिक पौधों की प्रजातियाँ भी यहाँ पर खेतों की मेड़ों पर आमतौर पर देखने को मिलती हैं । यहाँ पर बहुतायत में उगने वाले वृक्षों में खैर, बबूल, बेर, ढाक, करौंदा, रोजा, छौला, कैंथा, इमली आदि के वृक्ष पाये जाते हैं तथा जंगलों में मूसली , सतावर, आदि भी पाई जाती हैं । किसी जनपद की जलवायु एवं भौगोलिक स्थितियों के अनुरूप ही, उस जनपद में पशुपक्षियों आदि की उपलब्धता निर्भर करती है । जालौन जनपद में बबूल आदि की अधिकता है और जो भी जंगल यहाँ पर हैं उनमें उसी के अनुसार छोटी नस्ल अर्थात् कम ऊँचाई वाले जंगली जानवर मिलते हैं । हिरन, लोमड़ी, सियार, जंगली सुअर आदि खूब मिलते ह। कभी कभी तेंदुआ एवं बाघ भी देखने को मिल जाते हैं । विभिन्न प्रकार के सर्प, छिपकली, गिलहरी, नेवला, मगरमच्छ, बिच्छू आदि भी खूब मिलते हैं ।

यद्यपि इस जनपद में अच्छी नस्ल के घोड़े, हाथी आदि नहीं मिलते हैं परन्तु पासके अन्य जिलों से यहाँ पर ये जानवर आसानी से लाये जाते हैं और इसी कारण यहाँ पर हाथी घोड़ों की एक अच्छी खासी मण्डी हो गई थी जिसके कारण दूर-दूर से इनके खरीददार तथा विक्रेतागण यहाँ पर आकर अपने मन मुताविक हाथी घोड़ों की खरीद व विक्री करते थे।

चिड़ियों में तीतर, बटेर, चाहा, कबूतर, आदि भी खूब मिलते हैं। सारस आदि भी जाड़ों में खूब दिखाई पड़ती हैं। कौवा, तोता, कसाई, चिड़िया, गोरघा, तथा कोंच नगर में वर्तमान में चील गिद्ध आदि भी खूब प्रचुर मात्रा में देखने में आते हैं।

रोहू, नयनी, सिलंध, करौंची, गुन्च, ,सौर, झिगुरा चिलवा, अनवरी, बछुआ, सिरी, बास और इनके अलावा अनेकों प्रकार की मछलियाँ यहाँ की नदियों तथा तालाबों में बहुतायत में मिलती हैं जो कि जाल के माध्यम से पकड़ी जाती हैं और फिर व्यापारिक दृष्टि से बेंची जाती हैं। मतस्य पालन के व्यापार में इस जनपद की जो जातियाँ सलंग्न हैं उनमें केवट, मल्लाह, ढीमर, आदि विशेष हैं , परन्तु वर्तमान में इस मतस्य-व्यवसाय में मुसलमान ज्यादा सलंग्न हैं।(८) इस जनपद के आधार भूत व्यवसाय निम्नानुसार हैं।

आखेट - कंजड़, बंजारे, आदि कुछ घुमन्तु जातियों को छोड़कर आखेट के रूप में पेशा कोई नहीं अपनाता।

मत्स्य- नदियों में विभिन्न प्रकार की मछलियाँ उपलब्ध हैं तथा जनपद से बाहर विशेष तौर पर पूर्वी बंगाल की और इनकी माँग भी काफी है। अतः केवट, मल्लाह,तथा कुछ मुसलमानों ने मछली पालन को व्यवसाय के रूप में अपनाया है।

पशुपालन - पहले कृषि के साथ साथ पशु पालन सहायक पेशे के रूप में लोग अपनाते थे परन्तु यहाँ पर कुछ लोग पेशे के रूप में ही पशुपालन का कार्य कर रहे हैं। पूरे जनपद जालौन में विभिन्न स्थानों पर गायें तथा भैंसे पालकर लोग डेरी बनाये हुए हैं तथा दूध, पनीर, घी, क्रीम आदि का व्यापार कर रहे हैं। इस जनपद में वर्तमान में दूध प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होने के कारण "पराग" दूध की डेरी स्थापित है। गाय भैसों के अलावा मुर्गी के अण्डे तथा मुर्गों के लिए पोल्ट्री फार्म भी हैं। इसके साथ ही साथ कोंच नगर की कसाई मण्डी तो अब बहुत चर्चित मण्डी है बैलों आदि का माँस प्रतिदिन एक दो ट्रक भरकर बाहर की मण्डियों में भेजा जाता है। कुछ निर्धन व्यक्ति बकरियाँ पालकर उसके दूध को विक्रय करके ही अपनी जीविका चलाते हैं। यहाँ के मेहतर समुदाय का सुँअर पालन के क्षेत्र में विशेष योगदान है और इन सुँअरों की आपूर्ति मुम्बई, कलकत्ता आदि स्थानों को सीधी यहीं से की जाती है।

कृषि- यह यहाँ का प्रमुख उद्योग है जिसमें रवि की फसल प्रमुख है खरीब की फसल द्वितीय स्थान पर है। यहाँ पर धीरे धीरे जायद उत्पाद बढ़ते जा रहे हैं। पहले यहाँ पर गेहूँ चना मुख्य उत्पाद थे परन्तु कैशक्रोप के रूप में मटर, सोयाबीन, मसूर, आदि का उत्पादन अधिक बढ़ गया है व्यापारियों के अलावा स्वयं किसान भी अब बाजार की तेजी मद्दी के अनुरूप इन खाद्यों का भण्डारण करके उचित समय पर क्रय विक्रय की प्रक्रिया अपनाने लगे हैं।

खनन- खनन के रूप में बालू का ही एक मात्र धन्धा है। वेतवा के तट पर पड़ी बालू की खुदाई करके उसे विक्रय करने का कार्यकुछ पेशेवर लोगों द्वारा किया जाता है। इसके साथ ही साथ एट सैदनगर, आदि की ग्रेनाइट पत्थर की पहाड़ियों को तोड़कर गिट्टी का भी कारोबार कुछ विशिष्ट लोगों द्वारा किया जाता है। इन दोनों कार्यों से राज्य सरकार को भी अच्छी खासी धनराशि प्राप्त हो जाती है।

काष्ठ- ईधन के रूप में ही काष्ठ का विशेष प्रयोग होता है अन्य कार्यों हेतु काष्ठ बाहर से आता है। अब अवश्य यत्र तत्र, शीशम, आम आदि होने लगा है परन्तु उसकी मात्रा नगण्य है।

वाणिज्य - इस जनपद से खाद्यान, तेल, तिलहन , कच्चा चमड़ा बालू आदि बाहर जाते हैं तथा शेष अन्य उपभोक्ता सामग्री बाहर से आती है। (६) इस जनपद की लगभग ६३-६४ % आबादी कृषिपर आधारित है जबकि औद्योगिक आबादी मात्र १५%है जिसमें ३४% वस्त्रों के उत्पादन में ३०% भोजन, पेय आदि में १०% लकड़ी के कार्यों में, ५% चमड़ा उद्योग में तथा ६% मजदूरी आदि में सलंग्न है। (१०)

यातायात - पहले यातायात के बहुत कम साधन उपलब्ध थे अतः यातायात जल मार्ग द्वारा सुगमता से किया जाता था। इस जनपद की उत्तरी पूर्वी सीमा का निर्धारण करती यमुना नदी जगम्मनपुर जागीर के सितौरा ग्राम से प्रारंभ होकर शेरगढ़ घाट तथा कालपी होते हुए हमीरपुर जिले को निकल जाती है। यह यमुना नदी कानपुर तथा हमीरपुर जिलों की सीमाओं को छूती हुई जाती है। अतः यह यमुना इटावा कानपुर तथा हमीरपुर जिलों की सीमाओं को छूती हुई जाती है और शेरगढ़ तथा कालपी ऐसे मुख्य स्थान रहे हैं जहाँ से दक्षिण भारत की ओर जाने हेतु यमुना के जलमार्ग द्वारा वस्तुओं की अपूर्ति होती रही है तथा यह जलमार्ग यातायात का प्रमुख साधन रहा है थलमार्गों पर पशु चलित वाहनों का प्रयोग होता था परन्तु यान्त्रिकीकरण के कारण अब यान्त्रिक गाड़ियाँ चलने लगी हैं। उरई से होकर रेलवे लाइन गुजरने के कारण, अब यातायात अत्यन्त सुगम हो गया है। बस, ट्रक, रेलगाड़ी, मोटरगाड़ी आदि वर्तमान में यातायात के प्रमुख साधन हो गये हैं। साईकिल, रिक्शा, टेम्पो आदि ने छोटी

दूरी तय करने हेतु बैलगाड़ी, ताँगागाड़ी, इक्कागाड़ी आदि का स्थान ले लिया है और इन सबके ऊपर अब तो टैक्टर चलने लगा है जो कि खेतों में जुताई, बुबाई, कटाई, म ाई से लेकर खाद्यान को एक स्थान से दूसरे स्थान पर सुगमता से पहूँचने का कार्य करने लगे हैं । स्थिति तो यहाँ तक देखने में आती है कि कृषक गण अपनी शादी की बारात आदि तक इन्हीं टैक्टर ठिलियों के माध्यम से ले जाते आते हैं ।

जनजीवन - प्रजातीय दृष्टि से यहाँ की जनसंख्या मूलतः आर्य है । मंगोली रक्त का मिश्रण यहाँ के जन मानष की छवि पर दृष्टि गोचर नही होता है और न ही यहाँ के लोगो की कद काठी मंगोलो से मिलती है अतः यह कथन नितान्त भ्रामक हैं कि यहाँ के जनमानस पर मंगोली प्रभाव है । यह मात्र हमारी सांस्कृतिक छवि को धूमिल करने का कुत्सिक प्रयास है । इस जनपद के लोग शारीरिक रूप से हस्ट पुष्ट परिश्रमी तथा सामान्य कद्काठी के लोग हैं । मानसिक स्तर पर कर्मवादी होते हुए भी भाग्यवादी एवं सहनशील हैं । अपनी प्राचीन परम्पराओं के निर्वहन में सलंग्र रहते हुए अपनी सांस्कृतिक चेतना जाग्रत किये रहते हैं और यह जाग्रति आज भी उत्सवों पर्वो तथा विभिन्न आयोजनों में स्पष्टतः झलकती है ।

सन १८५३ में कालपी एवं कोंच में क्रमशः ३०६ एवं ३५३ व्यक्ति प्रतिवर्ग मील में रहते थे, जिससे स्पष्ट है कि बुन्देलखण्ड का यह क्षेत्र विरूरी आबादी वाला क्षेत्र था परन्तु समय के साथ साथ आबादी बढ़ती गई और यह क्षेत्र घनी आबदी का क्षेत्र हो गया। सन १८६५, १८७२, १८८१ व सन १६०१ की जनगणना से यह प्रमाणित है कि लोग बाहर से आकर इन स्थानों पर बसे जिससे यहाँ की आबादी बढ़ गयी । (११)

इस जनपद में आमतौर पर सभी सम्प्रदायों को मानने वाले लोग रहते हैं जिनमें सनातन, इस्लाम, जैन, बौद्ध, ईसाई, सिक्ख आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। हिन्दुओं में कई उपजातियाँ हैं जिनमें चमार, ब्राह्मण राजपूत, सेंगर, चौहान, कुशवाहा, परिहार, काछी, कोरी, अहीर, गड़रिया, कुर्मी, लोधी, गुप्ता, (बनिया) पुरवार खत्री आदि विशेष हैं । मुसलमानों में शेख, पठान, सैय्यद, और वयना आदि उपजातियाँ हैं । शेखों में कुरैशी और सिद्दीकी विशेष रूप से यहाँ पर वास करते हैं । इनके अतिरिक्त जुलाहे, कुंजरे, मनिहार, फकीर, नट, रंगरेज, और बंजारे आदि यहाँ पर रहते हैं ।

जनपद जालौन के निवासियों का खानपान अत्याधिक साधारण है । मुख्य खाद्य अनाज, गेहूँ एवं चना है । निर्बल वर्ग में ज्वांर , बाजरे, का भी प्रयोग होता है। दाल के रूप में अरहर, मूँग , उड़द, और तथा मसूर का प्रयोग किया जाता है । सब्जियों में आलू तथा मौसमी सब्जियों का प्रयोग किया जाता है । ग्रीष्म ऋतु में तरोई, भिण्डी, पालक, करेला,

लौकी, कद्दू तथा जाड़े में टमाटर, गोभी , गाजर, का विशेष प्रयोग होता है । यहाँ पर महुआ अधिक होता है जिसकी बजह से गाँव गाँव में महुए की शराब बनाकर पी जाती हैं । माधौगढ़ क्षेत्र में गन्ने की अच्छी पैदावार होने से गुड़ का प्रयोग एवं गुड़ के सीरे (राब) से शराब बनाकर उसका भी प्रयोग प्रचलन में है । दूध, दही, शरबत, लस्सी, मट्ठा तथा ठण्डाई के साथ साथ नये चाल चलन के अनुसार चाय का भी पेय पदार्थ के रूप में खूब प्रयोग होता है । कालपी में यमुना तट पर गर्मियों में खरबूजा, तरबूज, आदि की फसल उगाई जाती है अतः इन वस्तुओं का भी यहाँ के लोग बहुतायत में उपयोग करते हैं । माँस का प्रयोग बहुत सीमित मात्रा में होता है उपयुक्त सभी भौगोलिक स्थितियों के कारण ऊषर नाम से विख्यात यह जालौन जनपद विदेशी आक्रान्ताओं महात्वकांक्षी शासकों और बड़ी रियासतों के शासकों को आकर्षित करता रहा है । इन सभी की रूचि इस जनपद में इसलिए भी रही है कि यह जनपद प्राचीन काल में युद्ध में काम आने वाले हाथी घोड़ों की एक विख्यात मंडी रहा है यहाँ पर आस पास के क्षेत्रों से ये जानवर बाजार के दिन इक्कठे होते हैं जहाँ पर इनका क्रय विक्रय होता है । इसके साथ ही साथ गाय बैलों और बकरियों की भी यह जनपद की एक बहुत अच्छी मंडी है ।

विदेशी आक्रान्ताओं के आकर्षण का केन्द्र भी यह जनपद इसलिए रहा है कि यहाँ के लोग आर्थिक रूप से काफी सम्पन्न रहे हैं । गंगा यमुना के दोआब के सन्निकट होने के कारण यहाँ पर कृषि उपज भरपूर होती है जिससे सम्पन्ता यहां के जनजीवन पर झलकती है । इसी सम्पन्नता को लूटने की प्रबल इच्छा विदेशी आक्रान्ताओं एवं निकटवर्ती राजघरानों के मन में हलचल मचाती रही है । उत्तर से दक्षिण की ओर अपने राज्य की सीमा के विस्तार की प्रबल इच्छा को अपने मन में बसाये जब उत्तरी शासक गण, मानचित्र पर अपना ध्यान केन्द्रित करते थे तब उन्हें जलमार्ग एवं थलमार्ग दोनों दृष्टियों से उचित स्थान दक्षिण की ओर कूच करने हेतु एक मात्र कालपी ही दिखलाई पड़ता था । कालपी के द्वारा समीपवर्ती इटावा, झाँसीआदि स्थानों पर प्रशासनिक एवं युद्ध रक्षण दृष्टि से, नियंत्रण सुगमता पूर्वक किया जा सकता था । अतः दक्षिण की ओर सेना के साथ कूच करने अथवा आसपास के क्षेत्र पर प्रशासनिक दृष्टि से भौगोलिक स्थितियों के अन्तर्गत यह जनपद अपना विशिष्ट महत्व रखता है ।

इस जनपद की भौगोलिक बनावट इस प्रकार है कि यहाँ का निवासी हर प्रकार की भौगोलिक स्थितियों एवं युद्ध की विकट परिस्थितियों का सामना करने में सक्षम है । यहाँ पर कार्य अधिक न होने के कारण , आदमियों के पास खाली समय बहुतायत मे रहता है । अतः यहाँ पर उत्तम श्रेणी केसैनिकों की उपलब्धता भी बहुतायत में है । इस कारण भी अपनी सैन्य शक्ति के विस्तार एवं उनकी उच्च क्षमता के लिए भी यह जनपद विशेष तौर पर राजघरानों

की आखों में बसता रहा है । यहाँ के निवासीगण स्वतंत्ररूप से जीवन यापन के अभ्यस्त रह हैं और उन्होंने अपनी इसी स्वतंत्रता को अक्क्षुण्य बनाये रखने हेतु कभी भी किसी भी सत्ता की अधीनता लम्बे समय तक नहीं स्वीकारी । अपनी स्वतंत्रता की जीवनशैली चिरंजीवी रखने हेतु सदैव से ही बाहरी सत्ता के प्रबल विरोध को प्राचीन इतिहास में अंकित किया है। महाभारत काल में यहाँ के राजा शिशुपाल ने जहाँ कृष्ण को ललकारा था, वहीं मुगलकाल में छत्रसाल ने मुगलों के विरूद्ध , मरहठों की सहायता से निर्णायक युद्ध लड़ा था । अंग्रेजों के विरूद्ध इसी तपोभूमि ने सन १८५७ की क्रान्ति को महारानी लक्ष्मी बाई,तात्या टोपे , नानासाहब, कुंअरसिंह आदि के सहयोग से नेतृत्व प्रदान किया था और अपना अलग से इतिहास गढ़ा था ।

किसी स्थान की संस्कृति का निर्माण उस स्थान के जनमानस द्वारा अपनाये गये दैनिक जीवन के संस्कारों , से होता है । इस जनपद की सांस्कृतिक चेतना भी यहाँ के जनमानस द्वारा अपनाई रीतिरिवाजों के आधार पर अपना विशिष्ट स्थान रखती है यहाँ के लोकजीवन के संगीत में भी इसकी छाप स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है । यहाँ पर गायेजाने वाले लोकगीत तथा लोकनृत्य उग्रता प्रधान वीर रस से ओत प्रोत होते हैं परन्तु इसके साथ ही साथ वे सभी ईश्वरीय प्रेम से युक्त भी होते हैं । यहां पर जहाँ एक ओर आल्हा का गायन होता है वहीं दूसरी ओर अछरी के गीतों से माँ भवानी का वन्दन भी होता है । यहाँ के लोकगीतों में वीर रस से सरोबोर पात्रों के कृतित्व का गायन होता है । यहाँ पर दीपावली के अवसर पर दो विशिष्ट प्रकार के नृत्य होते हैं । एक तो दिवाली नृत्य के नाम से जाना जाता है एवं दूसरा 'मौनिया नृत्य' । दोनों ही नृत्य पुरूषों के नृत्य हैं जिनमें पुरूषजन उग्रता के भावों को दर्शाते हुए ईश्वरीय प्रेम में मग्न होकर भगवान श्रीकृष्ण के कृत्यों को स्मरण कर उनके प्रति अपना अर्चन वन्दन भेंट करते हैं । विभिन्न अवसरों पर 'पट बाजी ' होती है । इसे हम अखाड़ेबाजी भी कह सकते हैं । इ. पटबाजी में विभिन्न आयुधों के माध्यम से युवा वर्ग अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं । ये सभी सामान्य जनजीवन के कृत्य यहां के मनुष्यों की प्राकृतिक वीरोचित मनोदशा का प्रतिनिधित्व करते हैं । यही मनोदशायें यहाँ के सामाजिक जीवन से जुड़कर यहाँ के वीरोचित इतिहास का सृजन करती हैं ।

सन्दर्भ-सूची

(१) जालौन गजेटियर वर्ष १६०६-	डी० एल० ब्रोकमैन -	पृष्ठ सं० १
(२) सहयोग पत्रिका वर्ष १६६०		पृष्ठ सं० ६६
(३) प्रगति दपर्ण जनपद जालौन वर्ष १६८७-८८		पृष्ठ सं० २
(४) बुन्देलखण्ड का इतिहास -	दीवान प्रतिपाल सिंह -	पृष्ठ सं० ३३व ३५
(५) जालौन गजेटियर वर्ष १६०६-	डी०एल०ब्रोकमैन -	पृष्ठ सं०४
(६) "	"	पृष्ठ सं०८
(७) पत्रिका - एम०एस०वी० इण्टर कालेज कालपी - वर्ष १६६४-६५		पृष्ठ सं० ७१व७२
(८) जालौन गजेटियर वर्ष १६०६ -	डी०एल०ब्रोकमैन -	पृष्ठ सं०१३
(६) पत्रिका एम० एस० वी० इन्टर कालेज कालपी वर्ष १६६४-६५		पृष्ठ सं० ७२
(१०) जालौन गजेटियर वर्ष १६०६-	डी०एल०ब्रोकमैन -	पृष्ठ सं० ६७
(११) "	"	पृष्ठ सं० ५५,५६,५७

सामाजिक, राजनैतिक व प्राचीन ऐतिहासिक परिदृश्य

जनपद जालौन का सामाजिक परिदृश्य वीरोचित है । इसके साथ ही साथ यहाँ के समाज में स्नेह, प्रेम, करूणा की भी अविरल रसधारा प्रवाहित होती रहती है । समाज में स्त्रियों को अत्यन्त उच्च स्थान प्राप्त है । यहाँ पर नारी एक प्रेरणा स्रोत है । इसी कारण यहाँ पर कुनघुसी पूनौ तथा 'हरी ज्योति' पर्वों को बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है । कुनघुसी पूनौं में घर की बहुओं का सास द्वारा पूजन, अर्चन होता है तथा उन्हें सम्मानित करते हुए भेंट भी अर्पित कीजाती है क्योंकि ऐसी मान्यता हैकि घर की बहू ही वास्तव में 'कुल' के अन्दर शीतल पूर्णिमा बिखेरनी वाली होती है।(१)'हरी ज्योति' पर्व में घर की कुआँरी कन्याओं का पूजन, अर्चन, वन्दन होता है तथा उन्हें भी उनका मनपसन्द भोज्य पदार्थ अर्पित कर उन्हें भेंट भी प्रदान की जाती है । इस पर्व के पीछे की यह मूल भावना है कि कन्यायें ही इस सकल विश्व की अधिष्ठात्री माँ जगदम्बा का स्वरूप हैं और इसी कारण यहाँ का पुरूष वर्ग सदैव ही कन्याओं के समक्ष नतमस्तक रहा है और आज भी अपने अभीष्ट की सिद्धि हेतु वह कन्याओं के चरण स्पर्श द्वारा अपने उद्यम में प्रवृत्त होता है(२)'मनुस्मृति' में वर्णित 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता ' यहाँ पर ही चरितार्थ होता है । यहाँ पर यह भी दृष्टव्य है कि मनु महाराज की उक्त बात के पूर्ण रूपेण परिपालन हेतु बच्चियों को दो मनोविज्ञानिक खेलों के माध्यम से यह शिक्षा दी जाती है कि वे समाज में अपने आप को किस प्रकार से प्रतिष्ठापित् करें । ये दोनों खेल हैं 'मामुलिया' एवं 'चपेटा '। 'मामुलिया' खेल में लड़कियाँ बेर अथवा बबूल की कटीली झाड़ी को लेकर पुष्पों द्वारा उसका श्रंगार करती हैं । यहाँ पर कटीली झाड़ी समाज की विषम परिस्थितियों का द्योतक है । उन विषम परिस्थितियों में लड़कियाँ पुष्परूपी समाधान पिरोकर समाज को कंटक विहीन करने की शिक्षा इस 'मामुलिया' खेल द्वारा ग्रहण करती है(३)'चपेटा' खेल का मनोविज्ञान भी अत्यन्त सुन्दर है । इस खेल में पत्थर की ५ अथवा ७ गोटियाँ लेकर उन्हें उछालकर पुनः लपककर तथा जमीन पर पटक कर , उन्हें पुनः अपनी हथेलियों से उठाकर, चूमकर, इस खेल को खेलती हैं । पत्थर की गोटियाँ पुरूष वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं । यह खेल लड़कियों को यह शिक्षा प्रदान करता है कि कैसे समाज के पुरूष वर्ग को नियन्त्रित किया जाना चाहिए । उसके स्वच्छन्द विचरण पर् पैनी दृष्टि रखनी चाहिए , समयानुसार उसका तिरस्कार एवं उसको भरपूर स्नेह स भी अभि■सिंचित कर , समाज में समरसता का वातावरण पैदा करना चाहिए।(४)

यहाँ के जनजीवन में दिवारी नृत्य एवं मौनियाँ नृत्य अत्यधिक प्रिय हैं। ये दोनों ही पुरूष प्रधान नृत्य हैं जो कि वीरोचित भावना से भरे रहते हैं तथा इन नृत्यों

के माध्यम से पुरूष वर्ग कुछ कर गुजरने की प्रेरणा लेता है । यहाँ के अन्य नृत्य आदि कर्म प्रधान है । यहाँ के लोकगीतों से भी कर्म में सक्रिय रूप से सलंग्न रहने की प्रेरणा मिलती है । यहाँ पर पैतृक संस्कारों के प्रति आस्था एवं सम्मान तथा उनके पीछे अनुगमन की बलवती इच्छा शक्ति यहाँ के जनमानस में सदैव हिलोरें लेती रहती हैं ।

इस जनपद में 'टेसू' का खेल जहाँ विघ्न विनाशक की मान्यता को बल देता है वहीं पर बालकों में टेसू की वीरता से ओत प्रोत लोकगीत वीरभाव की अभिवृद्धि में सहायक होते हैं। (५)

मनुष्य भौगोलिक व सामाजिक परिस्थितियों का दास होता है और इन्हीं परिस्थितियों से उसका राजनैतिक इतिहास बनता है । इस जनपद का भी इतिहास यहाँ की भौगोलिक परिवेश के अनुरूप ढला है । यद्यपि यह जनपद गंगा यमुना के दोआब क्षेत्र से बाहर है फिर भी यहाँ की उर्वरक भूमि ने इसे सम्पन्नता से सजा सवार कर रखा है क्योंकि यह जनपद यमुना, वेतवा एवं पहूँज नामक तीन नदियों से घिरकर अपनी स्वच्छन्द प्रकृति का उद्घोष करता है जो कि इस जनपद की संस्कारयुक्त संस्कृति का निर्माण करता है । इतिहास केवल राजा महाराजों की विजय, पराजय, शौर्य, पराक्रम तक ही केन्द्रित नहीं है अपितु समाज के चेतन, अचेतन मनोभावों से निर्मित संस्कृति का भी घोतक है ।

इस जनपद जालौन का प्रचीन इतिहास अभी भी अन्धकार के गर्त में पड़ा चीत्कार कर रहा है परन्तु जैसे जैसे सांस्कृतिक एवं पुरातात्विक साक्ष्य इतिहास के पटल पर उभर कर आ रहे हैं । यह तिमिर हटता जा रहा है और प्रकाश पुन्ज हमारी प्राचीन वैभवन्मयी, सांस्कृतिक विरासत से हमारा साक्षात्कार कराकर नवीन इतिहास का सृजन कर रहा है ।

उत्तर प्रदेश के दक्षिणी प्रवेश द्वार के रूप में विख्यात जालौन जनपद के प्राचीन इतिहास के संदर्भ में कोई अधिकृत पुस्तक इत्यादि नहीं है जिसके आधार पर प्राचीन इतिहास का अवलोकन किया जा सके । केवल सन १९०६ का गजेटियर ही एक ऐसा आधार है जिसके माध्यम से हमें इतिहास की कुछ नगण्य सी जानकारी प्राप्त हो पाती हैं । इस गजेटियर में भी प्राचीन इतिहास के स्थान पर केवल इतना ही मिलता है कि इस क्षेत्र में प्राचीन समय में कोल,, भील, नामक आदिवासी जनजातियाँ रहती थीं तथा बाद में यहाँ पर आर्य आ गये। तत्पश्चात् इस क्षेत्र पर मौर्य साम्राज्य का अधिपत्य रहा एवं बाद में गुप्त साम्राज्य का प्रभाव रहा। (६) बुन्देलखण्ड के इतिहास के सूत्रधार के रूप में विख्यात दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार यहाँ पर पहले कोल भील एवं गोंड आदि ही रहते थे । गोंडों की भाषा पारसी थी। (७) इस जनपद

में पारसी भाषा के कोई चिन्ह प्राप्त नहीं हैं जिससे यह स्वतः अनुमान लगाया जा सकता है कि यहाँ के आदिवासी कम से कम गोंड तो नहीं ही थे ।

इतिहास एवं राजनीति शास्त्र के विद्वान डा० जयदयाल सक्सेना के मतानुसार गाँवों में स्थापित प्राचीन मठों में कुछ अनगढ़ प्रस्तर खण्डों की पूजा देवी देवताओं के रूप में की जाती है जिन्हें ध्यान से देखने पर पाषाण कालीन अर्थात् ईसा पूर्व लगभग ३००००वर्ष के पाषाण उपकरण से लगते हैं । ये पाषाण अनगढ़ उपकरण पाषाण कालीन सभ्यता के वाहक हैं।(८)परन्तु पुरातात्विक आधार पर इस तथ्य की पुष्टि अभी तक नहीं हो सकी है । मई १९९५ में जिला मुख्यालय उरई के महावीरपुरा नामक मुहल्ले से कुछ ताम अवशेष प्राप्त हुए हैं । इन ताम्र अवशेषों में दो हस्त कुठार , एक चक्राकार पहिया तथा शिला की भाँति एक ताम्र खण्ड भी प्राप्त हुआ है । इन प्राप्त उपकरणों में से एक हस्त कुठार की बनावट ईसापूर्व १२००० वर्षों से ईसापूर्व ६००० वर्षों तक ताम्रयुग में प्रयुक्त होने वाले हस्त कुठार से काफी मिलती जुलती है तथा द्वितीय हस्त कुठार सिन्धुघाटी सभ्यता में प्रयुक्त होने वाले ताम्र कुठार से मेल खाता है । मालवा के कायथ क्षेत्र से प्राप्त ताम्र कुठार के समकक्ष भी यह कुठार प्रतीत होता है जिसका काल २२०० वर्ष ईसापूर्व से २००० वर्ष ईसा पूर्व के मध्य माना गया है ।(९)इन ताम्र कुठारों के अतिरिक्त ताम्र का एक चक्राकार पहिया तथा ताम्र (शिलाखण्ड की भाँति) खण्ड की प्राप्ति से यह भी आभास मिलता है कि यहाँ पर इन उपकरणों के निर्माण की शायद कार्यशाला रही हो । उरई से इन ताम्र उपकरणों का प्राप्त होना निश्चित रूप से यह प्रमाणित करता है कि यह जनपद कभी ताम्र युगीन सभ्यता, सिन्धु सभ्यता का वाहक था।(१०)

जहाँ तक आर्यों का भारत में आने का प्रश्न है तो प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता डेविड फ्राले के अनुसार सांस्कृतिक खोजों एवं पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर यह प्रमाणित हो गया है कि आर्यों का इस देश पर आक्रमण अथवा आर्यों का इस देश में आना एक मिथ्या कल्पना है । यह जनपद अल्प जंगली तथा अधिक उपजाऊ है इस कारण आर्य जन यहाँ पर ठीक वैसे ही आये होंगे जैसे कि आज हम अपनी जीवकोपार्जन हेतु एक स्थान से दूसरे स्थान पर आना जाना करते हैं ।(१२)
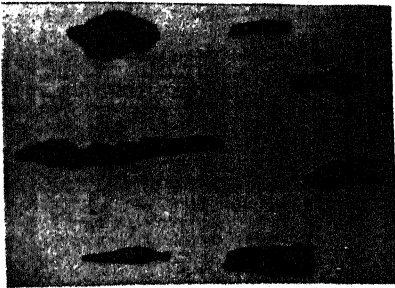
कोंच से प्राप्त लौह उपकरण

इस जनपद के कोंच नगर से तहसील प्रांगण की खुदाई के समय कुछ उपकरण तथा मानव अस्थियाँ प्राप्त हुयीं हैं जो कि बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई में सुरक्षित हैं । ये लौह उपकरण कोलों की उपस्थिति के परिचायक हैं क्योंकि कोलारियनों (कोलों) को लौह धातु की

विशेष जानकारी थी । (१३) अस्तु इस जनपद की प्राचीन सभ्यता को यदि आर्य कोल सभ्यता कहा जाये तो अनुचित न होगा और यह आर्य सभ्यता इस जनपद में ५६०० वर्ष ईसापूर्व से अब तक पल्लवित एवं पुष्पित हो रही है ।(१४)

उत्तर वैदिक काल में मतस्य तथा उशीनर जातियों ने इस क्षेत्र को अपना निवास स्थान बनाया । जालौन इन दोनों के निवास क्षेत्र के सन्धि स्थल पर रहा होगा । (१५) वैदिक काल एवं पौराणिक काल में ऋषियों मुनियों द्वारा सोमरस 'सोम' नामक बेल से तैयार किया जाता था । इस सोमरस को तैयार करने हेतु एक विशिष्ट प्रकार की ओखली का प्रयोग होता था।(१६)उरई से पश्चिम की ओर २६ कि०मी० दूर स्थित पड़री ग्राम के एक खेत पर ग्रेनाइट पत्थर द्वारा निर्मित लगभग ८ फुट लम्बी एक ओखली पड़ी है । ग्रामवासियों के अनुसार यह बहुत पुरानी है और कब से पड़ी है मालूम नहीं । यह ओखली उन ओखलियों के समकक्ष है जिनमें प्राचीन काल में सोमरस तैयार किया जाता था । इस ओखली के मिलने से यह इंगित होता है कि यह जनपद ऋषियों मुनियों की कर्मस्थली रहा है । यहाँ के विभिन्न ग्रामीण क्षेत्रों में अति विशिष्ट ऋषियों के आश्रम रहे हैं जहाँ पर या तो उन ऋषियों ने अपना चर्तुमास व्यतीत किया है अथवा अपने ध्येय की प्राप्ति हेतु अटूट साधना की है । कालपी में कालपदेव तथा महर्षि वेदव्यास, परासन में वेदव्यास के पिता पाराशर ऋषि जलालपुर में शांडिल्य ऋषि उरई में उद्दालक ऋषि कोंच में क्रोन्च ऋषि बबीना में बाल्मीकि ऋषि सन्दी में सन्दीपन ऋषि आदि के आश्रम थे । ब्रहमाण पुराण में एक स्थान पर मिलता है कि -

इटौरारव्यां महापुण्यं भुक्ति मुक्ति प्रदायकम । ब्रहस्पति स्तपस्तेये ब्रहमणः शरदां शतम् ॥

अर्थात् यह पवित्र क्षेत्र इटौरा (जनपद जालौन) नाम से प्रसिद्ध भोग तथा मुक्ति का देने वाला है । यहाँ पर श्री ब्रहस्पति (देवताओं के गुरू) ने १०० वर्षों तक ब्रहमा की तपस्या की थी । (१७)यह इटौरा ग्राम उरई से पूर्व की ओर लगभग २६ कि० मी० दूरी पर स्थित है। इसी ग्राम से पूर्व की ओर लगभग ६ कि०मी० दूर एक ग्राम है कुरहना । यह ग्राम कुम्भज ऋषि (अगस्त्य) के आश्रम के लिए जाना जाता है । यह बात भी लोकोप्ति में है कि यहाँ पर अगस्त्य ऋषि ने चतुर्मास व्यतीत किया था तथा यहीं से विन्ध्याचल को पार करके दक्षिण भारत की ओर गये थे ।

इस सबसे यह बात प्रमाणित होती है कि वैदिक एवं पौराणिक काल की संस्कृति इस जनपद में भी पल्लवित हुयी है ।

यमुना नदी के दक्षिण क्षेत्र में कई ऋषियों ने अपने आश्रम बनवाये । विक्रमी संवत से १००० वर्ष ,पूर्व इस जनपद के पश्चिमी किनारे पर स्थित गोपालपुरा ग्राम का प्राचीन नाम् गोपालगिरि था तथा यहाँ पर सघन वन के मध्य गोपाल बाबा का आश्रम भी था । उन्हीं के प्रताप से इस स्थान पर जल हेतु 'रामकूप'नामक कुआं यहाँ के निवासियों की जलपूर्ति करता था । इसी जनपद के करनखेड़ा स्थान से पश्चिमी उत्तरी श्याम पालिश युक्त कुछ मिट्टी के पात्रों के अवशेष प्राप्त हुए हैं जोकि ईसापूर्व छठवीं शताब्दी के हैं तथा एरच (झाँसी) से प्राप्त लाल एवं श्याम पालिश युक्त पात्रों से बिल्कुल मिलते जुलते हैं । ये उपलब्ध पात्र ईसा पूर्व छठवीं शताब्दी की सभ्यता के अंग हैं ।

ईसापूर्व २३० वर्षों से सन २२० तक का समय इतिहास के पन्नों में अंधकार युग के नाम से जाना जाता है परन्तु अब यह अन्धकार छँट गया है । झाँसी से उत्तर की ओर ५० कि०मी० पर बसे एरच स्थान का इस अन्धकार काल को समाप्त करने में विशेष योगदान है । बौद्ध साहित्य में एरच को 'एरक्च' कहा गया है स्थानीय मान्यताओं के अनुसार एरच, महाप्रतापी राजा हिरणाकष्यप की राजधानी था । इसी का पुत्र प्रहलाद था जिसे उसकी बुआ होलिका द्वारा अग्नि में भस्मसात् करने की आज्ञा हिरणाकश्यप द्वारा दी गई भी । प्रहलाद को अपनी गोद में बिठाकर अग्नि चिता पर होलिका बैठी तब वह स्वयं तो भस्म हो गई और ईश्वरीय प्रताप से प्रहलाद बच गया (२२) और तभी से आज तक यह कहावत चली आ रही है कि एरच में अलाव नहीं लगता जिससे यहाँ पर मिट्टी की ईट पकाना सम्भव नहीं हो पाता है (२३) इसी सन्दर्भ में यह लोकोप्ति प्रचलित है -

" नरवर चढ़ै न बेड़नी, एरच पकै न ईट । गुदनौटा भोजन नहीं , बूँदी छपै न छींट ॥

इसी एरच राज्य की सीमा यमुना के उत्तर में बसे मूसानगर तक फैली हुई थी। अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि जनपद जालौन भी एरच राज्य के अधीन था ।.

सोलह महाजन पदों के समय में यह क्षेत्र चेदि जनपद था । गुर्जरा (दतियाम०प्र०) साँची (विदिशा म०प्र०) रूपनाथ (जबलपुर म०प्र०) एव कौशम्बी (इलाहा-बाद उ० प्र०) से प्राप्त अशोक कालीन लेखों से यह ज्ञान प्राप्त होता है कि यह क्षेत्र अशोक के समय मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत आता था और मौर्य साम्राज्य से पूर्व यह क्षेत्र चन्द्रगुप्त मौर्य तथा नन्दों के आधिपत्य मे था । नन्दों के अन्तिम शासक राजा बिहाद्रथ की मृत्यु के

पश्चात् यह क्षेत्र पुष्यमित्र सुंग के अधीन हो गया जिसने मौर्यों का उत्तराधिकार प्राप्त किया। कालिदास द्वारा रचित "मालविक अग्निमित्रम"के अनुसार पुष्यमित्र अग्निमित्र विदिशा का सूबेदार (वाईसराय) था। साक्ष्यों के अभाव में यह स्वीकार्य तथ्य हो सकता है कि यह क्षेत्र विदिशा से अग्निमित्र के द्वारा संचालित होता था जोकि दशार्णा की राजधानी के रूप में 'मेघदूत' में वर्णित है। परन्तु उसी समय एरच एक विकासशील एवं प्रशासन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान के रूप में सम्भवतः एक छोटे राज्य के रूप में विकसित हो रहा था। एरच से प्राप्त लैड तथा ताँबे के सिक्कों पर मुगामुख राजा का नाम अंकित है जोकि ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी का है। इससे यह बात कही जा सकती हैकि बहुत समय तक यह क्षेत्र विदिशा के अन्तर्गत नही रहा और अग्निमित्र के अन्तिम समय में यह क्षेत्र सम्भवतः स्वतंत्र राज्य के रूप में उभर रहा था। इससे यह बात कही जा सकती है कि ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी के लगभग एरच एक प्रशासनिक राज्य के रूप में अयोध्या, कौशम्बी अहिचचात्र मथुरा एवं विदिशा की भाँति स्थापित हो गया था जो कि अब तक इतिहास के अन्धकार में था। 'मुगामुख' के पश्चात् ईसापूर्व प्रथम शताब्दी में दाममित्र राजा का उल्लेख एरच से प्राप्त एक ईट लेख (Brik Inscription) के माध्यम से मिलता है जिसमें उसे "राजा दाममित्र" कहा गया है। 'मुगामुख' तथा 'दाममित्र' के मध्य कोई मिलान की कड़ी नहीं मिलती है। 'दाममित्र' अपने राजकुल का एक मात्र राजा था। चार अन्य नये शासक एरच से प्राप्त लेखों के माध्यम से इतिहास के अन्धकार से निकलकर प्रकाश में आये हैं जो कि प्रथम द्वितीय शताब्दी के हैं। सम्भवतः 'शतानिका' इस राजकुल का संस्थापक था जो कि एरच से ही प्राप्त एक ईट लेख के अनुसार 'असाधमित्र" का परबाबा था। 'शतानिका' के तीन उत्तराधिकारी थे। 'अदितिमित्र' 'मूलमित्र' और 'असाधमित्र'। 'असाधमित्र' इस राजकुल का अन्तिम शासक था। क्योंकि अभी तक 'असाधमित्र' के उत्तराधिकारी की कोई जानकारी इतिहास में उपलब्ध नहीं है। शतानिका' एवं 'असाधमित्र' सेनापति कहलाते थे परन्तु इसके साथ साथ दशार्ण के राजा अर्थात् 'दशार्णपति' और दशार्णेश्वर भी कहलाते थे।' 'अदितिमित्र' के ताबे के प्राप्त सिक्के से यह बात स्पष्ट है। अदितिमित्र के पश्चात यहाँ का राजा इन्द्रमित्र हुआ जिसका एक सिक्का अभी प्राप्त हुआ है यह सिक्का ताँबे का है तथा कोंच नगर से प्राप्त हुआ है। (२५) इस सबसे से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि लगभग चारसौ वर्षों तक इन राजाओं ने इस क्षेत्र पर राज्य किया। जब 'शतानिका' प्रथम द्वितीय शताब्दी में इस क्षेत्र पर राज्य किया तो कुषाण

मुगामुख का सिक्का

का यहाँ पर कोई अधिपत्य नहीं था। क्योंकि इस सन्दर्भ का कोई सिक्का अथवा लेख यहाँ स प्राप्त नहीं हुआ है। (२६) कुछ समय पूर्व कालपी क्षेत्र एवं कोंच से कुषाण कालीन कुछ सिक्कों की प्राप्ति से ऐसा प्रतीत होता है कि क्षेत्र पर राज्य तो 'शतानिका' राजकुल का रहा होगा परन्तु प्रभाव आवश्कीय रूप से कुषाणों का भी रहा होगा।

'शतानिका' राजकुल के पश्चात् एरच राज्य का कुछ भाग पद्मावती के नागाओं के अधिपत्य में चला गया। कोंच क्षेत्र से प्राप्त नागाओं के सिक्कों से यह बात स्पष्ट है यह क्षेत्र नागाओं के अधिकार में रहा होगा। नागाओं के तत्पश्चात् यह क्षेत्र 'गुप्ताओं' के हाथों में चला गया और फिर प्रतिहारों और चन्देलों का शासन इस क्षेत्र पर रहा।

शालिवाहन युगीन चक्की का ऊपरी पाट

यहाँ पर यह भी दृष्टव्य है कि ईसापूर्व २३० वर्षों से २२० वर्ष ईसा पश्चात् तक, इस क्षेत्र पर एरच राजकुल का अधिपत्य रहा तथा कुषाणों का भी प्रभाव रहा परन्तु इस क्षेत्र की संस्कृति 'शालि वाहन' संस्कृति के ही समकक्ष रही थी क्योंकि कोंच से प्राप्त टेराकोटा मनके, कर्णफूल एवं उरई से प्राप्त भीगे अनाज पीसने की चक्की के पाट की तुलना 'शालि वाहन्' युग की संस्कृति के प्राप्त अवशेषों से पूर्णतः मिलती जुलती है (२७)

सन्दर्भ-सूची

१- राष्ट्रभाषा सन्देश - दिनांक ३० अप्रेल १९९५ - नारी सम्मान को समर्पित - हरी मोहन पुरवार- पृष्ठ सं० ७

२- " " " "

३- " " " "

४- " " " "

५- कला कुन्ज सितम्बर ९५ - हरीमोहन पुरवार - पृष्ठ संख्या ११-१२

६- जालौन गजेटियर वर्ष १९०९- डी०एल०ब्रोकमैन - पृष्ठ सं० १,५

७- बुन्देलखण्ड का इतिहास - दीवान प्रतिपालसिंह - पृष्ठ सं० १७६

८- दैनिकदीवान - दिनांक १४-६-९५- डा० जयदयाल सक्सेना - पृष्ठ सं० ३

९- दैनिक आज - दिनांक ६-६-९५ - हरीमोहन पुरवार - पृष्ठ सं० ४

१०- टाईम्स प्रेस इन्टरनेशनल (अहमदाबाद) दिनांक १८-७-९५ - हरीमोहन पुरवार - पृष्ठ सं० ५

११- राष्ट्रधर्म दिनांक फरवरी ९५- डेविड फ्राले पृष्ठ सं० ८२

१२- दैनिक गांडीव, काशी दिनांक १९ - ७ ९५ - हरीमोहन पुरवार - पृष्ठ सं० २,३

१३- दैनिक दीवान दिनांक २९-६-९५ - हरीमोहन पुरवार - पृष्ठ संख्या ४

१४- 'बुन्देलखण्ड का इतिहास' - दीवान प्रतिपाल सिंह - पृष्ठ संख्या ३२३

१५- दैनिक दीवान दिनांक १४-६-९५-	डा० जयदयाल सक्सेना -	पृष्ठ संख्या ३
१६- धर्मयुग - दिनांक १४ दिसम्बर १९८०-	कृष्ण चन्द्र सागर -	पृष्ठ संख्या १३
१७- ब्रहमाण्ड पुराण - चतुर्थ अ[illegible]य श्लोक संख्या २७-२८		
१८- बुन्देलखण्ड का इतिहास -	गोरेलाल तिवारी -	पृष्ठ संख्या २
१९- 'कुशराज वंश प्रदीप'-	राजा कृष्णपाल सिंह -	पृष्ठ संख्या १८३
२०- दैनिक आज - दिनांक २५ अप्रैल १९९३-	हरीमोहन पुरवार-	पृष्ठ संख्या ४
२१- 'आर्केलोजी आफ एरच'	डा०ओ०पी० लाल श्रीवास्तव	पृष्ठसंख्या १
२२- 'बुन्देलखण्ड दर्शन'-	मोतीलाल त्रिपाठी -	पृष्ठ संख्या २६५
२३- "	मोतीलाल त्रिपाठी -	पृष्ठ संख्या ४४७
२४- 'मूसानगर अभिलेख के 'दाममित्र' की पहचान वर्ष १९९२-९३- डा० ओ०पी० लाल श्रीवास्तव		पृष्ठ संख्या ५४
२५- पत्र - दिनांक १५-१२-९४-	डा० ओ०पी०लाल श्रीवास्तव	
२६- आर्कियोलोजी आफ एरच -	डा० ओ०पी०लाल श्रीवास्तव -	पृष्ठ संख्या १ से ६ तक
२७- आज की बात - जुलाई १९९५-	हरीमोहन पुरवार -	पृष्ठ संख्या ६

तृतीय अध्याय

जालौन जनपद का मध्यकालीन ऐतिहासिक परिदृश्य

भारतीय इतिहास को जिन कालखण्डों में अध्ययन की सुगमता हेतु विभक्त किया गया है उनमें मध्यकाल का अपना विशिष्ट स्थान है । यह कालखण्ड ई० सन १२०६ से प्रारम्भ होकर सन १७५७ तक माना गया है । भारतीय इतिहास में यह मध्यकाल विशेष रूचिकर है क्योंकि इसी काल के माध्यम से हमें दो सभ्यताओं के समागम एवं उनकी वैचारिक पद्धति के सहयोगी विरोधी स्वरों की झनझनाहट , उनकी खट्टी मीठी नीतियों एवं परिणामों की अनुभूतियों का दिग्दर्शन होता है । जनपद जालौन का भी मध्यकालीन इतिहास, इसी तरह के विभिन्न पड़ावों से गुजरता हुआ, हमें अतीत की स्मृति दिलाता है ।

इस मध्यकाल में गुलाम वंश से लेकर मुगलों तक तत्पश्चात का अंग्रेजों का शासन सम्मिलित है । गुप्त शासन काल के पश्चात् छठवीं शताब्दी में थानेश्वर के सम्राट हर्षवर्धन का नेपाल तथा काश्मीर से लेकर नर्मदा तक अखण्ड राज्य स्थापित हुआ । इसका शासन सन ६०६ से सन ६४७ तक रहा । हर्षवर्धन के राज्यकाल में ही बुन्देलखण्ड ऐतिहासिक रूप से प्रकाश में आया जिसका उल्लेख चीनी यात्री हवेनसाँग ने अपनी यात्रा विवरणी में किया है । हर्षवर्धन की मृत्यु के पश्चात्सम्पूर्ण क्षेत्र में उथल पुथल सी मच गई लेकिन ऐसा विश्वास किया जाता है इस उथल पुथल के बीच यह जनपद जालौन कन्नौज राज्य के ही अधीन रहा । सन ८१० ई० में नागभट्ट ने कन्नौज की गद्दी पर अपना अधिकार कर लिया जो कि राजपूताने का एक महत्वाकांक्षी गुर्जर प्रतिहार शासक था । शासन की बागडोर सन ८४० ई० तक उसके पौत्र मिहिरा के पास रही जिसको राजाभोज के भी नाम से जाना जाता है।(१)इसी युग में चन्देलों की शक्ति खजुराहो, महोबा आदि क्षेत्रों में सुदृढ़ होती जा रही थी। चन्देल राजाओं का इतिहास तो बाँदा हमीरपुर तथा झाँसी आदि जिलों से सम्बन्धित रहा है तथा यह जनपद भी चन्देली सत्ता से अत्यन्त प्रभावित रहा है । वास्तव में कालपी नगर की उन्नति चन्देलों के समय में ही हुयी । लगभग दसवीं शताब्दी के मध्य में कालपी पर चन्देलों का अधिकार हुआ और यहाँ पर एक दुर्ग का निर्माण हुआ । चन्देल राजा मदन वर्मा तथा परमर्दिदेव के समय में कालपी की बड़ी उन्नति हुई । चन्देलों के ८ प्रसिद्ध केन्द्रों में से कालपी भी एक था । यह न केवल एक बड़ा सैनिक अड्डा बना बल्कि व्यापारिक यातायात का केन्द्र भी बना। (२)कुछ विद्वानों का मत है कि कालपी का किला चन्देलों के आठ प्रसिद्ध दुर्गों में से एक है किन्तु पुरातत्व की दृष्टि से इसकी पुष्टि नहीं होती।(३)

सन ८०० ई०में चन्देल वंश की सत्ता राजा नानुक देव द्वारा प्रारंभ की गई तथा सन १२२५ ई० तक चन्देल राजा परमर्दिदेव तक प्रतिष्ठित रही। बनारस के अन्तिम गहरवार सम्राट वीरभद्र के कनिष्ठतम पंचम पुत्र हेमकर्णको बुन्देला राजकुल का अधिष्ठता माना जाता है। हेमकर्ण ने माँ विन्ध्यवासिनी से बुन्देला नाम प्राप्त किया था तथा आशीर्वाद भी पाया था। आशीर्वाद प्राप्ति के पश्चात् हेमकर्ण पंचम ने अपनी शक्ति को संगठित किया तथा बनारस को अपनी पूर्वी राजधानी बनाया। कहा जाता है कि उसने अपने पुत्र को वीर बुन्देला नाम दिया तथा सन ११६३ ई० में उसे शहाबुद्दीन के लैफ्टीनेन्ट तातर खाँ अफगान के अभिमान का विरोध करने हेतु भेजा। सन १२२४ ई० में वीर बुन्देला राजसिंहासन पर बैठा तथा पश्चिमी, उत्तर तथा दक्षिण की ओर अपने राज्य का भरपूर विस्तार किया। सन १२३१ ई० में उसने कालपी, मेहोनी, को अपने अधिकार में कर कालिंजर को मिला लिया। लगभग ८० वर्षों के बाद सन १३१३ ई० में उसका पौत्र अर्जुनपाल आया और मेहोनी को अपनी राजधानी बनाया।इस प्रकार मऊमेहोनी राजधानी के अन्तर्गत बुन्देलों ने प्रथम बार, सुनियोजित ढंग से अपने को सुदृढ़ स्थापित किया। यहाँ के शासक अर्जुनपाल के तीन पुत्र थे, बीरबल, सोहनपाल तथा दयापाल। बीरबल ने अपने पिता अर्जुनपाल से प्राप्त राज्य को संभाला और सोहनपाल ने कुठारगढ़ पर अधिकार कर, राज्य का विस्तार किया परन्तु यहाँ पर सभी विद्वानों का एक मत नहीं है। एक साक्ष्य के अनुसार बीरबल ने राजगद्दी प्राप्त करते समय मात्र कुछ ही गाँव सोहनपाल को बँटवारे में दिये। वंशानुगत हिस्से से असंतुष्ट होकर सोहनपाल ने अपने अधिकार के लिए संघर्ष का निश्चय किया। अपने अभीष्ट की प्राप्ति हेतु उसने 'कुरार' के खंगार नाग से सहायता चाही। परन्तु राजानाग ने सहायता देने से पूर्व यह शर्त रखी कि जब सोहनलाल उसके वंश से रोटी और बेटी का संबंध करेगा तभी वह सहायता करेगा। इस पर सोहनपाल ने शर्त अस्वीकार कर दी तथा 'कुरार' से निकलकर मुक्तामन चौहान से सम्पर्क किया। लेकिन उसने भी तटस्थ रहने के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की सहायता देने से मना कर दिया। इस प्रकार सेंगरों चौहानों तथा कछवाहों से उसका सम्पर्क अभियान फलीभूत नहीं हुआ लेकिन 'करहरा' के एक़ जागीरदार पानपाल व सोहनपाल की आम सहमति के आधार पर इन दोनों ने खंगार राजा नाग को अपदस्थ कर उसका राज्य हड़पने का एक षणयंत्र रचा। षणयंत्र की योजनानुसार खँगार राजा की शर्त स्वीकार करने का ढोंग कर, राजा नाग, उसके भाइयों व मंत्रियों को सोहनपाल ने अपने घर पर आमंत्रित किया, जहाँ पर पानपाल, सोहनपाल व उनके सहयोगियों ने विश्वासघात् कर, उनको समाप्त कर दिया तथा उनके द्वारा शासित खंगार प्रदेश पर अपना स्वामित्व सुनिश्चित किया। इस प्रकार १३वीं शताब्दी के अन्तिम चरण

लगभग १२८८ ई० में सोहनपाल के नेतृत्व में बुन्देलाओं द्वारा शासित राज्य को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है ।

एक ओर अर्जुन पाल के बड़े पुत्र बीरबल ने अपने पिता से प्राप्त मेहोनी के चारों ओर विस्तृत राज्य जिसमें कोंच तहसील व उरई और जालौन का कुछ भाग सम्मिलित था, को सुरक्षित रखा वहीं दूसरी ओर सोहनपाल ने अपने राज्य को स्वयं अर्जित कर दक्षिण की ओर विस्तार किया ।

सन १४०० ई० में कालपी और महोबा दोनों ही मलिक ज़ाद्रा फिरोज के पुत्र महमूद खाँ की देखरेख में एक ही जागीर में थे । इस दौरान कालपी नगर का पर्याप्त विकास हुआ तथा यह प्रथम दर्जे का महत्वपूर्ण स्थान हो गया । सन १४०७ में जब इब्राहीम शाह ने दिल्ली की ओर से अपने अभियान को रोका तो उस समय कालपी दिल्ली के ही आधीन था। यद्यपि सन१४१२ में इब्राहीम ने कालपी का घेरा डाला लेकिन दौलतखाँ के लश्कर ने उसे वापिस जाने पर मजबूर कर दिया । सन १४२६ में सुल्तान महमूद खाँ का पुत्र कादिर खाँ , दिल्ली के सईद मुबारक शाह की आधीनस्थता में कालपी का गर्वनर था । जब सईद मुबारकशाह, बियाना में मुहम्मद खाँ के विरूद्ध व्यस्त था, इब्राहीम शाह ने एक बार पुनः कालपी के रास्ते से दिल्ली की ओर बढ़ने का प्रयास किया । इस कारण मजबूर होकर सईद मुबारकशाह को वापिस लौटना पड़ा और इटावा जिले में एक लड़ाई हुई । परिणामस्वरूप इब्राहीम शारकी जौनपुर वापिस लौट गया । इधर इब्राहीम शाह ने अपने प्रयासों को रोका नहीं और १४३२ ई० में पुनः कालपी पर आक्रमण किया । इस बार उसे अल्पखाँ जो मालवा सम्राट होशंग शाह के नाम से जाने जाते थे, का विरोध सहना पड़ा । जौनपुर सम्राट दिल्ली सेना के आक्रमण की संभावना से भयभीत होकर वापिस लौट गया । इस प्रकार कालपी होशंगशाह के ही अधीन वनी रही। कहा जाता है कि इब्राहीम का उत्तराधिकारी पुत्र महमूद शार्की ने सन १४४२ ई ० में मालवा सम्राट से कालपी में इस्लाम कानून के प्रति लापरवाह एक जागीरदार को दण्डित करने की अनुमति माँगी थी । इतिहास इस वात का साक्षी है कि जैसे भी जब भी कभी महमूद ने किसी स्थान पर अधिकार किया , उसे वापिस नही किया । एक साक्ष्य के अनुसार ठीक दो वर्ष बाद जौनपुर सम्राट और मालवा प्रमुख एरच में मिले तथा एक सन्धि उन दोनो के मध्य हुयी । परिणामस्वरुप पूर्व गर्वनर कादिर खाँ के पुत्र नासिर खाँ को गर्वनर बनाया गया । उत्तरी भारत पर प्रभुत्व स्थापित करने का अभियान, जो कि इब्राहीम शार्की ने दिल्ली सम्राट सईद के विरुद्ध आरम्भ किया था , उसके उत्तराधिकारी सुल्तान हुसैन ने लोधियों के विरुद्ध जारी रखा। जौनपुर राज्य का प्रभाव इटावा गढ़ी के आगे तक फैल गया था और सन १४६५ ई० में सुल्तान

हुसैन ने ग्वालियर सम्राट रायकरन सिंह को कर देने के लिये बाध्य किया । जैसे ही सुल्तान हुसैन ने दिल्ली पर प्रभुत्व स्थापित करने के अन्तिम प्रयास के बाद अपने कदम वापिस जौनपुर की ओर बढाये, ग्वालियर सम्राट ने कालपी में उसकी सहायतार्थ, अपना एक सैन्य दल भेजा । १४८८ ई० में दिल्ली के बहलोल लोधी ने हुसैन के विरुद्ध अभियान प्रारम्भ किया तथा सुल्तान हुसैन के भाई इब्राहीम खाँ से इटावा छीन कर जौनपुर अधिकार करने का निश्चय किया । दोनों सेनायें कालपी के निकट रंगान **(Ranganw)** मे मिली तथा सुल्तान हुसैन बिना उसका विरोध किये ही रींवा की ओर भाग गया । इस प्रकार कालपी तथा इसके आसपास का क्षेत्र, दिल्ली सल्तनत के अधिपत्य में आ गया और कालपी की जागीर बहलोल लोधी के पौत्र आजम हुमाँयू को सौप दी गई । बहलोल लोदी इसी वर्ष जौनपुर वापिस लौट गया ।

सिकन्दर लोधी जैसे ही सिंहासनारुढ हुआ, उसने कालपी को अपने भतीजे आजम हुमाँयू से वापिस ले कर , इसका दायित्व महमूद खाँ लोधी को सौप दिया । इसके अधिपत्य में कालपी कितने समय तक रही यह अनिश्चित है । लेकिन १५०७ ई० में कालपी का गर्वनर सम्राट पुत्र जलाल खाँ लोधी था जिसे इसी वर्ष यह जागीर प्रदान की गई थी । १५१७ ई० में इब्राहीम लोधी को गद्दी प्राप्त हुयी । अफगांन सरदार ने जौनपुर का स्वतन्त्र भार जलाल खाँ को सौप दिया जिसे जलालुउद्दीन की उपाधि प्राप्त हुयी थी । कालपी अभी भी इसी के अधिपत्य में थी । यहाँ पर यह अपने पूरे परिवार और कोश छोङ कर ३०,००० शक्तिका सैन्य दल लेकर , भयभीत करने और यदि संभव हो तो राजधानी पर अधिकार करने की नियति से आगरा की ओर प्रस्थान किया । तथापि इब्राहीम ने कालपी पर पीछे से आक्रमण कर दिया तथा अल्प घेरे बन्दी के बाद अपने अधिकार में कर, लूटपाट के लिये दे दिया । जलालुद्दीन ने इब्राहीम के एक सरदार से सन्धि के लिये प्रस्ताव किया लेकिन इब्राहीम ने इसे अस्वीकार कर दिया । जलालुद्दीन ग्वालियर और मालवा को भाग गया वहाँ पर वह पकङा गया तथा इब्राहीम को सौंप दिया गया और अन्ततः मार दिया गया । कालपी सरकार अली खाँ को बरव्स दी गयी । इब्राहीम उन अफगान सरदारो में था जिसने सन १५२६ ई० के पानीपत सग्रांम के बाद भी बाबर के सामने घुटने टेकने से इन्कार कर दिया था लेकिन जौनपुर से वापिसी के तुरन्त बाद ही हुमाँयू ने उसे सर्मपण के लिये मना लिया और उसे दरवार में ले गया जहाँ उसको यथोचित सम्मान दिया गया । इस प्रकार बाबर ने अपनी मृत्यु से पूर्व ही महत्वपूर्ण दुर्गों व जागीरो पर अपना अधिकार सुनिश्चित कर लिया । सन १५२८ ई० में कन्नौज जाते समय यह जनपद जालौन से कनार में यमुना पार करते समय गुजरा था ।

सन १५३० ई० में जब हुमाँयू सिंहासनारुढ़ हुआ तब उसने बिहार व बंगाल में पैर जमाये शेर खाँ को विरोध न कर पा सकने हेतु मजबूर कर दिया और सामरिक महत्व के स्थान कालपी को अपने चचेरे भाई मुहम्मद मिर्जा के हाथो में दे दिया । १५३६ ई० में बक्सर में मुगलो की पराजय के बाद शेर खाँ उर्फ शेरशाह ने अपने पुत्र कुत्ब खाँ को अराजकता फैलाने के लिये मालवा की ओर भेजा । यादगार मुहम्मद मिर्जा व इटावा के गर्वनर कासिम हुसैन खाँ की संयुक्त सेना ने कालपी के पास एक घमासान लड़ाई में अफगान सेना को परास्त कर दिया जिसमें कुत्ब खाँ मारा गया , लेकिन सन १५४० ई० में हुमाँयू की कन्नौज पराजय के बाद कालपी व शेष बचा भाग शेरशाह के हाथो में चला गया जिसने अपने राज्य को सुनियोजित ढंग से जागीरो व मण्ड्लो में गठित किया । कालपी मल्लू खाँ को आंवाटित की गयी जो शेरशाह के अधीन सेवा करना स्वीकार न करके गुजरात भाग गया । १६वीं सदी के दौरान दिल्ली और बंगाल के बीच कालपी की एक महत्वपूर्ण पड़ाव के रुप में मान्यता रही और शेष या बाकी बचे सूर सम्राटों के काल में यह अनवरत् युद्ध कार्य की नाट्य स्थली रही । कहा जाता है कि सन १५५४ में इस पर इब्राहीम खाँ सूर ने अधिकार जमाया लेकिन शीघ्र ही सम्राट मुहम्मद शाह अदाली के बजीर हेमू द्वारा खदेड़ दिया गया । इसी बीच बंगाल का शासक मुहम्मद खाँ सूर, जौनपुर और कालपी आगरा को हथियाने की नियति से आगे बढा लेकिन अदाली और हेमू ने कालपी से २२ मील दूर चप्पा घाट पर ,उसे बुरी तरह से परास्त कर दिया । इसके बाद मुहम्मद खाँ फिर कभी दुबारा नही देखा गया । ऐसा अनुमान है कि वह यमुना में डूब कर मर गया जबकि अदाली, मुहम्मद खाँ के पुत्र के विरुद्ध बंगाल की ओर बढा और अन्ततः मुंगेर में उसकी मृत्यु हो गई । शीघ्र ही उत्तरी भारत मुगलों के अधीन हुआ और एक बार कालपी पुनः दिल्ली पर आश्रित हुयी । इसका प्रथम गर्वनर सुप्रसिद्ध योद्धा अब्दुला खाँ उजबेक था । अकबर द्वारा किये गये दैशिक संगठन के फलस्वरुप इस जालौन जनपद को सरकारो में बिभक्त किया गया । कालपी सरकार व एरच सरकार । इस योजना के अर्न्तगत कालपी ने अपने आय को देश की महान बडी धारा आगरा की सुबह के साथ जोड़ लिया । जिले का उत्तरी पूर्वी भाग मुहाल आफ कनार , भदेख , रायपुर , कालपी और मुहम्मदाबाद , कालपी सरकार के अधीन रहे एवं दक्षिणी तथा पश्चिमी भाग कोंच और खसीस , एरच सरकार के अधीन रहे । उस समय उरई मुहाल का क्षेत्रफल ६५७७६ बीघा था । जबकि मुहम्मदाबाद का क्षेत्रफल १८४०८० बीघा था । उरई एवं मुहम्मदाबाद मुहाल मिलकर वर्तमान उरई तहसील के अन्तर्गत आते थे तथा इसके साथ ही साथ जालौन एवं कालपी का भी कुछ युद्ध भाग इसमे सम्मिलित था । कोंच मुहाल का क्षेत्र १५५३२० बीघा था तथा खकसीस का क्षेत्र ८६२३३ बीघा था । (४)

सन १५८३ ई० में अकबर बादशाह कालपी आया जहाँ पर वह जागीरदार अब्दुल मतलब खान का अतिथि था । सन १५६० ई० में कालपी का जागीरदार कासिम अली खान था । सन १५६५ ई० में यह जागीर इस्माईल कली खान की थी । सन १६०५ ई० में जोकि जहाँगीर के शासन का प्रथम वर्ष था , में यह कालपी ख्वाजा अब्दुल्ला खान के हाथों आ गई । सन १६११ ई० में वैरम खान के पुत्र मिर्जा अब्दुर्र रहीम खानखाना को कालपी एवं कन्नौज में विद्रोहियों को कुचलने के लिये विशेष तौर पर नियुक्त किया गया (५)

सन १६८२ ई० के बाद औरंगजेब जब दक्षिण भारत पर अपना अधिकार करने के लिये बढ़ा तब उत्तर भारत में खासतौर पर बुन्देलखण्ड ने मुगलों के खिलाफ विद्रोह का झन्डा उठाया । जिसमें चम्पतराय का विशेष स्थान था । उसने ओरक्षा के राजा वीरसिंह देव के साथ मिलकर, मुगलों से लोहा लिया और उसके बाद उसके पुत्र छत्रसाल ने तो डटकर मुकाबला किया और अपने जीवन के बहुमूल्य ८१ वर्ष मुगलों के दाँत खट्टे करने में लगा दिये ।

मऊ के समीप एक जंगल में छत्रसाल को बाबा प्राणनाथ ने दीक्षा देकर, अपना शिष्य बना लिया और मुगलों के खिलाफ अपना स्वतंत्र राज्य बनाने का गुरूमन्त्र दिया । सन १६८५ ई० में सागर, दमोह, बरहटा, बाँदा, मुस्करा, महोबा, राठ, पनवाड़ी, आदि जीतने के बाद छत्रसाल कालपी की ओर चले । उस समय यहाँ का सरदार दुर्जन सिंह था । कालपी थाना लूटकर उस थाने के मुसलमान थानेदार को हटाकर वहाँ पर उत्तम सिंह धंधेरे, थानेदार को नियुक्त किया ।

सनं १७२१ में मुहम्मद खां बंगश, नबाब की पदवी लेकर, एरच, कोंच, कालपी, जालौन, सेऊँड़ा आदि परगनों का सरदार बनाया गया । मुहम्मद खाँ बंगश ने पीरखाँ को कालपी का सरदार अपनी ओर से नियुक्त किया । छत्रसाल ने पीरखाँ को अपदस्थ करके उसकी बनवाई मस्जिदें तुड़वा दीं । बंगश खाँ को जब यह हाल मालूम हुआ तो उसने दुबारा आक्रमण की योजना बनाई व अपने अधीनस्थ सभी सरदारों को फौज इक्ठा करने का आदेश दिया तथा इस काम की बागडोर अपने प्रिय सरदार दलेल खाँ को सौंपी । दलेलखाँ हिन्दू राठौर वंशी क्षत्रिय था जिसे बंगश खाँ ने जबरदस्ती मुसलमान बना लिया था । सन १७२४ ई० में बंगश खाँ ने यमुना के किनारे पड़ाव डाल दिया तथा दूसरी ओर से छत्रसाल के पुत्र हिरदेशाह और जगतराय भी जम गये । जिससे 'साकरखेड़ा' के युद्ध के पश्चात् बंगशखाँ को मजबूरन छत्रसाल से सन्धि करनी पड़ी । फिर बुन्देलखण्ड से बुन्देलों को निष्कासित करने का बंगशखाँ ने दूसरी बार बीड़ा उठाया । सन १७२८ ई० में जब छत्रसाल के मुंशी दुर्गसिंह ने

राठ और पनवाड़ी क्षेत्रों में उपद्रव करने प्रारम्भ कर दिये तब बंगशखाँ ने अपने अधिनायक मुहम्मद बशारत मुल्तानी को दमन करने के लिए भेजा । उसके आनाकानी करने पर बंगश खाँ ने उससे उरई छीन कर दतिया के राजा रामचन्द्र को देदी । इधर लगातार भयानक युद्धों के कारण बुन्देली सेना के हौसले पस्त से होने लगे जानकर, महाराज छत्रसाल ने हिन्दुत्व के रक्षक मराठा राजा शिवाजी के पुत्र पेशवा बाजी राव को सहायता हेतु एक पत्र लिखा जिसमें लिखा कि-

जो गति भई गजेन्द्र की, सो गति पहुँची आज ।
बाजी जात बुन्देल की, राखो बाजी लाज ॥

इस पत्र के पाते ही पेशवा बाजी राव ने बुन्देलों की सहायता तुरन्त करने का निश्चय कर सेना को कूच का आदेश दिया । उनकी सेना ने सन १७२६ ई० में मालवा में प्रवेश किया । १२ मार्च सन १७२६ में मराठों ने बाजी राव पेशवा के नेतृत्व में अचानक बुन्देलखण्ड में प्रविष्ट होकर बंगश खाँ की विजयों को पराजय में बदल दिया । महाराज छत्रसाल ने पेशवा को अपना तृतीय पुत्र माना था ।अतः महाराज छत्रसाल जब १२ मई १७३१को स्वर्गवासी हुए तब उनके बाद, महाराजा छत्रसाल के राज्य के तीन हिस्से हुए । उनमें राज्य का तीसरा भाग पेशवाओं के अधिकार में आया जिसमें कालपी , हटा, हृदयनगर, जालौन, गुरसरांय, झांसी, सिरौज, गुना, गढ़ाकोटा और सागर आये । सन १७३६ ई० में मराठों द्वारा इस पूरे क्षेत्र पर अपना अधिपत्य कायम करके कालपी को अपना मुख्यालय बनाया तथा गोविन्द राव को प्रथम राज्यपाल नियुक्त किया गया जबकि कोंच, होल्करों के आधीन रहा । बगैर किसी बाधा के यह स्थिति सन १८०५ ई० तक चलती रही।(६)

सन १७३८ ई० के उत्तरार्द्ध तक जालौन राज्य की स्थापना हो गई । जालौन काफी अन्दर है अतः इस राज्य की राजधानी बनाने के लिए जालौन को चुनने का अर्थ केवल यह था कि मुगलों की सेना को यहाँ तक पहुँचने में कई स्थानों पर युद्ध करना पड़ेगा । इस राज्य का झन्डा लाल रंग का था । इसकी अपनी टकसाल थी । आज भी महोबा से १३ मील दूर स्थित श्रीनगर में गोविन्दराव द्वारा बनाया गया शिवजी का मन्दिर है । जिसपर शिवरात्रि के दिन भगवे झन्डे के साथ साथ जालौन राज्य का भी झन्डा फहराया जाता है। गोविन्दराव -खेर परिवार के थे तथा अपने नाम के पीछे बुन्देला शब्द बुन्देलों के सम्मान हेतु जोड़ लिया था । जालौन में हिरदेशाह (छत्रसाल के पुत्र) के नाम पर एक मुहल्ले का नाम आज भी हिरदेशाह हैं तथा उनके नाम का एक चबूतरा भी इस मुहल्ले में है । जालौन के राजधानी बनते ही, इसका महत्व बढ़ने लगा और तमाम लोग बाहर से आ आकर यहाँ बसने

लगे । यहाँ एककिला भी बनवाया गया जिसके चारों ओर एक खाई भी बनवाई गई जिसके चिन्ह आज भी दिखलाई पड़ते हैं । गोविन्दराव ने गोविन्देश्वर का मन्दिर, लक्ष्मीनारायण मन्दिर, बड़ी बावड़ी, छोटी बावड़ी बनवायीं । अहमदशाह अब्दाली के सैनिकों के साथ युद्ध करते समय गोविन्दराव वीरगति को प्राप्त हुए । इस युद्ध में गोविन्दराव, पेशवा के आदेश से मराठों की सहायता हेतु गये थे।(७)

गोविन्दराव की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र गंगाधर गोविन्द को गद्दी मिली। १५ वर्षों के बाद गृहविवाद के कारण गोविन्दराव के भाई बालाराव ने जालौन की सम्पत्ति छोड़कर गुरसरांय का स्वतंत्र राज्य अपने अधिकार में ले लिया और गंगाधर गोविन्द राव ने स्वतंत्र रूप से जालौन राज्य की नींव रखी।(८)

इस बीच पश्चिम भारत में अंग्रेजों एवं पेशवाओं के बीच पहल होने लगी। शान्ति सन्धि १ मार्च सन १७७६ ई० को पुरण्डा में मराठों एवं अंग्रेज गर्वनर जनरल के फ्रांसिसी प्रतिनिधि चेवलियर सेन्ट लबिन और मराठों के प्रतिनिधि नाना फर्नवीस के मध्य सम्पन्न हुई । इसके बाद बम्बई सरकार द्वारा कर्नल गोड़ार्ड को बुन्देलखण्ड को बम्बई राज्य के अधीन करने हेतु भेजा गया । उसने कालपी पर अधिकार करके अपने अभियान को आगे बढ़ाया । सन १७६८ ई० में कालपी अंग्रेजों के हाथ चली गई ।

सन्दर्भ सूची

१- जालौन गजेटियर वर्ष १६०६			पृष्ठ सं० ११५
२- - युगयुगों में कालपी - (लेख)	प्रो० कृष्ण दत्त बाजपेयी		
३- - शोधप्रबन्ध -	डा० यामिनी श्रीवास्तव	सप्तम प्रकरण सं०	पृष्ठ ८
४- बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास -	गोरेलाल तिवारी		पृष्ठ सं० ७४
५- जालौन गजेटियर वर्ष १६०६ -			पृष्ठ सं० ११५ से १२५
६- " " "			पृष्ठ सं० १२७ - १२८
७- लोकसंगम वर्ष १६७० -	मुंशी सहाय श्रीवास्तव -		पृष्ठ सं० ४६
८- जालौन गजेटियर [illegible] १६०६			पृष्ठ सं० १२८

मानचित्र
जिला - जालौन
ऐतिहासिक स्थलों सहित
सिन्ध नदी
जिला इटावा
जगम्मनपुर
रामपुरा
गोपालपुरा
पहूज नदी
मध्य प्रदेश
जिला कानपुर
यमुना नदी
चुर्खी
जालौन
कालपी
गुलौली
आटा
कुरहना
अकबरपुर इटौरा
उरई
कोंच
परासन
जिला हमीरपुर
सैदनगर
जिला झांसी
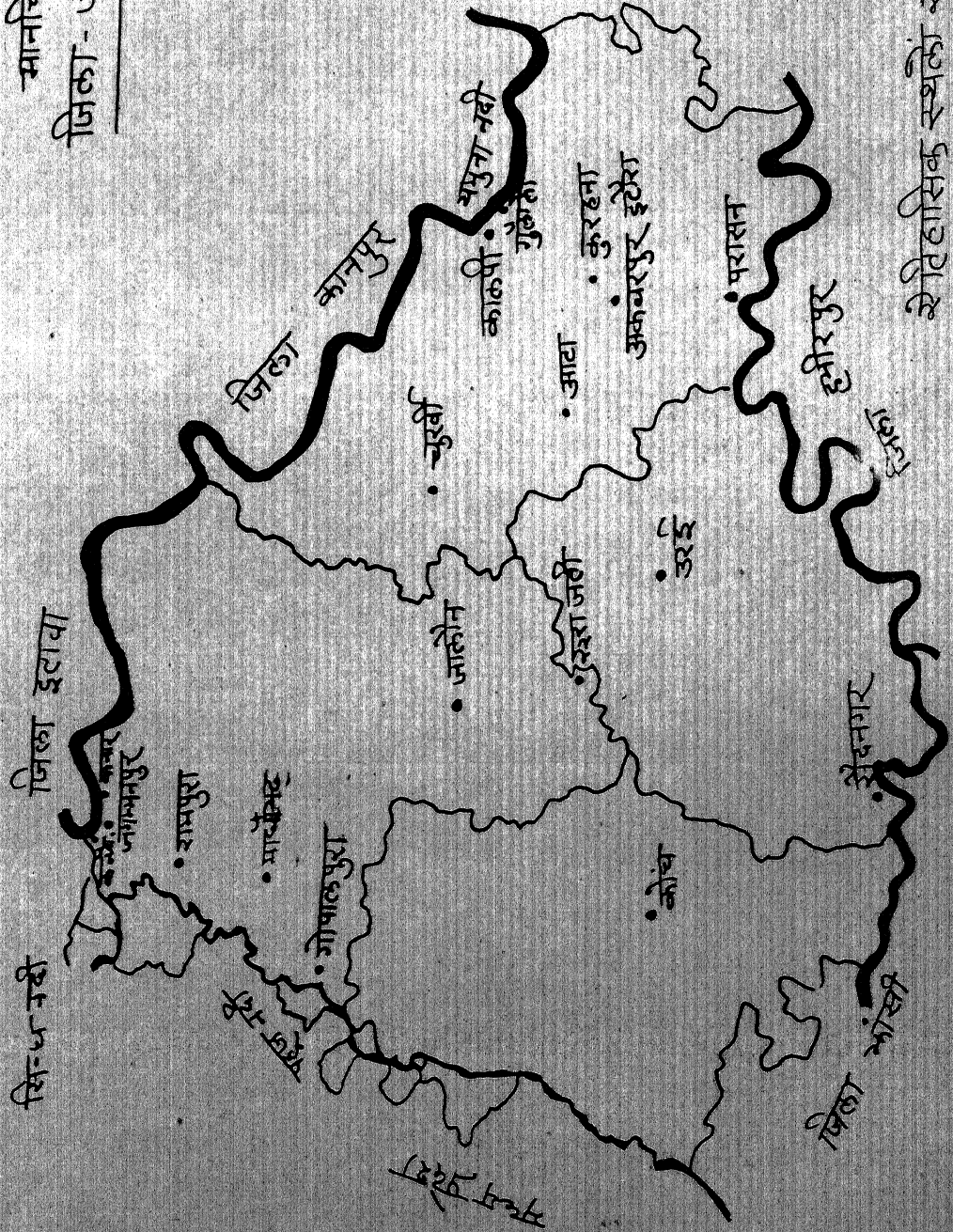
जनपदीय प्रमुख ऐतिहासिक स्थलों की स्थिति

विभिन्न पुरातात्विक साक्ष्यों को अपने अंक में समेटे, पौराणिक गाथाओं एवं ऋषि मुनियों की कर्मस्थली के रूप में सुविख्यात जनपद जालौन के अनेकानेक स्थलों पर गुणी मुनियों ऋषियों के आश्रम रहे हैं जहाँ पर उनके द्वारा चतुर्मास व्यतीत किया गया अथवा कठोर तप किया गया अथवा भक्ति की रसधरा में गोते लगाकर मन वचन कर्म से समर्पण किया गया ।ऐसे ही कुछ विशिष्ट स्थलों का मध्यकालीन प्रभाव से युक्त संछिप्त विवरण निम्नानुसार है जो कि उन स्थलों की प्राचीन वैभवमयी परम्पराओं एवं ऐतिहासिक गाथाओं को अपने गोद में सुरंक्षित आश्रय दे रहे हैं ।

अकबरपुर इटौरा -

यह ग्राम २६°-२° उत्तरी अक्षांश एवं ७६°-४३° पूर्वी देशान्तर पर स्थित है जिसका क्षेत्रफल २२८६ एकड़ है एवं यह कालपी नगर से दक्षिण की ओर ८ मील एवं उरई नगर से उत्तर पूर्व की ओर १६ मील की दूरी पर बसा है। (1)

राजनैतिक दशा - प्राचीन काल में यह स्थान इटौरा नाम से सुविख्यात था ब्रहमाण पुराण के अन्तर्गत कालपी महात्म्य के चतुर्थ अध्याय में वर्णन मिलता है कि -

इटौरारव्यं महापुण्यं भुक्ति मुक्ति प्रदायकम् ॥

अर्थात इटौरानामक ग्राम भोग और मोक्ष दोनों प्रदान करने वाला है । इसी पुराण में आगे वर्णित है -

"इस्त्रयाणां सुसंग्राही श्चैतका दशबोधकः ॥
चतुर्दश महाविद्या उदरे यस्य संस्थिताः ॥
तेनायं त्रिदशाचार्य स्तन्नामाख्याति भागतः ॥
तस्येदं क्षेत्र माश्चर्य योगिवृन्दैरधिष्ठितम् ।
मन्त्र सिद्धिकरं पुं सां योग सिद्धश्च्य योगिनाम ॥
भवेदत्र न सन्देहो मुने ! सत्यं ब्रवीमिते ।
ब्रहस्पति स्तपस्तेये ब्रहमणः शरदां शतम् ॥

अर्थात् ई का अर्थ है ३ को इक्कठा करने वाला और ८,११ का बोधक है। अस्तु ११ और ३ (१४) विद्यायें इनके पेट में स्थित रहती हैं । इसी से देवगुरू (ब्रहस्पति) इस (इटोर) नाम से प्रसिद्ध हुए । उनका यह आश्चर्यमय क्षेत्र योगी जनों से पूर्ण है । मनुष्यों की मन्त्रसिद्धि करने वाला और योगियों को योग सिद्धि देने वाला है । हे मुने ! इसमें तुम्हें

सन्देह न हो, मैं तुमसे सत्य ही कहता हूँ कि यहाँ पर श्री ब्रहस्पति ने ब्रहमा की १०० वर्ष तपस्या की । देवगुरू ब्रहस्पति जी की तपस्या से प्रसन्न होकर श्री ब्रहमा जी सशरीर प्रगट हुए और उन्होंने इस इटोरा क्षेत्र के विषय में निम्नानुसार वरदान दिया -

"मन्त्र सिद्धि भवत्वत्र वियासिद्धिस्तथैव च ।

ज्ञानसिद्धि भक्ति सिद्धिः प्रपत्ति सिद्धि रेव च ॥

अर्थात् यहाँ पर मन्त्र, विद्या, ज्ञान, भक्ति तथा शरणागत भाव की सिद्धि प्राप्त हो। (२)

अतः यह क्षेत्र अत्यन्त प्राचीन है । पौराणिक काल के पश्चात् यहाँ पर मौर्य साम्राज्य रहा तत्पश्चात् कुषाण एवं एरच राज्य की सीमा के अन्तर्गत रहा और फिर गुप्तकाल का भी सुख इस स्थान ने भोगा । सल्तनत काल का कोई विशेष प्रभाव इस स्थान पर नहीं रहा अलबत्ता मुगल काल में सन १४८३ ई० में जन्मे रोपण गुरू कालिन्दी नदी के दर्शनों की इच्छा लेकर आये तथा इटौरा में ही रहकर घोर तपस्या करके भगवान विष्णु को प्रसन्न कर लिया एवं उनसे यह वरदान माँगा कि यह क्षेत्र सम्पूर्ण सिद्दियों से भरापूरा रहे ।

रोपण गुरू की आध्यात्मिक अलौकिक शक्तियों से अकबर भी प्रभावित हुआ तथा उसने इस इटौरा ग्राम के पश्चिमी छोर पर एक ग्राम बसाया जिसे अकबरपुर इटौरा के नाम से जाना जाता है । (३)

सनं १६१५ ई० में इसी ग्राम में मुगलसम्राट जहाँगीर ने एक चौमन्जिला मन्दिर बनवाया था जो कि वास्तुशिल्प की दृष्टि, से अत्यन्त सुन्दर है। (४) इस ग्राम से ही रोपण गुरू ने सुविख्यात प्रणामी पंथ को चलाया था तथा अपने प्रियशिष्य उजियार को दीक्षित कियाथा । मुगलशासन काल में यह क्षेत्र कालपी के सूबेदार द्वारा संचालित होता था । सन १५६१ में अब्दुल रहीम खानखाना यहाँ का गर्वनर था । सन १६७२ के पश्चात् छत्रसाल इस इलाके से मालगुजारी बसूल करने लगे थे परन्तु इसी बीच सम्राट फरूखशियार ने यहाँ का दायित्व अपने कृपापात्र मुहम्मद खाँ गजनफरजंग को दे दिया । उसके बाद मुहम्मदशाह यहाँ का नबाब नियुक्त हुआ जिसे सन १७२० ई० में छत्रसाल ने हराकर इस क्षेत्र पर पुनः अपना अधिकार जमा लिया । सन १७२४ में मालवा के सरदार मुहम्मद खाँ बंगश ने आक्रमण किया जिसे छत्रसाल ने बेकार कर दिया । परन्तु दस वर्षों के पश्चात् सन १७३४ में पुनः मुहम्मद खाँ बंगश ने आक्रमण किया । यह आक्रमण अत्यन्त तीव्र था । इसी निमित्त पेशवा बाजी राव को सहायतार्थ, छत्रसाल द्वारा पत्र भेजा गया था । इसके बाद इस क्षेत्र पर महाराज छत्रसाल व पेशवा बाजीराव के मध्य हुई बातचीत के अनुसार, मरहठों का अधिपत्य हो गया और इस

क्षेत्र का प्रबन्ध देखने हेतु गोविन्द बल्लार खेर को नियुक्त किया गया । सन १७०६ ई० में पानीपत युद्ध में इनकी मृत्यु हो गयी।(५)

आर्थिक दशा - यहाँ की आर्थिक दशा सामान्य थी । अर्थ के सारे कामकाज मुख्यतः कृषि पर आधारित थे । राजनैतिक उथल पुथल का कोई विशेष प्रभाव यहाँ पर नहीं रहा । यहाँ सम्पन्न वर्ग काफी सम्पन्न था । इसी कारण सन १६७२ में जब छत्रसाल नायक बने तब उन्होंने कालपी को खूब अच्छी तरह लूटा। (६) इस लूटपाट में क्षेत्र का सामान्य वर्ग प्रभावित नहीं हुआ ।

सामाजिक दशा - मध्यकाल में इस स्थान की सामाजिक दशा सामान्य रही । लोग बाग अपने सामाजिक कार्य, उत्सव आदि खुले तौर पर सम्पन्न करते थे । मुगलकाल के दौरान अवश्य धार्मिक क्रियायें सम्पन्न करने पर जहाँ हिन्दुओं को जजिया टैक्स देना पड़ता था , वहीं पर मुसलमान बगैर किसी कर के अपने धार्मिक कृत्य सम्पन्न कर लेते थे । स्त्रियों को अपनी सुरक्षा हेतु पर्दा का सहारा लेना पड़ता था ताकि उनकी अस्मिता पर कलंक न लग सके। मुगलकाल में हिन्दुओं पर जुल्म ढहाकर उन्हें इस्लाम कबूल करने पर मजबूर किया जाता था और इस्लाम कबूल न करने पर उन्हें यातनायें दी जाती थीं।(७)इस सबके बाद कला इत्यादि में लोगों की रूचि थी ।

भवनों के निर्माण में विभिन्न समकालीन स्थितियाँ एवं पृष्ठ भूमियाँ - मध्यकाल में भवनों का निर्माण समकालीन स्थितियों पर पूरी तरह से निर्भर करता था । इटौरा में निर्मित रोपण गुरू का मन्दिर इस बात को प्रमाणित करता है । मुगल काल में भवनों के निर्माण में लाल पत्थर प्रयुक्त होना आम बात थी तथा भवन के निर्माण में खम्बो कोआधार बनाकर मंजिलों का निर्माण किया जाता था । (८)इस काल में तहखानों का निर्माण भी एक विशेषता थी । इटौरा में रोपण गुरू का मन्दिर मुगल शैली भवनों के सिद्धान्तों के काफी समीचीन है । रोपण गुरू की अध्यात्मिक शक्तियों से प्रभावित होकर अकबर के दरबार में रोपण गुरू को बुलाया जाना तथा जहाँगीर द्वारा मन्दिर निर्माण में योगदान करना इस बात को प्रमाणित करता है कि तत्कालीन शासकगण भी आध्यात्मिक अलौकिक शक्तियों के वशीभूत थे और उनसे प्रेरित होते थे ।

संदर्भ सूची

(१) जालौन गजेटियर वर्ष १६०६ — पृष्ठ १४५

(२) ब्रहमांड पुराण श्लोक संख्या २६-२८-२६-३०व३२

(३) "कालपी क्षेत्र के दर्शनीय स्थल - मोतीलाल शर्मा - पृष्ठ ४८

(४) शिलालेख - रोयण गुरु मन्दिर इटोरा

(५) कालपी की पवित्र भूमि '- कृष्ण बिहारी लाल - पृष्ठ १२५ -१२६ -१२७ -

(६) कालपी की पवित्र भूमि - कृष्ण बिहारी लाल - पृष्ठ १२५

(७) भारत में मुस्लिम सुल्तान - पी० एन० ओक - पृष्ठ १०३

(८) "हिन्दू मुस्लिम स्थापत्य कला शैली " - एस०एम०असगरअली कदरी - पृष्ठ संख्या -८७

आटा -

यह ग्राम २६°·३° उतरी आक्षांस एवं ७६°-३७° पूर्वी देशान्तर के मध्य उरई कानपुर राज मार्ग पर स्थित है जो कि कालपी से दक्षिण में ११मील एवं उरई से उत्तर पूर्व की ओर ११मील की दूरी पर बसा है। इसका क्षेत्रफल ३३६६एकङ है। (१)

राजनैतिक दशा - यह स्थान वामदेव मुनि का आश्रम के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ पर सघन लतायें थी जिनसे यह आश्रम आच्छादित था। (२) यह भी कहा जाता है कि यहाँ पर वामदेव मुनि का जन्म भी हुआ था तथा यहाँ पर एक हनुमान जी का मन्दिर है जहाँ पर वामदेव मुनि तप किया करते थे। (३) यह स्थान इसलिए भी अपना महत्व रखता है कि सन १८६५ के वन्दोवस्त के समय पाँच परगने थे , आटा उनमें से एक था तथा कालपी इसी के अन्तर्गत आती थी। (४) मई सन १८०४ ई० में [illegible]च के शासक आमिर खान ने अंग्रेजो की फौज से युद्ध किया और उनको काफी छति पहुँचाई तथा कालपी व आटा को लूट लिया। (५)

आर्थिक दशा - आटा की आर्थिक दशा भी इटौरा की भाँति सामान्य ही रही परन्तु कुछ रईस लोग भी थे। मुख्य जीविकोपार्जन का साधन कृषि ही था।

सामाजिक दशा - यहाँ की सामाजिक दशा कुछ विशिष्ट नही थी। इटौरा की ही भाँति यहाँ पर भी सभी कुछ वैसा ही था।

भवनो के निर्माण में विभिन्न समकालीन स्थितियाँ एवं पृष्ठभूमियाँ - भवन निर्माण पर हिन्दू स्थापत्य शैली एवं मुस्लिम वास्तु कला की मिश्रित छाप यहाँ के भवनो पर दृष्टिगोचर होती है।

संदर्भसूची -

(१) जालौन गजेटियर वर्ष १६०६ — पृष्ठ १४६
(२) कालपी क्षेत्र के दर्शनीय स्थल - मोतीलाल शर्मा - पृष्ठ ४८
(३) जालौन गजेटियर- पृष्ठ १४६
(४) जालौन गजेटियर - पृष्ठ ५५
(५) जालौन गजेटियर - पृष्ठ १३२

गोपालपुरा -

यह स्थान २६° १५ ' उत्तरी अक्षांस तथा ७९° ८' पश्चिमी देशान्तर के मध्य उरई से २६ मील दूर उत्तर पश्चिम में स्थित है । (१)

राजनैतिक दशा - यह स्थान अत्यन्त प्राचीन है तथा इसे लगभग १०००वर्ष ईसा पूर्व गोपालगिर बाबा द्वारा बसाया गया ।(२) इसी से इसका नाम गोपाल पुरा पड़ा। गोपालपुरा जागीर की स्थापना लहार के राजा रुप पाल सिंह के छोटे पुत्र आलम राव द्वारा की गई । (३) संवत १६३० में आलमराव को यह क्षेत्र मिला था तत्पश्चात् इनके पुत्र दलपत राव को उत्तराधिकारी के रुप में यहाँ की जागीर के १२ गाँव मिले थे जोकि सन १६०६ में मात्र ६ रह गये । यह जागीर राजस्व युक्त थी परन्तु इसका किराया लगभग ३०,०००/- रुपये था ।(४)

आर्थिक दशा - लहार के राजा रुप पाल सिंह को ६२ गावौं की जागीर प्राप्त हुयी थी जिसको उन्होंने अपने पुत्रो में बाँट दिया तथा गोपाल पुरा जागीर में १२गाँव मिल गये थे ।४ यह सत्य है कि जब जागीर के साथ अधिक गाँव थे तब उसकी आर्थिक दशा बहुत अच्छी थी परन्तु जागीर बाँटने से आर्थिक दशा पर निश्चित रुप से प्रभाव पड़ा और यह काफी घट गयी फिर भी इस जागीर के जागीरदार ने अपने परिश्रम से अपनी जागीर की सीमा का विस्तार करके यहाँ राजस्व को बढाया और मातहतो के हितों के विषय में सोचा जिसके परिणाम स्वरुप सुन्दर बाग बगीचौं का निर्माण कूपों का निर्माण आदि सम्पन्न हुआ । अर्थोपार्जन हेतु जागीर के अवाम का मुख्य पेशा कृषि ही था तथा कृषि आधारित व्यवसाय ही यहाँ पर सक्रिय थे । नित्यप्रति उपयोग हेतु वस्तुओं के व्यापार में यहाँ वणिक वर्ग सक्रिय था ।

सामाजिक दशा - सामाजिक दशा सामान्य ही थी । लोग बाग भूख से व्याकुल नही थे तथा सभी शुभ सामाजिक क्रिया कलाप उत्साह के साथ सम्पन्न होते थे । धार्मिक उत्सवों का भी आयोजन सुचारु रुप से होता था क्योंकि जागीरदारो का स्वंय का रूझान धार्मिक था अतः धार्मिक कार्यों में उनका अर्थ, धर्म व मन से सहयोग समाज को प्राप्त था । स्त्रियो को विशेष सुविधा नहीं थी । पढाई की ओर समाज में विशेष रुचि नहीं थी जिसके कारण निरक्षरर्ता का ही बोल बाला रहा । इस ओर शासक वर्ग द्वारा भी कोई विशेष पहल नही की गयी जिससे आज भी इस क्षेत्र के लोग निरक्षरर्ता की त्रासदी झेल रहे है ।

भवनों के निर्माण में विभिन्न समकालीन स्थितियाँ एवं पृष्ठभूमियाँ - इस जागीर का जब निर्माण हुआ तब जागीर दार ने अपने निवास हेतु एक गढी के निर्माण का संकल्प लिया क्यों कि परिवार के लिये छत की नितान्त आवश्यकता होती है। जागीर के अन्य भवन स्थानीय वस्तुओं की उपलब्धता के सहयोग से बनते थे । यह क्षेत्र पेड़ो से पटा पड़ा होने के कारण एवं

नदी के किनारे स्थित होने से यहाँ के भवनों मे लकडी , बाँस , तथा मिट्टी के बने खपरेलों का उपयोग बहुतायत में होता था । आज कल तो पकी हुयी ईटों का चलन सर्वसुलभ होगया है । सुरक्षा की दृष्टि से लोग अपने घरो में दरवाजो व खुली वायु हेतु खिड़कियों को कमरो में आवश्यकीय रुप से स्थान देते थे । जागीरदारो की गढी को छोड़ कर शेष भवन बिल्कुल साधारण होते थे जिनमें दो कक्ष से चार कक्षो तक ही होते थे । इनमें एक कक्ष रसोई के रुप में व गृहस्थी के भण्डारागार के रुप में प्रयुक्त होता था । घर के बाहर बरामदे के निर्माण का भी प्रचलन था ।

सन्दर्भ सूची -

(१) जालौन गजेटियर वर्ष १६०६ — पृष्ठ सं० १४६

(२) कुशराजवंशं प्रदीप- राजा कृष्णपाल सिंह जूदेव — पृष्ठ १८३

(३) जालौन गजेटियर वर्ष १६०६ — पृष्ठ ७४

(४) कुश राजवंश प्रदीप - राजा कृष्णपाल सिंह जूदेव — पृष्ठ १८३

कालपी -

कालपी तहसील २५°-५३° और २६°-२२° उत्तरी अक्षांश एवं ७९°२५° और ७९°-२५° पूर्वी देशान्तर के मध्य में स्थित है । यह क्षेत्र यमुना नदी के दक्षिणी किनारे पर स्थित है।(१)

राजनैतिक दशा - कालपी की राजनैतिक दशा प्राचीन काल में अत्यन्त उच्च स्तरीय थी । सन ११९६ ई०की विजय के पश्चात यह यवनों के हाथों में अधिक समय तक नहीं रह पाया । सन १२३१ ई० में बीर बुन्देलों के हाथ में यह पुनः आ गई और एक शताब्दी तक से अधिक काल तक यह उनके अधीन रही । सन १३७८ ई० में कालपी की जागीर दिल्ली के किसी नायब के प्रबन्ध मेंदे दी गई और कालपी का सीधा सम्बन्ध दिल्ली के बादशाहों से हो गया । तैमूर लंग के आक्रमण के पश्चात् सन १४०० में कालपी मलिकजादा फीरोज के पुत्र महमूद खाँ की जागीर था । जौनपुर के शर्की बादशाह इस पर अपना अधिपत्य करना चाहता था और दिल्ली के सुल्तान भी इसे छोड़ना नहीं चाहते थे । सन १४१२ में इब्राहीम ने कालपी को घेर लिया परन्तु लोधी की भेजी हुई सेना से उसे हार खानी पड़ी । सन १४२६ में सुल्तान महमूद खाँ का पुत्र कादिर खाँ कालपी का गर्वनर था । सन १४३२ में इब्राहीम शाह ने पुनः कालपी पर अपना प्रभुत्व जमाने की चेष्टा की जिसमें उसे पुनः पराजित होना पड़ा । सन१४४२ में महमूद शर्की ने कालपी को लूटकर उसे अपने अधिकार में ले लिया और मालवा वालों को वापिस नहीं दिया । सन १४८८ तक कालपी जौनपुर राज्य के अन्तर्गत रहा परन्तु इसके बाद दिल्ली के शासक बहलोल लोदी ने इसे जीतकर अपने पौत्र आजम हुमायूँ को दे दी । मन१५०७ में सिकन्दर लोदी का पुत्र जलाल खाँ लोदी कालपी का गर्वनर था । सन १५३० में हुमायू ने कालपी को यादगार मुहम्मद मिर्जा के अधिकार में कर दिया । सन १५४० में हुमायूँ शेरशाह से कन्नौज के निकट पराजित हो गया था ।अतः शेरशाह ने कालपी की जागीर मल्लूखाँ को दे दी । सोलहवी शताब्दी में कालपी दिल्ली और बंगाल के बीच एक विशेष ठहरने का स्थान रहा है । शेरशाह सूरी के उत्तराधिकारियों के राज्यकाल में कालपी लगातार युद्धक्षेत्र ही बना रहा है । परन्तु सन १५५४ ई० में कालपी पुनः मुगलों के हाथ चली गयी ।(२)जब अकबर गद्दी पर बैठा तो उसने कालपी को आगरा सूबे की एक सरकार बनाया और अब्दुल्ला खाँ को यहाँ का गर्वनर नियुक्त किया । अकबर की मृत्यु के पश्चात् प्रसिद्ध हिन्दी कवि अब्दुल रहीम खानखाना कन्नौज और कालपी के गर्वनर नियुक्त हुए । अब्दुल रहीम खानखाना के समय कालपी की व्यापारिक उन्नति हुयी। (३)

औरंगजेब राज्य के पिछले पचीस वर्षों में कालपी तथा उसके समीपस्थ स्थानों पर मुगलों का प्रभाव बहुत कम हो गया था तथा इस क्षेत्र पर बुन्देला बीर छत्रसाल

का डंका बजने लगा था । सन १७०७ में औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् बहादुरशाह ने छत्रसाल से मित्रता कर ली । सन १७१३ में फरूखसियार बादशाह ने अपने सहायक बंगश खाँ जिसे मुहम्मद खाँ गजनफरजंग भी कहते हैं को कालपी दे दी और इसने अपने चचिया श्वसुर पीरखाँ को कालपी का प्रबन्ध दे दिया । सन १७१६-२० में बुन्देल राजपूतों ने कालपी को लूट लिया व पीरखाँ को मार डाला । दलेलखाँ ने पुनः कालपी पर कब्जा कर लिया परन्त अल्प समय के बाद ही सन १७२६ ई० में कालपी पुनः छत्रसाल के अधीन हो गई ।(४)अठाहरवीं शती के प्रथम चतुर्थांश में बुन्देलों,मुसलमानों और मरहठों के बीच कालपी पर प्रभुत्ता के लिए होड़ चलती रही । सन १७२६ ई० के बाद एक सन्धि द्वारा कालपी तथा कुछ अन्य प्रदेश मराठों को सैनिक व्यय के लिए दे दिये गये । मराठों ने कालपी को अपनी राजधानी बनाया और गोविन्दराव को उसका प्रबन्धक नियुक्त किया।(५)

सन १७७६ ई० के बाद कालपी पर अंग्रेजों का अस्थाई अधिकार रहा परन्तु १७८२ में सालवाई सन्धि से उसे मराठों को लौटा दिया गया । सन १८०३ ई० में कालपी के किले पर पुनः अंग्रेजों का अधिकार हो गया तब से डेढ़सौ वर्षों तक उन्हीं का अधिपत्य रहा (६) इसके बाद १८५७ में कालपी ने स्वतंत्रता की लड़ाई में अपना विशेष योगदान स्थापित किया । महारानी लक्ष्मीबाई झाँसी के नेतृत्व में कालपी में ही नानासाहब बिठूर तात्यां टोपेआदिकी स्वतंत्रता संग्राम की गुप्त मंत्रणा हुई और अंग्रेजों को इस पुण्य भारत भूमि से बाहर खदेड़ने की योजना का कार्य प्रारंभ हुआ । स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु कालपी का योगदान भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा गया है ।

आर्थिक दशा - कालपी की आर्थिक दशा काफी सुदृढ़ थी जब मुगलों से छत्रसाल ने इस नगरी को मुक्त कराया तब इस क्षेत्र के जागीरदारों ने बड़ी बड़ी भेटें देकर छत्रसाल को प्रसन्न किया था जो कि उनकी समृद्धता को प्रदर्शित करता था । पवित्र सलिला यमुना के निकट बसे होने के कारण यह स्थान दक्षिण भारत की यात्रा हेतु प्रवेश द्वारकेरूप में ख्याति प्राप्त था । यहाँ से जल एवं थल दोनों ही मार्ग सुगम थे । व्यापारिक वस्तुओंके आदान प्रदान हेतु जलमार्ग का समुचित उपयोग होता था । इस सबसे यहाँ के लोग कपास, घी, यातायात तथा हाथी घोड़ों का व्यापार करते थे । जिससे अच्छी आमदनी होती थी । व्यापार के साथ साथ खेती भी यहाँ का प्रमुख व्यवसाय थी । पडुवा मिट्टी के कारण अच्छी फसल होती थी । यहाँ के लोग धन धान्य से भरे पूरे रहते थे । एक समय था जब कालपी इतनी विशाल थी कि इसमें ५२मुहल्ले थे । यहाँ पर कागज तथा वस्त्र निर्माण का कार्य भी होता था । कालपी के कागज की प्रसिद्धि तो दूर दूर तक थी और इसका व्यापार भी अच्छी आय प्रदान

करता था । सामान्यतः कालपी की आर्थिक दशा काफी अच्छी थी जिसका प्रभाव हमें यहाँ के जन सामान्य जीवन पर परिलक्षित होता दीखता है ।

सामाजिक दशा - कालपी की सामाजिक दशा भी उन्नत थी । प्राचीन काल से ही यहाँ पर शिक्षा के प्रति विशेष आकर्षण रहा है । पाराशर ऋषि, वेद व्यास ऋषि, बाल्मीकि ऋषि, मार्कण्डेय ऋषि, च्यवन ऋषि कुम्भज ऋषि आदि के आश्रमों से भरपूर यह तपोभूमि अपने शिष्यों के लिए सामाजिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा के द्वार सदैव खोले रही है जिससे यहा का जनमानष शिक्षा के प्रति सदैव ही संवेदनशील रहा है । यहाँ के लोग सामाजिक मान्यताओं के प्रति भी समर्पित रहे हैं । इसी कारण परम्परागत तरीके से आज भी यहाँ के धार्मिक एवं सामाजिक उत्सव पूर्ण हर्ष एवं उल्लास के साथ सम्पन्न होते हैं । हिन्दुत्व के " वसुधैव कुटुम्बकम् " को चरितार्थ करते हुए यहाँ के मूल निवासियों ने इस्लाम को भी पूरा सम्मान दिया और आज इसी भावना के परिणाम स्वरूप कालपी के जर्रे जर्रे में पीर लेटे हैं।(८)कालपी को मन्दिरों की नगरी भी कहते हैं । यहाँ के कण कण में भगवान हैं ।

कालपी क्षेत्र में स्त्रियों की दशा भी अच्छी थी । समाज में उन्हें उचित स्थान प्राप्त था तथा उनका समयानुसार यथोचित सम्मान भी होता था । आदिकाल में स्त्रियाँ समान रूप से पुरूषों के साथ हाथ बटाती थी । इसी कारण महाभारत की मत्स्य गंधा यात्रियों को नाव द्वारा नदी पार उतारने के कार्य में सलंग्न थी तभी उसका संयोग पाराशर ऋषि से हुआ और महर्षि श्रीकृष्ण द्वैपायन वेद व्यास का जन्म हुआ ।

कालपी में सामाजिक व्यवस्था सुन्दर थी तथा सामाज में सभी वर्गों को उचित स्थान प्राप्त था और सभी जन अपने दायित्वों का निर्वाह पूर्ण मनोयोग से करते थे ।

भवनों के निर्माण में विभिन्न समकालीन स्थितियाँ एवं पृष्ठभूमियाँ - कालपी में मध्य काल में जिन भवनों का निर्माण हुआ वे सुन्दर मजबूत तथा सुरक्षित बनाये गये । मुगल काल में कालपी दिल्ली बादशाहत से सीधा जुड़ा था तथा उस समय एक बहुत ही अच्छा व्यापारिक केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित था । इस कारण यहाँ के जनजीवन में काफी समृद्धि थी जिसके कारण यहाँ पर धार्मिक भवनों एवं निजी रहायसी के लिए सुन्दर सुन्दर भवनों का निर्माण हुआ। यह क्षेत्र मुगल काल में अधिकतर रणस्थली रहा जिससे यहाँ के भवनों को सुरक्षा की दृष्टि से निर्मित किया गया तथा घरों आदि में मजबूत दरबाजे तथा खिड़कियों का प्रयोग किया गया इसके साथ ही घरों आदि की दीवारें काफी मोटी मोटी बनाई गई जिससे उन्हें सुगमता से

बेधा न जा सके । इन सुरक्षित भवनों में पत्थरों का प्रयोग तथा उन पत्थरों पर सुन्दर बेलबूटों का अंलकरण उस समय के लोगों की कला प्रियता का परिचायक है ।

संदर्भ सूची

१- जालौन गजेटियर		पृष्ठ १६३
२- कालपी महात्म -	रूप किशोर टण्डन -	पृष्ठ ११-१२
३- कालपी क्षेत्र का परिचय -	रमेश चन्द्र शुक्ल -	पृष्ठ ३२
४- कालपी महात्म -	रूप किशोर टण्डन -	पृष्ठ १६-१७
५- बुन्देलखण्ड का संछिप्त इतिहास -	गोरेलाल तिवारी -	पृष्ठ सं० २३२
६- कालपी क्षेत्र का परिचय-	रमेश चन्द्र शुक्ल -	पृष्ठ ३२
७- कालपी महात्म -	रूप किशोर टण्डन-	पृष्ठ १६
८- पुरातन गाथाओं का शहर कालपी -	राजेन्द्र कुमार पुरवार -	पृष्ठ १

कोंच

यह एक तहसील के नाम से जानी जाती है जोकि जालौन जनपद का दक्षिणी पश्चिमी चौथाई भाग है तथा यह २५° ५१° और २६° १५° उत्तरी अक्षांश एवं ७८° ५६° और ७९° १८° पूर्वी देशान्तर के मध्य बसा हुआ है। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि कोंच नगर जो किउरई मुख्यालय से पश्चिम की ओर २८ किमी० की दूरी पर है, २५° ५६° उत्तरी अक्षांश तथा ७९° १०° पूर्वी देशान्तर के मध्य बसा है। (१)

राजनैतिक दशा - बुन्देलखण्ड के नन्दनवन नाम से विख्यात क्रौंच ऋषि द्वारा बसायी गयी यह कोंच नगरी अत्यन्त प्राचीन है। (२) मेरे विचार से इस स्थान पर क्रोन्च पक्षी की विशेष अधिकता थी और क्रोन्च पक्षी एक ऐसा पक्षी है जिसके विषय में भविष्यपुराण के मध्यम पर्व के अध्याय १-२ में वर्णन मिलता है कि " इस पक्षी का दर्शन सैकड़ों जन्मों में किये गये पापों को नष्ट करता है। इसको देखकर नमस्कार करने से सैकड़ों ब्रहम् हत्याजित पाप नष्ट हो जाते हैं। उसके पोषण से धन तथा आयु बढ़ती है। क्रोन्च पक्षी नारायण का रूप है। स्नानकर यदि प्रतिदिन इसका दर्शन किया जाये तो गृहदोष मिट जाता है। (३) सम्राट अशोक के समय जब समूचा बुन्देलखण्ड 'बौद्ध' की शरण में चला गया था उस समय भी यह स्थान अपने आप को बौद्ध प्रभाव से बचाये रहा और यह तथ्य इस बात से प्रमाणित है कि यहाँ पर बौद्ध मतावलम्बी बहुत न्यून है तथा बौद्ध प्रस्तर प्रतिमायें भी नहीं मिलती हैं। ब्राहमण वंशीय पुष्य मित्र के पश्चात् हर्षवर्धन का काल आया। उसके बाद यह क्षेत्र ब्राहमण राजाओं के हाथ रहा।कोंच ने नाग, शक, गुप्त, हूण, बर्द्रन, कछुवाहे, कलाचुरि, चन्द्रल, अफगान, मुगल, गौड़ और बुन्देलों के वैभव और पराभव को भली भाँति देखा है।इतिहास साक्षी है कि सन ११९७ -९८ में कुतुबुद्दीन ऐबक ने कोंच और निकटवर्ती क्षेत्र हथिया लिया। कुतुबुद्दीन कालपी से होता हुआ कोंच आया। कोंच (झला पटा) मार्ग की ओर स्थित सबसे पुरानी मसजिद (बड़ी मसजिद) लगभग उसी समय की है। कोंच का प्रशासन उस समय कालपी सूबा के अन्तर्गत था। (४)

मदन कोषकार के अनुसार दिल्ली सम्राट पृथ्वीराज चौहान मलखान में सिरसागढ़ पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् कोंच तक आ गया था। घायल दिल्ली सम्राट के सैन्य शिविर मेंएक बारादरी बनाई गई जहाँ उसने विश्राम किया। यही बारादरी - बाराखंबा नाम से विख्यात है। (५)

तेरहवीं शताब्दी के प्रारंभ में जब बुन्देलों ने मऊ मेहोनी को अपनी राजधानी बनाया उस समय यह कोंच कुरार के खंगारों के अधीन था जिसे बुन्देलों ने अपने

अधिपत्य में ले लिया । अकबर के समय में एरच सरकार के अन्तर्गत यहाँ एक महल निर्मित किया. गया जोकि मुसलमानों के कब्जे में रहा तथा ये लोग सीधे अथवा आशिंक रूप से बुन्देलों के अधीन रहे। (६)

सत्रहवीं शताब्दी में छत्रसाल ने इस क्षेत्र पर अपना वर्चस्व बना लिया। औरंगजेब छत्रसाल के उपद्रवों से काफी परेशान हो गया था । उसने छत्रसाल के दमन हेतु पहाड़ सिंह व अमानुल्ला खाँ को भेजा । कूटनीतिज्ञ छत्रसाल ने औरंगजेब के समक्ष उपस्थित होकर उसे एक मुहर भेंट की । उस समय कोंच की देखभाल शाही अधिकारी अब्दुल समद खाँ द्वारा की जा रही थी । औरंगजेब के दरबार से लौटकर छत्रसाल ने पुनः यहाँ पर उपद्रव शुरू किया लेकिन अ० समद ख़ाँ द्वारा स्थिति नियंत्रण में कर ली गई । छत्रसाल चुप नहीं बैठे और उन्होंने चित्रकूट जाकर हमीद खां मुगल सेनापति को परास्त कर भगा दिया । अब्दुल समद खाँ कोंच में व हमीदखाँ द्वारा चित्रकूट में हिन्दुओं को जबरन मुसलमान बनाया जा रहा था जोकि छत्रसाल को बिल्कुल अच्छा नहीं लग रहा था और इसी कारण छत्रसाल ने इन दोनों का जमकर विरोध किया ।सन १६३० ई० में कोंच परगना छत्रसाल के अधिकार में आ गया था । महाराज छत्रसाल ने पेशवा बाजीराव को दिया गया वचन निभाया और अपनी सम्पत्ति का १/३ भाग उन्हें सौंप दिया और कोंच मराठों के अधिपत्य में आ गयी । सन १८३८ ई० में कोंच अंग्रेजों के अधिकार में आ गया था । सन १८५८ में अप्रैल माह में सर हयूरोज की पलटन ने कोंच पर हमला किया और क्रान्तिकारियों को कोंच छोड़ना पड़ा । कोंच में ही तात्या टोपे , महारानी लक्ष्मीबाई आदि अनेक क्रान्तिकारी पुनः इकत्रित हुए । अतः पुनः सर हयूरोज ने कोंच पर हमला किया । अग्रेजों ने चारों ओर से कोंचको घेर लिया । भयानक युद्ध हुआ । दोनों ओर से काफी लोग मारेगये । कैप्टन इन -फीड की इसी जंग में खोपड़ी खुल गई । अंग्रेजों ने कोंच को पुनः जीत लिया तथा क्रान्तिकारी कालपी की ओर बढ़ गये। (७)

आर्थिक दशा - मध्यकाल में कोंच की आर्थिक दशा समुन्नत थी । यहाँ का सामान्य उघम कृषि था । कृषि के सहायक उधोग धन्धे भी यहाँ पर चलते थे । कपास के साथ साथ यह कोंच नगरी गेहूँ की भी एक अच्छी मन्डी थी । इस मन्डी में गुड़ तम्बाकू तथा चावल का भी अच्छा व्यापार होता था । उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में कोंच एक बिकासशील नगर के रुप में उभर रहा था । सन १८४० में यह उच्चकोटि का वाणिज्यक केन्द्र था । यहाँ पर ५२ वैकिंग घर थे । १८६०में जब कस्टम लागू हुआ तब उससे यहाँ का व्यापार प्रभावित हुआ और तभी से इस कोंच नगर का व्यापार कम होने लगा । अलबत्ता इससे पूर्व कोंच के द्वारा दक्षिण भारत में नमक शकर तथा गन्ने के शीरा का उन्मुक व्यापार होता था । (८) अच्छे व्यापार

के कारण यहाँ पर समृद्धि थी । यहाँ के लोगो में अमन चैन था । इसी से लोगो ने यहां पर अपने अपने विशाल बगीचे बनवाये थे जिससे प्रदूशण तो दूर होता ही था अपितु आमदनी का स्त्रोत भी खुलता था । आर्थिक समृद्धि से सभी ओर खुशहाली थी ।

सामाजिक दशा - मध्यकाल में कोंच की सामाजिक दशा भी अच्छी थी । कोंच आर्थिक रुप से सम्पन्न था जिसके कारण यहाँ का जनमानष शांति पूर्वक अपना जीवन यापन करता था । यहाँ के लोग धर्मभीरू थे तथा धार्मिक कार्यों में विशेष रुचि लेते थे और इसी कारण विभिन्न धार्मिक उत्सवों का आयोजन विशेष उल्लास के साथ यहाँ पर सम्पन्न होते थे । गणेश उत्सव इन उत्सवों में से एक है । शिक्षा का प्रचार प्रसार व्यक्तिगत स्तर पर ही था । पाठशालाओं का तो आभाव था परन्तु विद्या अध्ययन की रुचि अवश्य समाज में थी जिसके कारण गुरुओं के घरो पर ही विद्दयाभ्यास होता था तथा समाज में गुरुजनों का अतिसम्माननीय स्थान था । वर्तमान समय में तो यहाँ पर प्रारम्भिक कक्षाओं से स्नातक तक विद्या अध्ययन की सुविधा उपलब्ध है । समाज में स्त्रियों का सम्मान होता था तथा उश्रृंखलता का बोलबाला नहीं था । समाज के सभी वर्गों में आपस में सुन्दर ताल मेल था तथा आपसी लड़ाई झगड़े नगण्य थे ।

भवनो के निर्माण में विभिन्न समकालीन स्थितियाँ एवं पृष्ठ भूमियाँ - भवनो के निर्माण पर समाज की समकालीन स्थितियों का विशेष प्रभाव होता है । जब दिल्ली सम्राट पृथ्वीराज चौहान सिरसागढ पर विजय प्राप्त के पश्चात् घायल अवस्था में कोचं में आये तब उनके विश्राम हेतु रातो रात एक बारादरी का निर्माण हुआ जोकि आज बारह खम्मा के नाम से प्रसिद्ध है । यहाँ पर समाज ने बौद्ध धर्म स्वीकार नही किया था जिसके कारण यहाँ पर बौद्ध भवनों का निर्माण नही हो सका । यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि बौद्ध स्मारकों के अभाव में यहाँ पर वैष्णव मन्दिरों को बहुतायत में देखा जा सकता है । यहाँ लक्ष्मी नारायण मन्दिर, रामलला मन्दिर, गणेश मन्दिर आदि हैं । जब १६८४- ८५ में यहाँ का सूबेदार अब्दुलसमद हिन्दुओं को तलबार की नोंक पर इस्लाम कबूल करने को विवस कर रहा था तो उस समय तमाम हिन्दू मन्दिरो को तोड़ कर उन्हे तकियों मसजिदों तथा मजारो में परिवर्तित करने का भी दुश्चक्र चल रहा था यहाँ का जनसामान्य समृद्ध था अतः उसने समाज में आध्यात्मिक चेतना जगाए रखने की दृष्टि से विभिन्न मन्दिरों आदि का निर्माण कराया तथा सुन्दर मजबूत अपने निवास ग्रहों का भी निर्माण कराया ।

संदर्भ सूची

१- जालौन गजेटियर — पृष्ठ १७१-१७२

२- 'नव अंकुर' जनवरी फरवरी ८५ - अयोध्या प्रसाद गुप्त - पृष्ठ १६

३- कल्याण - मत्स्यपुराणंक - वर्ष १९९२ — पृष्ठ २१२

४- तीन हजार साल पुराना है कोंच का इतिहास- सुनील कुमार श्रीवास्तव
दैनिक जागरण - १८-४-८६

५-बुन्देलखण्ड का नन्दन वन कोंच - अयोध्या प्रसाद गुप्त — पृष्ठ -१६

६-जालौन गजेटियर - — पृष्ठ १७८

७- तीन हजार साल पुरान है कोंच का इतिहास - सुनील कुमार श्रीवास्तव
दैनिक जागरण - १८-४-८६

८-जालौन गजेटियर — पृष्ठ - १७२

जालौन -

जनपद को इसी तहसील का नाम मिला है । यह एक बड़ी तहसील है जो कि उरई मुख्यालय के पश्चिम में २६° और २६° २७' उत्तर एवं ७९° ३' और ७९° ३१' पूर्वी देशान्तर के मध्य बसी है । इसकी उत्तरी सीमा यमुना नदी द्वारा घिरी है । जालौन तहसील के अन्तर्गत जालौन कस्बा भी है जो कि २६°-८° उत्तरी अक्षांश और ७९°-२१° पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। (१)

राजनैतिक दशा - यह क्षेत्र जालिम सिंह द्वारा बसाया गया था । वस्तुतः यह क्षेत्र सेंगर क्षत्रियों के अधिपत्य में था तथा इटावा के मेरब तक इनका प्रभाव था । इन सेंगर राजाओं ने जालिम सिंह को पुरोहिती के उपलक्ष्य में यह क्षेत्र दिया था । जालिम सिंह एक सनाढ्य ब्राहमण थे जिनका गोत्र मेरह था। (२) एक अन्य विचारानुसार महर्षि उद्दालक का आश्रम उरई था तथा उसकी सीमायें काफी विस्तृत व घोर वनों से आच्छादित थी इसी कारण वे उद्दालक वन कहलाने लगे । यही उद्दालक वन से दालकवन तथा दालवन और दालवन से जालवन हो गया। (३) यह स्थान किसी नदी आदि के किनारे नहीं है अतः इसका प्रारंभ में न तो कोई राजनैतिक महत्व था और न ही व्यापारिक ।

यह क्षेत्र कालपी द्वारा ही संचालित होता था । सन १७२९ में पेशवा की सहायता से मुहम्मद बंगश खाँ के पुत्र कायम खाँ को छत्रसाल द्वारा जब पराजित कर दिया गया तब छत्रसाल ने पेशवा बाजीराव को अपने राज्य का १/३ भाग देना स्वीकार किया था जिसे उनके पुत्र हिरदेशाह ने जिसके नाम से आज भी जालौन में एक मुहल्ला बसा हुआ है, सन १७३८ में यह क्षेत्र मराठों को दे दिया और सन १७३८ के उतरार्द्ध तक जालौन राज्य की

स्थापना हो गई तथा गोविन्द राव बुन्देला इसके प्रथम राजा बने । ये खेर परिवार के थे। जालौन को राज्य की राजधानी बनाने का अर्थ केवल यह था कि मुगलों को राजधानी तक पहुँचने के पहले कई स्थानों पर राज्य की सेना से युद्ध करना पड़े । इस राज्य का झन्डा लाल रंग का था । राजधानी बनते ही इसका महत्व बढ़ने लगा । यहाँ पर अनेक महाराष्ट्रीयन वैश्य मारवाड़ी आदि जातियों के लोग आकर बसने लगे । सन १७६१ में पानीपत के युद्ध में गोविन्द राव बुन्देला की मृत्यु हो गई उसके पश्चात कौन उत्तराधिकारी हुआ इसका सही प्रमाण नहीं मिलता है ।(४) सन १७७६ में कर्नल गोड़ार्ड को बंगाल सरकार द्वारा एक बड़ी सेना के साथ बुन्देलखण्ड में बम्बई सरकार की सहायतार्थ भेजा गया । जिसने कालपी पर तथा इस क्षेत्र पर भी अपना अधिकार कर लिया।(५) सन १८५७ तक बुन्देलखण्ड के प्रमुख राज्यों में जालौन का भी राज्य था । गोविन्द राव की मृत्यु के पश्चात् उनकी पौत्री ताई बाई राज्य की शासिका बनी । सन १८५७ की क्रान्ति में ताई बाई ने क्रियाशील भूमिका निभाई । परन्तु अंत में उसे व उसके परिवार जनों को ब्रिटिस हुकूमत द्वारा कैद कर लिया गया ।

आर्थिक दशा - इस क्षेत्र की आर्थिक दशा अच्छी थी । इस क्षेत्र पर पहले सेगरों का अधिपत्य था । इनकी अच्छी काश्तकारी थी । जिसके कारण ये लोग आर्थिक रूप से खूब सम्पन्न थे । जनसामान्य की आर्थिक दशा विशेष अच्छी नही थी । मुख्य रूप से लोग कृषि कार्यों में ही जुटे रहते थे । व्यापार भी कृषि आधारित ही था । किसी वस्तु का निर्यात आदि नहीं होता था । सामान्य जन इन सेंगर राजाओं की कृपा पर ही अपना जीवन यापन करता था ।

सामाजिक दशा - समाज में शिक्षा का अभाव था । जिसके कारण समाज प्रगति शील नहीं हो सका । सभी सामाजिक एवं धार्मिक उत्सव इन राजाओं के इशारो पर ही सम्पन्न होते थे । शादी विवाह में भी इन राजाओं का काफी हस्तक्षेप रहता था । निर्वल वग असहाय था । स्त्रियों की दशा अच्छी नही थी । उन्हे भोगविलास की बस्तु समझा जाता था । मराठो के आने से स्त्रियों को समाज में कुछ मान्यता प्राप्त होने लगी थी ।

भवनों के निर्माण में विभिन्न समकालीन स्थितियाँ एवं पृष्ठ भूमियाँ - यहाँ पर सेगरों के अधिपत्य होने के कारण तमाम सेंगर राजाओं ने अपनी सुरक्षा के लिये अपनी अपनी गढियों का निर्माण कराया था जैसे जगम्मनपुर , रामपुरा , हरदोई, सिरसा, बाबई इत्यादि। समाज में सबल केवल यही राजा थे शेष कुछ जनो को छोड़ कर सभी निर्बल थे अतः उन सभी निर्बलो के छोटे छोटे कच्ची मिट्टी तथा फूस के मकान थे । कुछ आर्थिक रूप से सम्पन्न वैश्यों व राजघरानों से सम्बन्धित व्यक्तियों के आवास गृह सुन्दर व मजबूत बने थे । भवनो का निर्माण मुख्यतः राजाओं द्वारा राजकीय कोष से कराया गया था । जब गोविन्द राव बुन्देला जालौन के राजा

बने तब उन्होने ही लक्ष्मी नारायण मन्दिर, गोबिन्देश्वर मन्दिर, बावड़ी आदि का निर्माण कराया था। (६)

संदर्भ सूची-

(१) जालौन गजेटियर - पृष्ठ १५१ -१५२
(२) लोक संगमवर्ष ७२- मुंशी सहाय श्रीवास्तव - पृष्ठ ४५
(३) व्यक्तिगत साक्षात्कार - डा० राम शंकर प्रवक्ता हिन्दी विभाग DVC Orai - २८।८।९२
(४) लोक संगम वर्ष ७२ - मुँशी सहाय श्रीवास्तव - पृष्ठ ४६
(५) जालौन गजेटियर - पृष्ठ १२६
(६) लोक संगम वर्ष ७२ - मुंशी सहाय श्रीवास्तव पृष्ठ ४६

उरई

जनपद जालौन के मुख्यालय के रुप में प्रसिद्ध उरई २५-५६° उत्तरी अक्षांस और ७९°-२८° पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। यह झाँसी और कानपुर के मध्य में बसा है। इसी नाम से तहसील भी है जो कि २५°-४६° और २६°-३° उत्तरी अक्षांश तथा ७९°-७° और ७९°-३४° पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। (१)

राजनैतिक दशा - प्राचीन काल में यहाँ पर आद्य इतिहास काल की संस्कृति विद्यमान थी (२) इसके पश्चात कोल (इस्पाती सभ्यता) सभ्यता तत्पश्चात वैदिक कालीन सभ्यता का प्रभाव रहा। (३) फिर मौर्य कुषाण , तथा गुप्त साम्राज्य का प्रभाव रहा। गुप्त काल के पश्चात यहाँ पर चन्देलो का अधिपत्य रहा। ई० सन ११३८ में यह क्षेत्र ग्वालियर के परिहार राज्य के अन्तर्गत आया जिसमें उरई का राज्य राजा महीपाल के वड़े पुत्र माहिल शाह को मिला। दिल्ली के राजा पृथ्वीराज की विजय के पश्चात् कोटरा के जागीरदार माहिलशाह के छोटे भाई भोपतशाह के पुत्र तेजपाल को सन ११९० ई० में उरई तथा कोटरा दोनो का राज्य मिला। सन १२०४ ई० में कुतुबुद्दीन ने तेजपाल को पराजित कर अपने करिंदे को राजा बना दिया। सन १२९१ ई० में सुल्तान जलालुद्दीन खिलजी ने उरई पर आक्रमण किया और उसे जीत लिया। राजा भोज शाह ने वीरगति पाई। उरई खिलजियो का करद राज्य बना पर राज्य परिहारो के पास ही बना रहा। सन १३२० के उपरान्त यहाँ का राजा नाहरदेव बना। सन १५४४ में शेरशाह सूरी ने इस क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। सूरी वंश के पतन के पश्चात् यह क्षेत्र मुगल सल्तनत का एक भाग बन गया। (४क) अकबर के समय में कालपी सरकार के अन्तर्गत उरई महल स्थित था (५) बाद में यह क्षेत्र बुन्देलो के अधिपत्य में आ गया। सन १६३० ई० में

यह क्षेत्र महाराज छत्रपाल के अधीन आ गया । औरंगजेब तथा छत्रसाल एक दूसरे के विरोधी थे । औरंगजेब हिन्दुओं पर जुल्म ढहाकर उन्हे मुसलमान बनाने के प्रयत्न में था तथा छत्रसाल को यह विलकुल अच्छा नही लगता था। अतः महाराज छत्रसाल ने साम दाम दण्ड भेद का उपयोग करके कूटनीति से काम लेकर औरंगजेब को परास्त किया परन्तु इस विजय के परिणामस्वरूप उन्हें अपनी सम्पत्ति का एक तिहाई भाग पेशवा बाजीराव को देना पड़ा जिससे यह सम्पूर्ण क्षेत्र मराठों के अधीन हो गया । और सन १७३८में गोविन्दराव बुन्देला (खैर) इस क्षेत्र के राजा बने । सन १७७६ में यह क्षेत्र अंग्रेजों के अधीन आ गया । सन १८५७ को आजादी के लड़ाई के समय झाँसी से आई महारानी लक्ष्मीबाई ने स्थानीय लक्ष्मीनारायण मन्दिर में भगवान की पूजा अर्चना की।(६) यहाँ के लोगों ने अंग्रेजों के विरूद्ध जमकर जंग लड़ी तथा तमाम बन्धुजन स्वतंत्रता के लिए फाँसी पर झूल गये तथा तमाम ने जेल के अन्दर आजादी का विगुल फूँका ।

आर्थिक दशा - यहाँ की आर्थिक दशा बहुत अच्छी नहीं थी । कुछ लोग अत्यन्त समृद्धशाली थे परन्तु जनसामान्य निर्धन व निर्बल था । वह अपनी दैनिक आवश्यकताआ हेतु समृद्धजनों पर ही आश्रित था । मुख्य अर्थोपार्जन का आधार कृषि ही था तथा कृषि से सम्बन्धित व्यापार ही हुआ करते थे । गेहूँ ,चना आदि यहाँ की प्रमुख कृषि उपजें थी । वर्तमान में मसूर, लाही, सोयाबीन आदि क्रैश क्रोप **(Cash Crop)** का चलन बढ़ गया है । यहाँ पर सिर्फ एक ही मुख्य पैदावार ली जाती है । यहाँ की मिट्टी से दूसरी पैदावार लेना अभी तक असाध्य बना हुआ है । यहाँ की निर्धनता का यह भी एक कारण है ।

सामाजिक दशा - यहाँ के समाज की दशा बहुत अच्छी नहीं थी । निर्बल वर्ग निर्बल ही था समृद्ध वर्ग के पास समृद्धता बढ़ती ही जाती थी । समाज के सभी प्रकार के धार्मिक उत्सव सम्पन्न वर्ग के सहयोग से ही सम्पन्न होते थे । शिक्षा का विशेष प्रचार प्रसार नहीं था । स्त्रियाँ पर्दानशीन थीं तथा उन्हें समाज में उचित स्थान प्राप्त नहीं था । अलबत्ता कुआँरी कन्यायों को सम्मान पूर्वक स्थान प्राप्त था तथा देवी स्वरूप मानकर उनका आदर किया जाता था । आज कल यह प्रथा बराबर चली आ रही है । यहाँ के समाज में हिन्दू तथा मुसलमानों में काफी भाईचारा था । सभी एक दूसरे के दर्द में सम्मिलित होते थे तथा पंथीय उत्सवों में एक दूसरे का सहयोग भी करते थे । साधु सन्तों की समाज में प्रतिष्ठा थी तथा उनका पूरा मान सम्मान होता था

भवनों के निर्माण में विभिन्न समकालीन स्थितियाँ एवं पृष्ठ भूमियाँ - यहाँ पर निर्धन वर्ग अधिक था इस कारण भवनों का निर्माण न्यून था । सामान्य जन मिट्टी तथा पुआल के घर

बनाकर इन्हीं में अपना जीवन यापन करता था। साधु सन्तों की समाज पर पकड़ बहुत अच्छी थी। इस कारण धार्मिक चेतना तथा आध्यात्मिक ज्योति जगाये रखने के उद्देश्य से साधु सन्तों द्वारा समाज के समृद्धि शाली वर्ग को प्रोत्साहित किया जाता था जिसके परिणामस्वरूप मन्दिरों व मस्जिदों का निर्माण होता था। लोग अपनी आध्यात्मिक शान्ति हेतु भी मन्दिरों तथा मस्जिदों का निर्माण कराते थे। कुछ लोग मान्यताओं के पूरा होने पर भी मूर्तियों की प्राण प्रतिष्ठा कराकर मन्दिर निर्माण में रूचि लेते थे।

संदर्भ सूची

१- जालौन गजेटियर		पृष्ठ १८३-१८४
२- दैनिक आज दिनांक ६ जून १९९५ -	हरीमोहन पुरवार	पृष्ठ ४
३- आज की बात -	हरीमोहन पुरवार	पृष्ठ ६
४ -अंकुर - दिसम्बर ८४ -	कामता प्रसाद बौद्ध	पृष्ठ १०
५-जालौन गजेटियर -		पृष्ठ १८८
६-व्यक्तिगत सम्पर्क -	प्रो० जी० आर० आठले दिनांक २८-७-९४ पुजारी लक्ष्मी नारायण मन्दिर उरई	

चतुर्थ अध्याय

धर्मेत्तर भवन

इस अध्याय के अन्तर्गत हम जालौन जनपद के गैर धार्मिक भवनों (धर्मेत्तर भवनो) का विश्लेषण करेंगे । इन धर्मेत्तर भवनों में किले गढ़ियाँ व हवेलियाँ, बाबड़ी आदि सम्मिलित है । किला की विशेषतायें एवं उपयोग निम्नवत् हैं ।

दुर्ग क़ला

भारत वर्ष में दुर्ग कला का उल्लेख काफी प्राचीन समय से मिलता है । ऋग्वेद में एक ऐसी जाति का उंल्लेख किया गया है, जोकि किले बन्दी में रहती थी तथा "चुर" के नाम से विख्यात थी । इसी भाँति ऐत्रेय ब्राह्मण में भी ऐसे तीन अग्नि किलो का उल्लेख किया गया है जिसमें छिपकर ब्राहमण जन अपने यज्ञ तथा बलिदान आदि की रक्षा करते थे। मनु ने भी किले के निर्माण व उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि राजा को एक अत्यन्त सुदृढ़ व सुरक्षित किले में रहना चाहिए तथा किला, वन, जंगल तथा जल द्वारा घिरा होना चाहिए। किले की उपयोगिता बताते हुए आगे लिखा है कि किला का सुरक्षित एक धनुषधारी, १०० धनुषधारी को तथा १०० धनुषधारी, १०,००० धनुषधारियों को आसानीं से मार सकते हैं । एक ऐसे किले के उत्तम निर्माण से राजा अपनी राजधानी की रक्षा कुछ ही धनुषधारियों की सहायता से कर सकता है । प्राचीन काल में जब बारूद, तेल (पेट्रोल) का उपयोग तोपखानों व टैंक के रूप में नहीं किया जाता था तब किले द्वारा विजयं का सबसे अधिक भाग निर्धारित किया जाता था और यही कारण था कि प्राचीन काल के सम्राट, जागीरदारों आदि ने किले गढ़ियों आदि को अत्यधिक महत्व दिया । वस्तुतः किले का निर्माण राज्यों में किया जाता था परन्त सबसे पहले राजधानी में ही इसका श्रीगणेश किया जाता था । इसका मुख्य कारण यह था कि आजकल की भाँति पहले भी सेनाओं का मुख्य लक्ष्य राजधानी पर ही अधिकार करना था क्योंकि किसी भी देश की राजधानी पर अधिकार करके देश के सम्पूर्ण भाग में सुगमता से अधिकार किया जा सकता है । इसी के कारण सम्राट लोग सर्वप्रथम राजधानी की सुरक्षा का प्रबंध करते थे और इस प्रबंध के अन्तर्गत दृढ़ सुरक्षा के लिए किला बन्दी की जाती थी । यह किला बन्दी प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक हो सकती थी । प्राकृतिक किले बन्दी के अन्तर्गत ४ प्रकार के किले आते हैं ।

१- औदक दुर्ग (**Water Forfication)**

२- पार्वत दुर्ग **(Mountain Fortification)**

३- धन्व दुर्ग **(Desert Fortification)**

४- वन दुर्ग (Forest Fortification)

इसमें औदक दुर्ग अर्थात **Water Fortification** सबसे अधिक उत्तम माना जाता है । इस प्रकार अप्राकृतिक किले बन्दी का मुख्य सजीव उदाहरण फ्रांस के मैजिनाट लाइन से लिया जा सकता है । इसके अतिरिक्त राजधानी व इस किले के चारों ओर परिखा या खाई का भी निर्माण किया जाता था । इस खाई में पानी भरकर तरह-तरह के खतरनाक जल जीवों को छोड़ दिया जाता था ।

रामायण में भी रावण के किले का विवरण विस्तार रूप से मिलता है । अग्नि पुराण में भी किले बन्दी युक्त नगर का विवरण मिलता है । इसी भाँति शिवतत्व रत्नाकर में नौ प्रकार के किलों का उल्लेख मिलता है । जबकि महाभारत में केवल ६ प्रकार के किले का उल्लेख मिलता है । इन नौ प्रकार के किलों में सबसे अच्छे पार्वत दुर्ग व जल दुर्ग तथा सबसे निम्न श्रेणी के दास व नर दुर्ग को माना गया है ।

तमिल साहित्य (मदुखैकन्जी) के अनुसार दुर्ग के चारों ओर झाड़ियों व काँटों का जंगल स्थित होता था जिससे होकर शत्रु सुगमता से किले पर आक्रमण नहीं कर सकते थे । किले के चारों ओर जल से भरी खाई स्थित रहती थी । दरवाजा विशाल व इसके ऊपर टॉवर बना होता था । जिसके बाहर ताज के ऊपर से ध्वज लगा रहता था । कौटिल्य ने अपनी जीवन काल में युद्ध का एवं किले आदि का बड़ा सूक्ष्म अध्ययन करते हुए यह उल्लेख किया है कि किले की दीवार के निर्माण के समय इस बात का पूर्ण ध्यान रखा जाना चाहिए कि किले की भित्ती के मध्य में कोई किले के समीप न आ सके । कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार किले में दरबाजे होते थे । यह दरबाजे पानी व सूखे स्थान पर भी होते थे । किले के दरवाजे दोहरे किवाड़ युक्त तथा किले में अन्य सर्व धात्विक मशीन भी लगायी जाती थी । किले का आकार विभिन्न प्रकार का हो सकता है जिसमें वृत्ताकार, अर्द्ध वृत्ताकार, आयताकार, स्वास्तिकाकार आदि मुख्य हैं । किले के टॉवर पास में सन्तरी पहरा देते थे । किले के अन्दर एक शाही राजमहल भी स्थित होता था जो कि मध्य क्षेत्र में किले के १/६ भाग पर बना होता था । इसके उत्तर में पुजारी, मंत्री और उच्च अधिकारी, दक्षिण पूर्व में रसोईघर व अस्तबल, पश्चिमी ओर व्यापारी व कारीगर वर्ग का स्थान रहता था । इसके समीप कार्यालय व कोषग्रह व इसके विपरीत दिशा में भण्डार व आयुधागार स्थित होता था । महल के दक्षिण की ओर वैश्यायें व उत्तर में अन्य विभागों के अधीक्षक, पश्चिम में कारखाने, कर्मचारी उत्तर में बाजार व अन्य व्यापारी रहते थे । नगर के मध्य में मंदिर तथा उत्तर-पूर्व में ऊँची जातियों के श्मसान तथा इसके पीछे चाण्डाल गृह होते थे । उपर्युक्त को दृष्टिगत रखते हुए हम आगे इस

जनपद जालौन के किले, गाढ़ियों व हवेलियों आदि के ऐतिहासिक मूल्यांकन का प्रयास कर रहे हैं।

कालपी का किला

पवित्र यमुना नदी के दक्षिणी किनारे पर २६° ८° उत्तरी एवं ७६° ४५° पूर्वी अक्षांस पर स्थित कालपी नगर की उत्तरी सीमा पर यह किला स्थित है ।(१) श्री मोतीलाल त्रिपाठी अशांत के अनुसार कालपी का किलाघाट यमुना तट स्थित चन्देल कालीन दुर्ग की सीढ़ियों के नीचे स्थित है ।(२) यह कालपी का किला यमुनाजी के ठीक तट पर बना हुआ है तथा किले से घाट तक जाने हेतु पक्की सीढ़ियों बनी हुयीं हैं।(३)

कालपी का यह किला , दक्षिण भारत के प्रवेश द्वार पर अडिग , राजनैतिक , एवं सामरिक महत्व का आकर्षक चन्देलों से लेकर प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की अलख जगाने वाली महारानी लक्ष्मीबाई तक की स्मृतियों को अपनें ह्रदय में संजोये हुये एवं यवन शासकों से अंग्रेजो तक के वज्रघातों एवं कष्टों को समेटे हुये , अब भी यह किला अपने शौर्य अपनी प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं का दिगदिगन्त में नाद करता हुआ अडिग खड़ा है । (४) वर्तमान में इस किले का एक गुम्बदाकार बुर्ज ही शेष रह गया है । शेष सब कुछ ध्वस्त एवं नष्ट हा गया है । इधर उधर कुछ बिखरे भग्नावशेष अवश्य यह बतलाते है कि कभी यह किला बुलन्द था और जिसकी बुलन्दियों से शत्रु थरथराता था ।

इतिहास -

परम्परानुगत यह कहा जाता है कि कालपी का यह किला चन्देल शासकों के आठ प्राचीन दुर्गों में से एक था परन्तु यह तथ्य गृह शिल्पियों (**Archeologists**) के साक्ष्यों से मण्डित नहीं है । (५)

सुश्री ज्योति खरे के अनुसार यह किला चन्देलकालीन है । (६) डा० राजेन्द कुमार के अनुसार चन्देलकाल में कालपी में एक विशाल किले का निर्माण हुआ । (७) कालपी में राजा वासुदेव ने एक दुर्ग का निर्माण कराया था तथा कालपी को राज्य का एक प्रसिद्ध व्यापारिक एवं सैनिक केन्द्र बनाया था । (८) मुंशी इनायत उल्ला ने लिखा है कि यमुना नदी के किनारे पर किला बना है । इसके निर्माण के विषय में किसी विशिष्ट व्यक्ति ने कहा है कि १००० वर्ष पूर्व किसी व्यास नाम के ब्राह्मण ने इस किले को बनावाया था । तहरीरात सलफ से ज्ञात होता है कि शायद सम्वत १८०३ में (तदनुसार सन १७४६-४७ ई० में) नाजिम लक्ष्मण राव ने इस किले की नींव न डाली हो बल्कि तजदीद अहदास की हो । तारीख हिन्द में देखा गया तो पाया गया कि बहराम बाद सुल्तान मसऊद के सन १४०४ ई० में राजगद्दी पर

बैठा था और कन्नौज का राज्य उसके अधिकार में आने से पूर्व इस किले का राजा वासुदेव पाया जाता था। (९)

चंदेल शासन से पूर्व कालपी का इतिहास बहुत कम मिलता है । चन्देलों के शासन काल में इस कालपी नगर की अत्यधिक उन्नति हुयी । लगभग दशवीं शताब्दी के मध्य यहाँ एक दुर्ग का निर्माण हुआ । चन्देलों के आठ प्रसिद्ध दुर्गों में से कालपी में भीएक दुर्ग था । यह कालपी का बड़ा स्कन्धावर के साथ साथ यातायात का भी प्रमुख स्थान था। चन्देलों के राज्य की एक मुख्य सड़क यहाँ से गुजरती थी। (१०)

इस महान नगरी कालपी का सदैव बड़ा महत्व रहा है । सन ९१६ ई० के लगभग यशोवर्मा नामक चन्देल शासक ने इस ओर अपना रूख किया और सन ९५५ ई० में कालपी का दुर्ग उनके ८ प्रसिद्ध दुर्गों में से एक माना जाता था। (११) श्रीकृष्ण बिहारी लाल ने लिखा है कि मुसलमान इतिहासकार फरिस्ता के अनुसार कालपी की स्थापना सन ४०० ई० में कन्नौज के राजा वसुदेव ने की थी । कन्नौज के राजाओं ने कालपी को एक सुदृढ़ राजनैतिक गढ़ बनाना चाहा । चन्देल वंश के राजाओं ने अपने ८ प्रसिद्ध किलों में से एक किला कालपी में बनवाया था क्योंकि कालपी उत्तर भारत से दक्षिण भारत की ओर जाने वाले जल एवं थल रास्तों का संगम स्थल था । उस समय की राजनैतिक व्यवस्था के अन्तर्गत यमुना, बेतवा तथा चम्बल के भू भाग पर अधिकार करने के लिए कालपी का मजबूत होना आवश्यक था इसीलिए चन्देलों ने कालपी में एक महान दुर्ग बना रखा था । चन्देलों के पश्चात् १२०२ में कुतुबुद्दीन ने इसको जीता और कालपी दिल्ली शासन के अधीन हो गई । मालवा के राजा हुशंग शाह ने कालपी को अपने अधीन करना चाहा और कुछ समय तक कालपी मालवा राज्य में रहा। लोदी वंश के समय सन १५०७ में जलालखाँ लोदी कालपी का गर्वनर था जिसने इब्राहिम लोदी के विरूद्ध अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा की थी । पानीपत के युद्ध में इब्राहीम लोदी की मृत्यु के पश्चात् कालपी मुगल राज्य का पश्चिमी द्वार बन गया । अकबर के समय में सन १५६१ में अब्दुल रहीम खानखाना कालपी का गर्वनर था । सन १५८३ में अकबर स्वयं कालपी आया था । इसके पश्चात् मुगल काल, शान्ति के साथ कालपी ने गुजारा परन्तु औरंगजेब के समय जब सम्राट की तानाशाही असह्य हो गयी तब छत्रसाल के नेतृत्व में स्वतंत्रता की रणभेरी बजी । १७२० में छत्रसाल ने कालपी को यवनों से मुक्ति दिला दी । सन १७३४ में मुहम्मद खाँ बंगश से जब दुबारा छत्रसाल का युद्ध हुआ तब छत्रसाल ने पेशवा बाजीराव से सहायता ली और उस सहायता के बदले मुहम्मद खाँ को परास्त करने के पश्चात् यमुना के

किनारे की जागीरें मरहठों को प्रदान की और यह कालपी मरहठों के अधीन तब तकरहा जब तक अंग्रेजों ने इसे अपने अधिकार में नहीं ले लिया।(१२)

पहला मरहठा गवर्नर गोविन्द राव बुन्देला इस क्षेत्र के नियुक्त हुए जो कि सन १७६१ ई० में पानीपत के युद्ध में मारे गये । उनके पश्चात् गंगाधर गोविन्द जोकि गोविन्द राव का पुत्र था , को राज्य सत्ता मिली और सन १७६८ ई० में यह अंग्रेज हुकूमत के अधीन हो गया । सन १८०३ ई० में जालौन के सूबेदार नाना गोविन्द राव से पुनः अंग्रेजों ने इसे अपने हाथ ले लिया । सन १८१६ से १८२३ के मध्य उत्तरी बुन्देलखण्ड का यह मुख्यालय बन गया।(१३)

महाराज बासुदेव के समय का ख्याति प्राप्त कालपी का किला अत्यन्त प्राचीन था जिसकी देखभाल व मरम्मत कालपी नगर के शासक समय समय पर कराते रहते थे । परन्तु अंग्रेजों का पदार्पण होते ही उसका नाश होना प्रारंभ हो गया अंग्रेजों को इसके जीतने में काफी कठनाई का सामना करना पड़ा उसी समय किले की बची हुयी इमारत भी ध्वस्त कर दी गई । एक केवल गुम्बज ही शेष रहा है व इधर उधर कुछ पक्की खाइयाँ भी बनी हुयीं हैं जो किले की दृढ़ता का प्रमाण हैं।(१४)

सन १८५७ की लड़ाई में कालपी किला ध्वस्त हो गयाथा अब उसमें केवल एक हिस्सा ही बचा है।(१५)

ख्वाजा इनायत उल्ला के अनुसार सन १८८६ में यह किला अंग्रेजों के आदेशानुसार युद्ध के दौरान सुरंग लगाकर ध्वस्त कर दिया गया । उसमें केवल एक पक्का मकान शेष बचा है । बाकी सब धूल धूसरित हो गये।(१६)

कालपी किले का यह अवशेष मरहठों के शासन काल में राज्य पाल का कोषगार था।(१७) यह प्रसिद्ध कोषागार १८५७ के प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सेनापतियों की शरण स्थली रहा है । यहीं झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई, नाना साहब पेशवा, तात्या टोपे, कुँअर साहब आदि महान क्रान्तिकारियों ने प्रथम स्वतंत्रता संग्राम को मूर्तिरूप देने हेतु मन्त्रणा की थी।(१८)

इसी मंत्रणा के बाद यहाँ अंग्रेजी सेना एवं भारतीयों के बीच ऐतिहासिक संग्राम हुआ जिसे अंग्रे[illegible] जीते और इन महान रणबाँकुरों को कालपी छोड़ना पड़ी । कालपी से इन क्रान्तिवीरों को ही नहीं जाना पड़ा अपितु कालपी की श्री एवं समृद्धि भी इनके साथ चली गई।

२ जनवरी १८५८ को पेशवा नाना साहब के सेनानायक तात्या टोपे ने बुन्देलखण्ड के सभी राज्यों को अनुरोध पत्र भेजकर अंग्रेजों के विरूद्ध क्रान्ति के लिए " कालपी चलो " का आवाह्न इसी प्राचीन किले से किया था।(१६)

डा० अयोध्या प्रसाद पाण्डेके. अनुसार - वीरगढ़, अजयगढ़ मनियागढ़, मड़फा कालपी, गढ़ा, कालिन्जर, महोबा में प्रत्येक स्थान पर चन्देलों के दुर्ग थे । अजयगढ़, महोबा, कालपी, चन्देलों के प्रसिद्ध दुर्ग थे । जनश्रुति के अनुसार कालपी दुर्ग का निर्माण किसी प्राचीन राजा कालिदेव ने करवाया था। (२०)

श्री कृष्ण दत्त बाजपेयी के अनुसार लगभग दशवीं शताब्दी के मध्य कालपी पर चन्देलों का अधिकार हुआ और यहाँ एक दुर्ग का निर्माण हुआ । राजा मदनवर्मा तथा परमर्दिदेव के समय में कालपी की बड़ी उन्नति हुयी ।२१

किले का स्थापत्य-

यह कालपी का किला यमुना नदी के ठीक तट पर बना हुआ है । किले से घाट तक जाने के लिये पक्की सीढ़ियाँ बनी है । (२१) किले को तो अंग्रेजो द्वारा ध्वस्त किया जा चुका है । जो भाग शेष है वह बाहर से १२५ फीटऔरइसकीऊँचाई ८० फुट है । यह सम्पूर्ण दुर्ग शतरंज की गोट की भाँति है और इसकी छत चौरस है। इसके मध्य के चार स्तम्भ भी नही है और इस प्रकार जो स्थान बचा है वह

वह विशाल गुम्बज मुख्य भवन की छत से लगभग ६० फीट ऊँचा है । इसके चारो कोनो पर चार छोटे बुर्ज है । बुर्ज छत से लगभग ४० फीट ऊँचा है । (२२)

चन्देलो के दुर्ग का यह भग्नावशेष यमुना के किनारे १२० फुट ऊँची सीधी कगार पर स्थित है । (२३)

इस किले की बुनियाद लगभग ३गज अर्थात ६ फुट चौडी है । (२४) कालपी किले का अवशेष यह भवन ३५ फीट ऊँचे आयताकार भवन के मध्य एक विशाल गोल गुम्बद है। (२५)

कालपी किला का यह भवन विशाल एवं भब्य था । श्री श्रवण सिंह सेगर के अनुसार इस किले में अनवरत् युद्ध हेतु अस्थायी शिविर लगाने का स्थान था। इसी किले में ६०,००० पौण्ड बारुद का भण्डार , अंग्रेजों की तुलना में दोषरहित गोले तथा अन्य सामरिक आयुधो के निर्माण हेतु स्थापित कारखाने थे । बढई एवं लुहारों की दुकानें थी । (२६)

यमुना नदी से १२५ फुट ऊँची सीधी कगार पर यह आयताकार कालपी किले का भग्नावशेष १२५ फुट लम्बा एवं ४०फुट चौडा है । इस भग्नावशेष में पूर्व की ओर एक द्वार व दक्षिण तथा उत्तर की ओर तीन द्वार है जो कि ठीक एक दूसरे के सामने स्थित है । पश्चिम की ओर कोई द्वार नही है । इस भवनके उत्तर की ओर एक वरान्डा भी स्थित है । इस भग्नावशेष के मध्य के ऊपर एक गोल गुम्बद स्थित है जिसके ऊपर केन्द्र विन्दु के चारो ओर गोल घेरे में विकसित पद्म अंकित है । इस भग्नावशेष की उत्तरी एवं दक्षिणी भित्ति पर तीनो दरवाजो के ऊपर द्वितीय तल पर खुली स्वच्छ हवा हेतु मेहराबदार खिडकियाँ बनी हुयी है ।

आन्तरिक संरचना - इस भग्नावशेष को अन्दर से देखने से ज्ञात होता है कि यह भवन अन्दर से १०७ फुट लम्बा व २२ फुट चौडा है । ऊपरी छत की ऊँचाई ५४फुट है अन्दर से छत तीन गुम्बदों से बनी है । मध्य गुम्बद ऊँचा एवं उसके पूर्वी एवं पश्चिमी गुम्बद अपेक्षाकृत कम ऊँचे है । दो गुम्बदों के मध्य कोई स्तंभ नहीं है । बल्कि स्तंभ को ज्यामितीय चतुर्भुजी आकार (वर्फी आकार) से परिवेष्ठित किया गया है । मध्य गोल गुम्बद के पूर्बी व पश्चिमी अर्द्धगोलाकार गुम्बदों की आकृति के है जो कि मध्य गुम्बद के साथ मेहराव से सलंग्न है । इन पूर्वी व पश्चिमी अर्द्धगोलाकार गुम्बदों में तीन तीन मेहराब युक्त आले बने हैं ।

दरवाजों की दीवालों एवं ऊपरी छत की गोल केन्द्र के मध्य १२ स्थान बने है जिन पर १२ देवताओं अथवा राशियों की मूर्तियों की स्थापना का संकेत मिलता है ।

संदर्भ-सूची

१- जालौन गजेटियर -	डी० एल० ड्रेक ब्रोकमैन I.C.S. वर्ष १६०६	पृष्ठ संख्या १५७
२- बुन्देलखण्ड दर्शन -	मोतीलाल त्रिपाठी अशान्त वर्ष १६८०	पृष्ठ १८४
३- कालपी महात्म -	रूपकिशोर टण्डन	पृष्ठ संख्या ६३
४- कालपी कीर्ति अंक -	श्रवणसिंह सेंगर	पृष्ठ संख्या ५४

५- जालौन गजेटियर - डी- एल० ब्रोकमैन - ननपृष्ठ संख्या ११६

६- कादम्बनी - हिन्दु मुस्लिम एकता का संधि स्थल - ज्योति सार पृष्ठ संख्या ६५

७- पुरातन गाथाओं का शहर कालपी - डा० राजेन्द्र कुमार - पृष्ठ संख्या ६

८- कालपी का इतिहास व्यास वाणी पत्रिका - वर्ष १६७० राधाकान्त पाण्डे य - पृ ष्ठ सं ख्या ३५

६- आईना कालपी - मुँशी ख्वाजा इनायत उल्ला - पृष्ठ संख्या ७५व ७६

१०- उत्तर प्रदेश का सांस्कृतिक इतिहास - ले० श्री कृष्ण दत्त बाजपेयी

११- सा० लोकसेवा - लेख - कालपी -"हिन्दी भवन का स्थल"१८ नवम्बर १६७३

१२- कालपी महात्म - ले० श्रीकृष्ण बिहारी लाल पृष्ठ संख्या १२२से १२८ त

१३- जालौन गजेटियर - डी० एल० ब्रोकमैन पृष्ठ संख्या १६२

१४- कालपी - रूपकिशोर टण्डन पृष्ठ संख्या ६२ व ६३

१५- तीर्थ भूमि कालपी - लेखक व प्रकाशक - विन्देदीन पाठक पृष्ठ संख्या १५

१६- आईना कालपी - मुंशी इनायत उल्ला पृष्ठ संख्या ७६

१७- पुरातत्व विभाग - भारत सरकार द्वारा लगाये गये संगमरमर के शिलालेख पर अंकित है ।

१८- सा० लोक सेवा - ५ जनवरी १६६२ अखिलेश विद्यार्थी पृष्ठ संख्या ८

१६- सांस्कृतिक धरोहर - अर्जुन सिंह - पृष्ठ संख्या १०

२०- चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास - डा० अयोध्या प्रसाद पाण्डे पृष्ठ संख्या २१७ व २४४

२१- उत्तर प्रदेश का सांस्कृतिक इतिहास - श्रीकृष्ण दत्त बाजपेयी पृष्ठ संख्या - ८३

२१- कालपी महात्म - रूपकिशोर टण्डन पृष्ठ संख्या ६३

२२- चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास - डा० अयोध्या प्र० पाण्डेय पृष्ठ संख्या २१७

२३- शिलालेख - भारतीय पुरातत्व विभाग द्वारा लगाया गया ।

२४- आईना कालपी - मुंशी ख्वाजा इनायत उल्ला पृष्ठ संख्या ७६

२५- पुरातन गाथाओं का शहर कालपी - डा० राजेन्द्र कुमार पृष्ठ संख्या६

२६- प्रथम स्वतंत्र समर में कालपी का योगदान - श्रवण सिंह सेंगर पृष्ठ संख्या ५७

जगम्मनपुर की गढ़ी

यमुना के दक्षिणी किनारे से लगभग ४ किलो मीटर दूर बसे जगम्मनपुर ग्राम में यह गढ़ी स्थित है जोकि जगम्मनपुर किले के नाम से जानी जाती है। यह जगम्मनपुर ग्राम २६° २५° उत्तर तथा ७९° १५° पूर्व अक्षांश के मध्य बसा हुआ है।(१)

इतिहास -

यह किला राजा जगम्मनशाह द्वारा १५६३ ई० में उस समय बनवाया गया था जब उनका कनार स्थित किला ध्वस्त हो गया था। यहाँ कनार से उत्तर पूर्व की ओर लगभग ३ किलोमीटर दूर पर आकर उन्होंने अपने नाम से जगम्मनपुर ग्राम को बसाया एवं अपने रहने के लिए एक किले का निर्माण कराया।(२) महाराजा कर्णदेव जोकिं सन ६३६ ई० में हुए थे से प्रारंभ होकर आगे बढ़ते है और उसी क्रम के २६ वें महाराज जगम्मनशाह हुए।(३) महाराज जगम्मनशाह के पश्चात् जगम्मनपुर राज्य का दायित्व महाराज उदित शाह के ऊपर आया। तत्पश्चात् महाराजा मानशाह तत्पश्चात् महाराज भीमशाह तत्पश्चात महाराजा प्रतापशाह तत्पश्चात् महाराजा सुमेरशाह, तत्पश्चात महाराजा रत्नशाह तत्पशचात् महाराज बख्तशाह तत्पश्चात् महाराजा महीपतशाह तत्पश्चात् महाराजा रूपशाह तत्पश्चात् महाराजा लोकेन्द्रशाह और सन १९१९ में महाराजा वीरेन्द्रशाह एवं वर्तमान में उनके पुत्र महाराजा राजेन्द्र शाह हैं। ये सेंगर क्षत्रिय चन्द्रवंशी हैं। इनका गोत्र-गोतम, प्रवर - तीन गौतम, वशिष्ठ , बार्हस्पत्य, वेद-यजुर्वेद, शाखा-वाजसनेही, सूत्र-पारस्कार ग्रहसूत्र, कुलदेवी- विन्ध्य-वासिनी, ध्वजा-लाल, नदी-सेंगर, गुरू-विस्वामित्र, ऋषि-श्रृंगी। ये लोग विजयादशमी को कटारपूजन करते हैं।(४)

कर्ण के पुत्र विकर्ण ने गंगा यमुना के दक्षिण गंगासागर से चम्बल नदी तक के प्रदेश पर अपना अधिकार जमाया और उनके वंशजों की शातकर्णि संज्ञा हुयी। क्रमशः इस शतकीर्ण शब्द का अपभ्रंश लोकभाषा में पहले सातकर्णि फिर सेगणी और फिर सेंगर या सैंगर हो गया।(५)

मध्यकाल में मुगल सम्राट बाबर ने कनार को विध्वंश किया तब कनार के तत्कालीन (विशोकदेव से वीसवें) ने नई राजधानी जगम्मनपुर यमुना से एक कोस हटकर बसाई जो आज तक सन्तावन ग्रामों और कनार के भग्नावशेषों सहित महाराजा कण

देव के वंशजों के अधिपत्य में है और जगम्मनपुर के महाराजा अद्यावधि 'कनार धनी' कहाते हैं। (६)

अकबर के समय में जब रामचरित मानष के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज वृन्दावन से प्रस्थान करके यमुनातट के मार्ग द्वारा चित्रकूट कीओर जा रहे थे तो उन्होंने जगम्मनपुर के तत्कालीन राजा उदोतशाह का आतिथ्य स्वीकार किया था तथा उन्हें एक दक्षिणावर्ती शंख, एक एकमुखी रूद्राक्ष और एक सालिगराम शिला प्रदान की थी। (७)

सन ११३४ ई० में जगम्मनपुर के राजा वत्सराज सेंगर थे। (८) इस सेंगर वंश का प्रारंभ ऋंगी ऋषि एवं अयोध्या के महाराज दशरथ की भतीजी से माना जाता है। इस वंशावली के एक राजा विशोकदेव ने कन्नौज के राजा जयचन्द्र की पुत्री से विवाह करके दहेज में एक बहुत बड़ा राज्य क्षेत्र प्राप्त किया तब वे कनार कहलाये और सन ११०० ई० में अपना राज्य स्थापित किया। (९)

स्थापत्य -

यह सम्पूर्ण किला खाई सहित लगभग सात एकड़ क्षेत्र पर स्थित है। जिसके चारों ओर १००फुट चौड़ी तथा ५० फुट गहरी खाई है जो कि इसकी सुरक्षा का कवच बना हुआ है। यह किला पहले पूर्वाभिमुख था परन्तु वर्तमान में उत्तराभिमुख है। पूर्व की ओर यह किला आधार तल के ऊपर तीन मंजिला तक बना हुआ है तथा आधार तल के नीचे भूमि तल है। इस किले के परकोटे पर चारों ओर चार गुम्बज बनें हुए हैं। परकोटे के दक्षिणी दीवार के मध्य में एक पाँचवाँ गुम्बद बना हुआ है जो कि यह प्रदर्शित करता है कि दक्षिणी द्वार को आक्रान्ताओं के आक्रमण से विशेष रूप से सम्भाला गया था एवं दुश्मनों को अच्छा सबक सिखाया जा सकता था। इसके परकोटे में विभिन्न स्थानों में मारें भी बनी हुई हैं। इस प्रकार से सुरक्षा एवं युद्ध की दृष्टि से यह किला एक ऐसा किला है जो कि अभेद प्रतीत होता है। इसका पूर्वी द्वार विशाल मेहराबदार है इसकेऊपर बालकनी नुमा कोविल बनी हुई है। कोबिल के आसपास ईट चूना प्लास्टर से मूर्तियों का भी
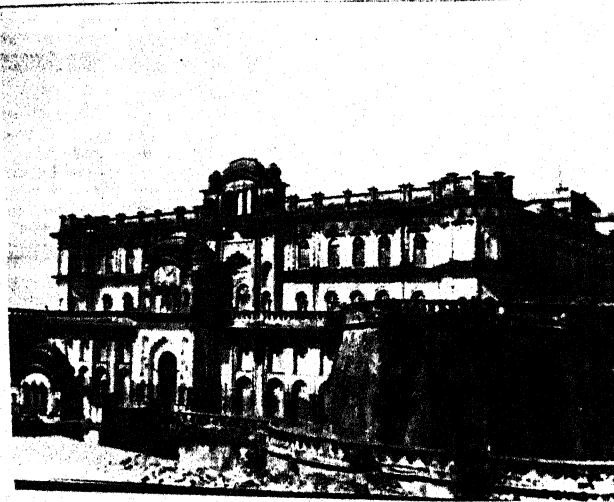
निर्माण किया गया था । मुख्य दरबाजे के दोनों पल्ले लकड़ी के बने हुए है जिन पर पीतल चढ़ा हुआ था । ऊपर हाँथी से सुरक्षा के लिए सूजे इत्यादि लगे हुए हैं मुख्य दरबाजे के दोनों ओर एक बड़ी सुरक्षा भित्ती है । इस किले के प्रथम तल में भी मुख्य दरबाजे के दोनों ओर क्रमबार कक्षों का निर्माण हुआ है और यही स्थिति द्वितीय व तृतीय तल में भीहै । पूरा किला बाहर से देखने में अत्यन्त सुन्दर तथा समानुपातिक है । यह किला वनक्षेत्र में स्थित होने के कारण वन दुर्ग की श्रेणी में आता है ।
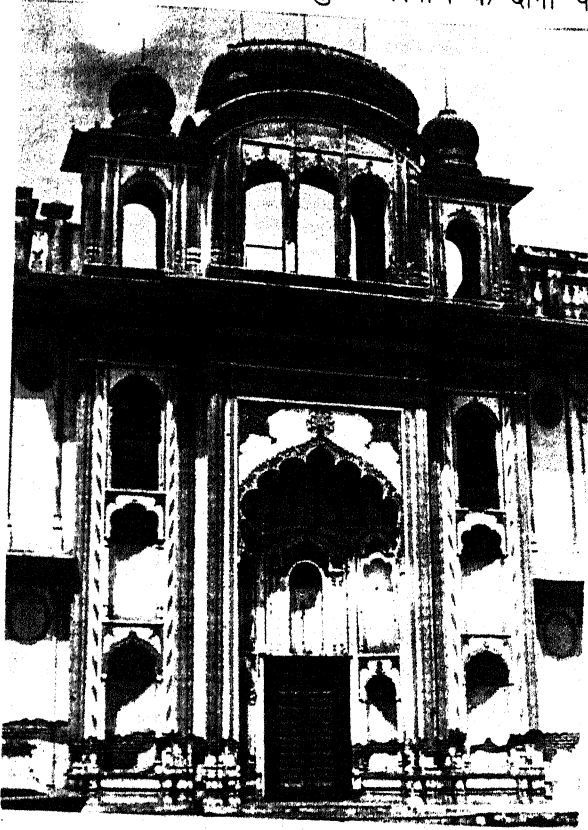
जगम्मनपुर के राजा रूपशाह जब बनारस में पढ़ते थे वहीं से वह इस किले को महल का स्वरूप प्रदान करने के लिए एक नक्शा बनवा लाये और इसी के आधार पर इस किले को महल का स्वरूप उन्हीं के समय में प्रदान किया गया । यह किला पतली ईटों से बना है तथा गारे, चूने की जुड़ाई है और बाहर भी सुन्दर बेलपत्तियों का अलंकरण है तथा कुछ स्थान पर बेलबूटों का चित्रण भी है । इस किले द्वारा कलाकारों को खूब संरक्षण प्रदान किया गया तब से आजतक चित्रकला के विभिन्न नमूने यहाँ पर देखने को मिलते हैं ।

सन्दर्भसूची-

१- जालौन गजेटियर - डी०एल० ब्रोकमैन पृष्ठ संख्या १५०
२- ए ब्रीफ एकाउन्ट आफ जगम्मनपुर राज्य - पृष्ठ सं० ४
३- लोकेन्द्राख्यान - शिवनाथ सिंह सेंगर पृष्ठ सं० ६७
४- बृहत् क्षत्रिय वंश भास्कर - डा० इन्दुदेव नारायणसिंह पृष्ठ संख्या १००
५- " " पृष्ठ सं०१०६
६- " " पृष्ठ सं० १०२-१०३
७- रामचरित मानस टीका - महावीर प्रसाद मालवीय - पृष्ठ सं० १२
८- ऐतिहातिक स्थानावली - विजयेन्द्र कुमार माथुर - पृष्ठ सं० ३५३
९- इण्डियन ईयर बुक एंड हूज हू १९३५-३६ पृष्ठ सं० १२६१

रामपुरा गढ़ी :-

यह स्थान जिला मुख्यालय उरई से ३० मील उत्तर पश्चिम २६° २२° उत्तरी अक्षांश व ७४° १३° पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। (१)

४६ग्रामों की जागीर का मुख्य केन्द्र रामपुरा में स्थित यह गढ़ी निश्चित एक महत्वपूर्ण पुरातात्विक धरोहर है। जो आज तक क्षत्रियों के राजवंशीय कछवाहा जो रामदेव के समकालीन थे, के संघर्ष साहस शौर्य का प्रतीक है तथा तत्कालीन भवन निर्माण कला का उत्कृष्ट नमूना प्रदर्शित करता है। (२)

इतिहास -

कछवाहा राज वंश के विषय में यह मिलता है कि जहाँ तक कुशवाहा -क्षत्रियों के इतिहास का प्रश्न है कहा जाता है कि महाराज रामचन्द्र के पुत्र कुश के वंशज कुशवाहा क्षत्रियों के महाराज दूल्हाराव नरवर नरेश के कंकाल देव और वीकल देव, इन राजपुत्रों का भविष्य वंशोत्पत्ति के कारण जयपुर और कछवाहाधार दो भाग हुए। क्षत्रियों के प्रधान ३६ राजवंशों में कुशवाहा क्षत्रिय भी सम्मिलित हैं। ये महाराज रामचन्द्र के पुत्र कुश के वंशज है। अतएव ये कुशवाहा कहलाये। (३)

कुशवाहा वंश में राजा रविसेन बड़े प्रसिद्ध योद्धा हुए हैं इन्होंने अपने पराक्रम से अपना राज्य विस्तृत किया।प्रतापशाली महाराज दूल्हादेव के बड़े राजकुमार कांकलदेव जी ने अपने वंशजों का नाम आगे बढ़ाया। उन्होंने मीनाओं और बड़गूजरों को परास्त करके आमेर (जयपुर राज्य) की स्थापना की। इसी प्रकार वि० संवत ११६० में अर्थात् ईस्वी सन् ११३३ में बीर बीकल देव ने बहुत ही बड़ी सेना लेकर आज के कछवाहाधार पर आक्रमण किया। जिस समय बीकलदेव ने इधर आक्रमण किया उस समय इस देश में इन्दुरखी (भिण्ड, ग्वालियर) ही मेव (मेवाती:) विविध जातियों के उपद्रवी राजपूत लोंगों की राजधानी समझी जाती थी। इन्दुरखी में मेव (मेवाती) लोगों का सबसे बड़ा सरदार हतिया इस समय राज्य करता था। वह बड़ा बलवान और साहसी था। सम्वत् १२०० के लगभग बीकल देव ने हतिया मेव को मारकर उसके राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। इसी समय बीकलदेव का स्वर्गवास हो गया। अतएव इनके प्रतापी राजकुमार इन्द्रदेव ने शासन सम्हाला और अपने नाम पर इन्दुरखी नाम का ग्राम बसाया। वि० संवत १२१० में इन्हीं राजा इन्द्रदेव ने लहार (भिण्ड,

ग्वालियर) जाकर भगवती मंगला देवी की मूर्ति की स्थापना करवाई । यह मंदिर आज भी बहुत अच्छी दशा में विद्यमान है ।

उस समय इन्दुरखी अच्छा खासा राज्य था । इसके अधिकार में लगभग ४२५ ग्राम थे । इन्दुरखी राज्य के जन्मदाता इन्द्रदेव के पश्चात् ठीक पांचवीं पीढ़ी पर इन्दुरखी राज्य के राजा आस बृम्ह जी हुए है जिनके रोमपाल व भुवन पाल नामक दो राजकुमार उत्पन्न हुए थे । इन दोनों में बड़े राजकुमार रामपाल (रामसिंह) को अपने पिता के शरीरान्त होने पर इन्दुरखी राज्य का अधिकार मिला और छोटे राजकुमार भुवनपाल को बुधनौटा (वर्तमान रामपुरा) की जागीर दी गई । इस राज्य के राजा रामशाह तक के राजाओं का निवासविस्वारी (भिण्ड, ग्वालियर) के समीप करमरा नामक ग्राम में रहा । तदन्तर इन राजा रामशाह या रामसिंह ने अपने नाम पर रामपुरा ग्राम बसाया और एक किले का निर्माण कराया जो साधारण स्थित के किलों में आज भी सर्वोत्तम है ।

रामपुरा राज्य कछवाहा राज्यों में सम्पत्तिशाली व प्रतिष्ठित रहा है । रामपुरा राज्य में राजा कल्यान सिंह जूदेव अध्यात्मवादी , अत्यन्त उदार तथा दयालु प्रवृत्ति के थे । संस्कृत भाषा में हस्तलिखित पुस्तक " अध्यात्मवाद प्रकाश" किसी विद्वान ने राजा कल्यान सिंह जूदेव को समर्पित की जो राज संग्रहालय में सुरक्षित है ।

इसी राजवंश में राजा यशवन्त सिंह भी बड़ी प्रतापी हो गये हैं इन्होंने भरेह (इटावा) के सेंगर राजा पर चढ़ाई की थी यद्यपि विश्वासघात होने के कारण ये संग्राम भूमि में ही वीरगति को प्राप्त हो गये परन्तु इन्होंने जिस वीरता से सेंगर राज्य से घोर युद्ध किया वह किसी से छिपा नहीं है।(४)

वास्तुशिल्पः-

सामान्य स्तर से अधिक ऊँचाई पर निर्मित इस गढ़ी के चारों ओर १५० फीट चौड़ी व २० फीट गहरी खाई है । इसका प्रवेश द्वार २० फुट ऊंचा एवं पूर्वाभिमुख है । इसकेऊपर एक कोविल स्थापित है । जिसके मध्य में शिवलिंग नन्दी सहित प्रतिष्ठित है तथा इसके उत्तरी भाग में हनुमान जी एवं दक्षिणी भाग में गुप्तेश्वर शिवलिंग स्थापित है । इसी के नीचे से एक सुरंग टीहर तक जाती है । दरबाजा मोटी लकड़ी का बना है जो कि हॉथी मस्तक भेदक कीलों सूपों से सुसज्जित लोहा युक्त है । गढ़ी की बाहरी परिखा मिट्टी के टीले नुमा है । आपातकाल हेतु दीर्घकाल अन्न व जल भण्डारण प्रबन्ध से पूरित है जहाँ एक ओर सुनियोजित उत्कृष्ट पार्वत दुर्ग की झलक इसमें मिलती है वही दूसरी ओर ईश्वर शक्ति में अटूट विश्वास का दिग्दर्शक शिवलिंग इस रामपुरा राज्य के राज्य चिन्ह में भैरव प्रतिमा का अंकन दृढ़ता प्रतिष्ठित करता हुआ,

अध्यात्मवादी दृष्टिकोण प्रकट करता है । चारों ओर खाइयों से घिरी होने के कारण जहाँ यह सुरक्षा की गारन्टी लेती हैं वही दूसरी ओर यह गढ़ी कछवाहों की सूझबूझ को परिलक्षित करती है । किले के मुख्य द्वार में प्रवेश करने के पश्चात् परिखा की ओर बढ़ते हुए दरबाजा मिलता है । यह दरबाजा भी प्रथम दरबाजे जैसा ही है । यहाँ पर महल के अन्दर प्रवेश करते हुए दीवार की ऊँचाई लगभग ४१० फुट है । इस किले के बाहर जो बुर्ज इत्यादि बना है इसमें एक कमल बुर्ज भी था जिसके विषय में यह भी कहा जाता है कि तात्याटोपे ने १८५७ में एक तोप का गोला इस रामपुरा की गढ़ी पर मारा था जोकि इस गढ़ी के कमल नामक बुर्ज पर लगा था । मुख्यदरबाजे व उत्तर दक्षिण पर एक छोटा बुर्ज भी है । वर्तमान उत्तराधिकारी श्री समरसिंह ने एक साक्षात्कार में बतलाया कि -
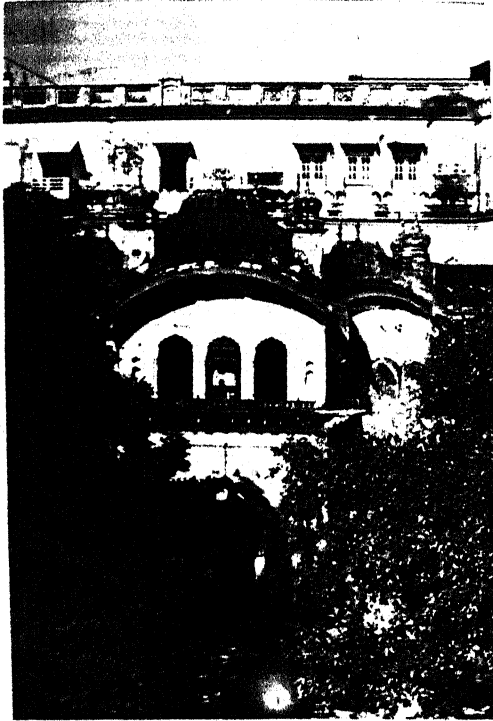
रामपुरा गढी का उत्तरी द्वार

"कुमत उठी यशवंत के घेरी जाये भरेख।
बैठें हते सुख-चैन में अपनी अपनी गेह ।"

अर्थात् महाराज यशवंत ने भरेख (इटावा राज्य के अन्तर्गत) पर हमला किया लेकिन ये उसे जीत न सके । भरेख महाराज के रिश्तेदारों ने रामपुरा पर हमला करके इसे फतेह किया यहाँ पर ७ वर्ष तक भदौरियों का शासन रहा । प्रभाव स्वरूप यहाँ पर पाँच कुये भदौरियों द्वारा बनवाये गये । रामपुरा रियासत ने महाराज जयपुर की मदद् से पुनः रामपुरा पर अपना अधिकार कर लिया।(५)
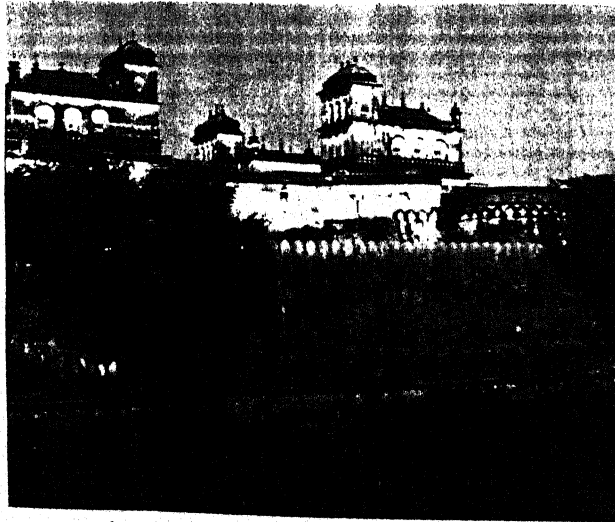
शिलालेख -

गढ़ी के नीचे महल में एक मंदिर है जो कि दक्षिणाभिमुख है तथा इस मन्दिर के द्वार पर

एक ओर पत्थर पर शिलालेख लगा हुआ है जिसमें यह अंकित है कि -

श्री गणेशाय नमः श्री कछवाहा श्री राजा भुवनपाल जूदेव इदुर जीतें आई कै बुधनौटा लई सम्वते १३१० की साल में तिन तै बारह साथी की श्री [illegible]ाराम साहि जूदेव भए तिन अपने नाम के रामपुरा को किला बनवायो १६७६ की साल में तिनते पॉच साल पीछे श्री महाराजाधिराज श्रीराजा फतेह सिंह जूदेव भए तिहि सुत माधव सिंह महल भरौ बनवायो। सम्वत् दस ८८३ ऊपर पायो । कृष्ण पक्ष वैसाख हौं नवा सरस सिनानी । नीउ लगी शुभलगन सम प्रेम ध्यान बखानी । बनी बरस पांच में आरते कारीगर हरीसिंह की । ता ऊपर तरहन रासुको रहो कढ़ोरे गौ विप्र (दोहा) वेदवान वि वि राम शशि इत नौ हजार लगी लगाई न महल को लीजौ चतुर विचार अमल उज्जैन के श्री महाराजा धिराज श्री महाराज आलीजाह सूबेदार श्री दौलति राव जी सिद्धि ते बहादुर मुकाम इकलाष फौज सौ ग्वालियर बगीचा । श्री

इस शिलालेख से स्पष्ट है कि इस महल की तामीर सम्वत् १३१० की साल में राजा रामसिंह जूदेव द्वारा करवाई गई थी ।

सन्दर्भ-सूची

१- जालौन गजेटियर -	डी०एल०ब्रोकमैन	पृष्ठ सं० १८६
२- "	"	पृष्ठ सं०१६०
३- जालौन गजेटियर -	डी०एल० ब्रोकमैन	पृष्ठ सं० ६३
४- रामपुरा राज्य का इतिहास -	रसूल अहमद सागर	पृष्ठ सं० ११,१२
५- व्यक्तिगत साक्षात्कार -	महाराज समरसिंह	दिनांक २३-७-६४

गोपालपुरा गढ़ी

गोपालपुरा - जागीर की अतुलनीय पुरातात्विक धरोहर २६° १५' एवं ७६° ८° पूर्व अक्षांस पर स्थित (१) "गोपालपुरा - गढ़ी" अपने तमाम गौरवमयी अतीत को अपने आंचल में संजोये, वर्तमान जालौन जनपद की कोंच तहसील में स्थित है । जनपद के उत्तरी पश्चिमी कोने पर पहूज-नदी के किनारे अपनी अपूर्व-छटा बिखेरती हुयी यह गढ़ी, जनपद मुख्यालय - उरई से पश्चिम की ओर जनपद के बृहदतम् ग्राम बंगरा से होते हुए मात्र ४४ कि०मी० की दूरी पर , अपने भग्नावशेषों के माध्यम से देश के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में अपने बहुमूल्य सक्रिय सहभागिता की मूक-साक्षी है। (२) एक ओर जहाँ इसने स्वतंत्रता की देवी झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, उनकी सेना तथा अन्यान्य स्वतंत्रता के दीवानों को आतिथ्य प्रदान कर अपना नाम इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर अंकित कराया वहीं दूसरी ओर आज भी प्रतिवर्ष पूर्व नाम गुपालकर, गोपाल बाबा की इस पावन तपोभूमि में हंजारों श्रद्धालु-जन, मकर संक्रान्ति की पुण्य तिथि में एकत्र होकर मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करने में विश्वास रखते हैं । दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार इसे गुपालकर भी कहते हैं । यहाँ पर मकर संक्रान्ति का मेला पूस या माघ में लगता है जिसमें लगभग ५००० लोगों का जमाव होता है। (३)

इतिहास -

यह गढ़ी जिस स्थान पर स्थित है उस गोपालपुरा का अतीत भारतीय संस्कृति के स्थापक एवं पोषक ऋषियों मनीषियों की तपोभूमि रहा है ।

राजा कृष्ण पाल सिंह जूदेव के अनुसार विक्रमी संवत (१०००) वर्ष से पूर्व इस गोपालपुरा का नाम गोपालगिरि था । उस समय यह गोपालगिरि सुन्दर सघन वन सम्पदा से आच्छादित था । इसी प्रदेश में सिद्धपुरूष मनीषी, ऋषि मुनि सतत् ब्रह्म चिन्तन व अनुराग में लीन रहते थे । इसी गोपालगिरि की किसी सघन वनस्थली में गोपाल बाबा नामकेएक महात्मा निवास करते थे जिनके नाम पर ही इस स्थान का नाम गोपालपुरा पड़ा । गोपालपुरा अर्थात् गोपालबाबा का स्थान । इन्ही बाबाजी की अलौकिक शक्ति का परिणाम रामसागर नामक नलकूप है जिसने इस गोपाल पुरा की माटी की अतृप्त प्यास को बुझाकर, जीवन की रसधारा प्रवाहित की। (४)

गोपालपुरा की जागीर की स्थापना लहार (म०प्र०) के राजा रूपपाल सिंह के छोटे पुत्र आलम राव द्वारा की गई। (५)

महाराज आलम राव को संवत १६३१ तदनुसार सन १५७४ ई० में जब गोपालपुरा की जागीर प्राप्त हुई तब वे मात्र १६ वर्ष के थे परन्तु अपनी लगन व निष्ठा से उन्होंने अपने निवास हेतु राजमहल वर्तमान गोपालपुरा की गढ़ी का निर्माण कराया (६)

गोपालपुरा में श्रीआलमराव ने सन १५७५ ई० में राज्यावास का निर्माण कराया (७)

इस गोपालपुरा दुर्ग के पश्चिमी ओर भद्रशीला के उस पार राजा सुदर्शन सिंह जूदेव द्वारा बागों का जीर्णोद्धार कराकर उसमें गुलाब चम्पा, बेला, चमेली आदि के साथ अनेक फलदार वृक्षों को लगवाया ।(८)

राजमाता साहिबा पमारिन जूदेव के अनुसार गोपालपुरा गढ़ी के निर्माण में उस समय लगभग सोलह हजार चाँदी के रूपये व्यय हुए थे तथा यह गढ़ी २१ माह में बनकर तैयार हुई थी जिसे ५० कारीगरों एवं १५० मजदूरों ने कठिन श्रम करके तैयार किया था (६)

सन १६७५ में इस गढ़ी की हालत जीर्ण शीर्ण होने लगी तथा पश्चिमी भाग गिरने लगे जिनकी वजह से यह असुरक्षित हो गई तब राजा कृष्ण पाल जूदेव ने अपन निवास हेतु इस गढ़ी के पूर्व में एक अन्य निवास स्थान का निर्माण कराया तथा इस गढ़ी को छोड़ दिया । व्यापक देखरेख के अभाव में व ग्रामवासियों की ललचाई दृष्टि ने इस विशाल गढ़ी को खण्डहरों में परिवर्तित कर दिया (१०)

गढ़ी के राजवंश का परिचय -

इस जालौन जनपद में सेंगरों के आगमन के पश्चात् चौहानों का आगमन हुआ । ये चौहान इस जनपद में कब और कैसे आये यह तथ्य ठीक प्रकार से ज्ञात नहीं है परन्तु यह सत्य है कि सन ११८२ ई० में चन्देल शक्ति के पराभव के पश्चात् ये लोग यहाँ पर स्थापित हुये जिन्हें दिल्ली के चौहान राजा द्वारा अपने राज्य के विस्तार, सुरक्षा प्रबन्ध हेतु बसाया गया था ।चौहानों के पश्चात् यहाँ पर कछवाहे आये । परम्पराओं के अनुसार नरवर के राजा दुलहा राय के दो पुत्र थे ।एक काकुल देव जिन्होंने जयपुर राज्य की शासन व्यवस्था सम्हाली एवं द्वितीय बैकाल देव जो कि नरवर में रहे । इसके पश्चात् भुवन पाल ने लहार में अपने आपको स्थापित किया और तत्पश्चात् वही से गोपालपुरा एवं रामपुरा के राजाओं की वर्तमान श्रृंखला प्रारंभ हुई।(११)

प० रामसहाय भट्ट लहरी ने गोपालपुरा राजवंश का जो वंशवृक्ष वर्णन किया है उसमें दूल्हाराव को आमेर का बतलाया है तथा उनके पुत्रों का नाम वाकल देव व

वीकल देव बतलाया है वाकल देव को आमेर का तथा वीकल देव को इन्दुरखी का शासक बतलाया है। वीकल देव के पश्चात् उनके पुत्र पर्वतशाह ने राज्य भार ग्रहण किया। पर्वतशाह के दो पुत्र थे। एक राजशाह (लक्षाप्रह) जिन्हें लहार म०प्र० की जागीर प्राप्त हुयी व दूसरे आलमराव जिन्हें गोपालपुरा की जागीर संवत १६३१ विक्रमी में प्राप्त हुई। (१२)

गोपालपुरा के रावशिवदर्शन सिंह लहार के राजा रूपपाल सिंह के छोटे पुत्र आलमराव द्वारा गोपालपुरा जागीर की नींव पड़ी। इस जागीर में ६२ गावों की जागीरदारी सम्मिलित थी। यह जागीर ग्वालियर के सिन्धिया परिवार के कब्जा करने से पूर्व १६वीं शती तक ज्योंकी त्यों बनी रही। इसके बाद सन १८४४ ई० में यह जागीर १२ गावों तक ही सीमित रह गयी और सन १६०६ ई० में यह मात्र ६ गावों तक ही केन्द्रित रह गई। राव की उपाधि आलमराव द्वारा ग्रहण की गई तथा अब तक चली आ रही है। इस गोपालपुरा राज्य का उत्तराधिकार राव लक्ष्मन सिंह के भतीजे को सन १६०६ में दत्तक रूप में प्राप्त हुआ था। (१४)

महाराज आलमराव को संवत १६३१ विक्रमी में गोपालपुरा की राजगद्दी प्राप्त हुई और आपके पश्चात् संवत १६६२ विक्रमी में आपके पुत्र दलपत राव का राज्याभिषेक हुआ। संवत १६६८ में दलपत राव के सबसे बड़े पुत्र परशुराम जूदेव को गद्दी प्राप्त हुई। संवत १६६४ विक्रमी में परशुराम जूदेव के बड़े पुत्र खड्गराव जूदेव गद्दी पर बैठे और संवत १७१५ विक्रमी मेंखड़ग राव जूदेव के पुत्र चंपत राव जूदेव ने गोपालपुरा शासन की बागडोर सम्हाली। संवत १७३१ में अपने पिता चंपतराव जूदेव की मृत्यु के पश्चात् हरसिंह राव जूदेव गद्दी पर बैठे। हरसिंह राव जू देव के पश्चात् विक्रमी संवत १७५० में उनके पुत्र हरवंश राव जूदेव ने राज्य का कार्यभार सम्हाला। संवत १७७१ में अपने पिताश्री की मृत्यु उपरान्त जालिम सिंह जूदेव राजगद्दी पर बैठे। संवत १७६२ विक्रमी में जालिम सिंह के पश्चात् तिलोकसिंहगद्दी पर बैठे और संवत १८०८ में जितवार सिंह जूदेव ने राजगद्दी का कार्यभार ग्रहण किया। संवत १८३० विक्रमी में राजा लक्ष्मण सिंह जूदेव का राज्याभिषेक हुआ। उनके पश्चात् संवत १८६६ में रामचन्द्र जूदेव, संवत १६१४ में लोचनसिंह जूदेव का राज्याभिषेक हुआ। आप गोद आये थे। सन १८५७ ई० में सर हयूमरोज ने जब कालपी पर अपना अधिकार कर लिया तब रानीलक्ष्मीबाई राव साहब पेशवा और बाँदा के नबाब अलीबहादुर कालपी छोड़कर चले गये। राव साहब पेशवा कालपी से भागकर गोपालपुरा पहुँचे। तात्या टोपे भी यहीं पर पेशवा से मिले तथा बाँदा के नबाब भी सहायता देने के लिए पहुँच गये। इस प्रकार से गोपालपुरा में तीनों की सेना इक्कठी हुई।

कानपुर में तात्या टोपे ने अंग्रेजों को हरा दिया और फिर वह सेना गोपालपुरा में इकट्ठी हुई ।इस सेना ने ग्वालियर की ओर कूच किया । इस समय गोपालपुरा के शासक महाराज रामचन्द्र सिंह जूदेव थे। (१४) संवत १९३५ में सुदर्शन सिंह जूदेव, संवत १९७२ में उदयवीर सिंह जूदेव तथा संवत १९८९ में राजा कृष्णपालसिंह जूदेव को गोपालपुरा राज्य की गद्दी प्राप्त हुई । (१५)अक्टुबर सन १९९३ में पूना में आपकी मृत्यु हुईऔर उसके पश्चात् आपके बड़े पुत्र युवराज राजेशपाल सिंह के १२ वर्षीय पुत्र राजा ब्रजराज सिंह का राज्याभिषेक हुआ क्योंकि युवराज राजेशपाल सिंह, राजा कृष्णपाल सिंह जूदेव के जीवन में ही एक मोटर साईकिल दुर्घटना में स्वर्गवासी हो गये थे । वर्तमान में गोपालपुरा की गद्दी का स्वामित्व राजा बृजराजसिंह जी के अधीन है । (१६)

गोपालपुरा वंशवृक्ष संलग्न है ।

गढ़ी का स्थापत्य-

यह गोपालपुरा की गढ़ी ऊसर में बनी है एवं इसका मार्ग कठिन बना दिया गया है अतः यह ऐरिण दुर्ग की श्रेणी में आता है। (१७)

यह गढ़ी पहूँज नदी के किनारे नदी तट से लगभग १५० फुट ऊँची कगार पर स्थित होने के कारण गिरिदुर्ग तथा इसका परकोटा ईट पत्थर का होने के कारण पारिध दुर्ग की श्रेणी में आता है।

गढ़ी का पूर्वी दृश्य

यह गढ़ी उत्तराभिमुख है । इसका मुख्य द्वार उत्तर की ओर है । सम्पूर्ण गढ़ी एक चक्राकार स्थान में बनी है । इसके पूर्व की ओर भी एक द्वार है । इस गढ़ी के दक्षिण में पहूज नदी की गहरी खाई है व पश्चिमी भाग भी पहूज नदी से आरक्षित है । गढ़ी के दक्षिण व पश्चिम में ईटों से निर्मित बुर्ज स्थापित हैं जो दक्षिणी व पश्चिमी सीमा के रखवाले हैं । गढ़ी के मुख्य द्वार की दीवाल १५ फुट चौड़ी है एवं दरवाजा १२ फुट चौड़ा तथा १५ फुट ऊँचा है । मुख्य दरवाजा कंगूरदार मेहराब युक्त है । इस मुख्य द्वार की
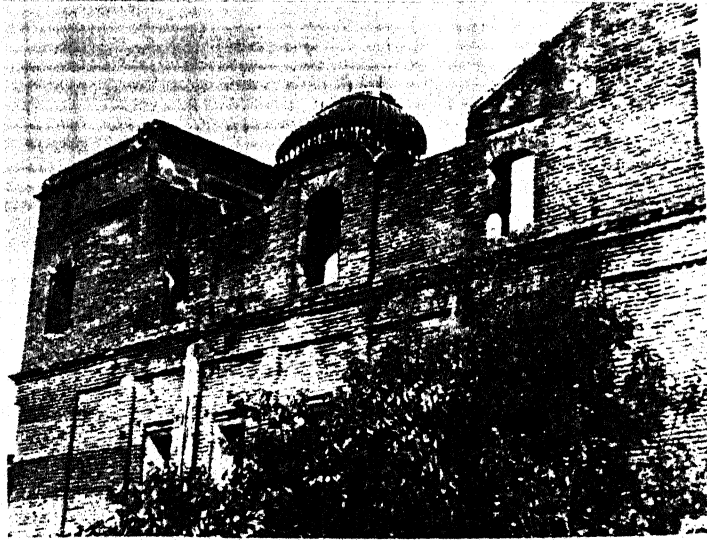
पूर्वी व पश्चिमी दीवालें ऊपर की ओर एक एक आला से युक्त है। इस द्वार के ऊपर तोड़ो से मधा मञ्जा बना है जिसके ऊपर त्रिद्वारीय कोबिल स्थित है जिसके ऊपर आयताकार फाँक युक्त गुम्बदीय आकृति अंकित हैं। इस कोबिल के दोनों ओर अपेक्षाकृत छोटी गुम्बदाकार आकृति अंकित हैं। मुख्य द्वार से दक्षिण की ओर जाते हुए पश्चिम की ओर मुड़कर लगभंग ५० कदम की दूरी पर ऊँचाई पर स्थित गढ़ी का आन्तिरिक खुला क्षेत्र संलग्न है जिसके मध्य में खुली छत है
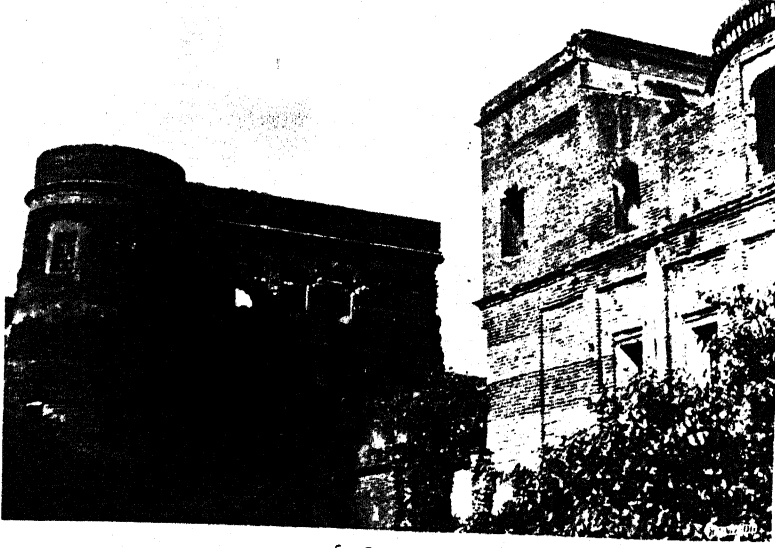
बुर्ज सहित गढ़ी का दक्षिणी दृश्य

तिमन्जले भवन के निम्न तल पर कभी दरवार हाल रहा होगा। इस दरबार हाल के दरबाजों पर चूने की बेल बूटियाँ अलंकृत हैं। गढ़ी के पूर्वी द्वार के अन्दर उत्तर की ओर गढ़ी का मन्दिर स्थित था जो कि अब ध्वस्त स्थिति में है। पूरी गढ़ी में पतली ईट व चूने का कार्य है तथा बाहर से चूने का सुन्दर प्लास्टर था। इस गढ़ी का डेनेज सिस्टम **(DranageSystem)** अत्यन्त सुन्दर व वैज्ञानिक है। गढ़ी के दोनों बुर्ज नीचे चौड़े व ऊपर संकरे है तथा इनसे विभिन्न कक्ष संलग्न हैं। सुरक्षा की दृष्टि से ये बुर्ज अत्यन्त उपयोगी है।

गढ़ी की विशेषतायें - गढ़ी की रचना, आकार तथा निर्माण में तत्कालीन यथार्थ वैज्ञानिक दृष्टिकोण के स्पष्ट दर्शन मिलते हैं। गढ़ी की दक्षिण व पश्चिमी भुजा पर निरूपित बुर्ज जहाँ एक ओर दुश्मन के आगमन की पूर्व सूचना देने में निरीक्षण-चौकी **(Observation Post)** के रूप में उपयोगी थे वहीं दूसरी ओर इसके पूर्व व अन्तर की निर्मित सुदृढ़ व विशाल दरवाजे पहूज नदी से सीधी बांस चढाई शासकों की सुरक्षा के प्रति सजगता का सटीक प्रमाण है। यह दुर्ग पार्वत दुर्ग की श्रेणी में आता है। तत्कालीन उत्कृष्ट कारीगरी का नमूना गढी के अन्दर निर्मित राज महल व मुख्य द्वार से मात्र ५० कदमों की दूरी पर स्थित दरवार हाल, शासकों की बहुआयामी प्रतिभा तथा न्यायप्रियता के स्तर की सोच की ओर इंगित करते हैं। अनुमान है कि इसका महज उद्देश्य प्रत्येक फरियादी का सीधे राजा से सम्पर्क व प्रशासनिक व्यवस्था को चुस्त एवम् दुरूस्त रखना था।

सन्दर्भ-सूची

१- जालौन गजेटियर - डी० एल० ड्रेक ब्रोकमैन पृष्ठ सं० १०[illegible]

२- " " पृष्ठ सं०१

३- बुन्देलखण्ड का इतिहास (प्रथम भाग) - ले० दीवान प्रतिपाल सिंह पृष्ठ सं० १३७

४- कुश राजवंश प्रदीप- राजा कृष्णपाल सिंह जूदेव- पृष्ठ सं० १८३

५- जालौन गजेटियर - डी०एल० ब्रोकमैन- पृष्ठ सं० ७४

६- कुशराजवंश प्रदीप - राजा कृष्णपालसिंह जूदेव पृ०सं०१८४

७- कुश राजवंश प्रदीप- राजा कृष्ण पाल सिंह- पृष्ठ सं० २१५

८- " " पृष्ठ सं०२२६

९- व्यक्तिगत साक्षात्कार - पूज्य राजमाता पमारिन सिंह जूदेवसे दिनांक २६-३-६४ को । आयु लगभग ८० वर्ष

१०- व्यक्तिगत साक्षात्कार - राजमाता भगवती प्रताप कुमारी दिनांक २७-३-६४को । आयु लगभग ५० वर्ष

११- जालौन गजेटियर- डी०एल० ब्रोकमैन- पृ०सं०६३

१२- कुश राजवंश प्रदीप- राजा कृष्ण पाल सिंह- पृष्ठ सं० २१३

१३- जालौन गजे[illegible] डी०एल० ब्रोकमैन- पृष्ठ संख्या ७४

१४- बुन्देलखण्ड का संछिप्त इतिहास - गोरेलाल तिवारी पृष्ठ संख्या २६७

१५- कुश राजवंश प्रदीप - राजा कृष्णपाल सिंह- पृष्ठ संख्या २१३ - २१४

१६- व्यक्तिगत साक्षात्कार - श्री लोकेन्द्र सिंह,नावली दिनांक २१-१-१९९४

१७- हिन्दू राज्य शास्त्र - अम्बिका प्रसाद बाजपेयी - पृष्ठ संख्या ७५

रंग महल

कालपी के मिर्जामण्डी स्थित मुहल्ले में यह रंगमहल बना हुआ है (१)जो आज भी अकबर के नवरत्नों में से एक बादशाह बीरबल की न्याय प्रियता व विनोदी स्वभाव की स्मृति दिलाता है । बीरबल का रंगमहल कालपी के ऐतिहासिक भवनों में से एक है।(२)

इतिहास-

राजा बीरबल का पुराना नाम महेश दास था जो कि एक ब्राहमण भाट थे जिसको परशियन लोग बादफरोश कहते है । यह एक गरीब परन्तु दिल का साफ सुथरा व्यक्ति था जिसके अन्दर अनुमान लगाने की विशेष क्षमता थी । उसकी हिन्दी कवितायें बहुत अच्छी थी जिससे बादशाह अकबर ने 'कविराम' की उपाधि से विभूषित किया था तथा सदैव ही उसे अपने निकट रखता था ।(३)

डा० राजेन्द्र कुमार के अनुसार मथा के राजा रामचन्द्र ने महेश दुबे की कविताओं से प्रभावित होकर उसे कविराय' की उपाधि से सम्मानित किया था।(४)

महेश दुबे बीरबल का जन्म कालपी की एक सकरी गली में हुआ था तथा वह जंगलों से लकड़ी बीनकर अपना जीविकोपार्जन किया करता था । यह अपनी गरीब माँ की अकेली सन्तान थे।(५)

श्री रूप किशोर टण्डन के अनुसार बीरबल का पहले का नाम महेशदास था(६) तथा ये कान्यकुब्ज ब्राहमण थे । ये इसी कालपी नगर के रहने वाले थे । राजा रामचन्द्र द्वारा उन्हें कविराय की उपाधि से विभूषित किया गया था (७)

प्रो०के०डी० वाजपेयी लिखते हैं कि बीरबल का जन्मस्थान कालपी नगर में रंगमहल के नाम से अब भी विद्यमान है।(८)

श्री रूप किशोर टण्डन के अनुसार अकबर के समय में बीरबल ने कुछ महल अपने रहने के लिए निर्माण कराये थे उनमें से रंगमहल का कुछ भाग अभी भी बना हुआहै(९)

अकबर के नवरत्नों में प्रधान बीरबल कालपी के ही निवासी थे जिनके रंगमहल के भग्नावशेष अब भी विद्यमान है।(१०)

ज्योतिखरे के अनुसार सम्राट अकबर ने बीरबल को कालिन्जर राज्य का जागीरदार बनाकर उन्हें राजा बीरबल की पदवी दी थी । बीरबल का कालपी में जीर्ण शीर्ण हालत में घर आज भी मौजूद है।(११)

कालिन्जर का जागीरदार बन जाने के पश्चात् बीरबल ने कालपी में अपना निवास स्थान बनवाया। (१२)

अस्तु राजा बीरबल , जिनका पुराना नाम महेशदास दुबे था, जन्म कालपी में सन १५२८ में एक गरीब कान्यकुब्ज ब्राहमण परिवार में हुआ था जो कि जंगलों से लकड़ी बीनकर अपनी जीविका चलाते थे। वे एक कुशल कवि थे जिनकी कविताओं से प्रभावित होकर राजा रामचन्द्र द्वारा उन्हें कविराय की उपाधि से विभूषित किया गया। अकबर की सानिध्य में आने के पश्चात बीरबल को कालिंजर का जागीरदार बनाया गया और उसके पश्चात् बीरबल ने अपनी जन्मभूमि कालपी में अपना निवास बनवाया था जिसके भग्नावशेष के रूप में रंग महल आज भी विद्यमान है।

वास्तु शिल्प -

राजा बीरबल ने कालिंजर की जागीरदारी प्राप्त करने के पश्चात कालपी में अपना निवास स्थान बनवाया। उसने सातचौक का महल बनवाया तथा हाथी खाना और घुड़साल का भी निर्माण कराया। (१३)

रंग महल भवन तो अब टूट गया है परन्तु उसका दीवान खाना अब भी पुराने समय की याद दिलाता है। इसके आसपास अन्य भवन जर्जर तथा छिन्न भिन्न अवस्था मे पड़े दिखते है जो प्राचीन महत्ता को दर्शाते हैं। (१४)

संदर्भसूची

१- कालपी महात्म - रूपकिशोर टण्डन पृष्ठ सं०३७

२- डायरी - उत्तर प्रदेश सरकार के सूचना विभाग द्वारा प्रकाशित वर्ष १९५४ पृष्ठ सं० १२

३- आईने अकबरी - अनुवादक एच ब्लाकमैन अबूल फजल अलामी एम०ए० पृष्ठ सं० ४४२

४- पुरातन गाथाओं का शहर कालपी - डा० राजेन्द्र कुमार पृष्ठ संख्या ७

५- पुरातन गाथाओं का शहर कालपी	डा० राजेन्द्र कुमार	पृष्ठ सं० [illegible]
६- कालपी महात्म	रूपकिशोर टण्डन	पृष्ठ सं० [illegible]
७- बुन्देली विरासत -	नईम क़ुरैशी -	पृष्ठ सं० ७२
८- कालपी-महात्म - युग युगों में कालपी -	प्रो० के० डी० बाजपेयी	पृष्ठ सं० १४२
६- कालपी महात्म	रूपकिशोर टण्डन -	पृष्ठ संख्या ३७
१०- साप्ताहिक लोकसेवा - " कालपी हिन्दी भवन का स्थल (१८ नवम्बर१६७३)		पृष्ठ संख्या - ११
११- कादम्बनी " हिन्दु मुस्लिम एकता का संधि स्थल" -	ज्योतिखरे -	पृष्ठ संख्या ६६
१२- पुरातन गाथाओं का शहर कालपी -	डा० राजेन्द्र कुमार -	पृष्ठ संख्या ७
१३- "	"	"
१४- कालपी महात्म	रूप किशोर टण्डन -	पृष्ठ संख्या ६६स-२

श्री दरबाजा

कालपी स्थित बड़े बाजार की पूर्वी सीमा पर यह श्री दरवाजा स्थित है। (१) राजा श्रीचन्द्र की शहादत में बना यह श्री दरवाजा 'दर्शनार्थियों को बरबस अपनी ओर खींच लेता है। (२)

इतिहास -

प्रसिद्ध पत्रकार अखिलेश विद्यार्थी के अनुसार सन ११६६ ई० में कालपी के राजा श्रीचन्द्र के कुछ आदमी अपने राजा के साथ विश्वासघात करके यवन सेनापतियों से मिल गये और परिणामस्वरूप युद्ध के मैदान में राजा श्रीचन्द्र की हार हुई एवं वह युद्ध में शहीद हुए। विजयी यवन सरदार ने राजा श्रीचन्द्र के सिर को पृथ्वी में गड़वाकर उसके ऊपर एक विशाल द्वार का निर्माण कराया जो श्री दरबाजे के नाम से जाना जाता है। (३)

परम्परानुसार यह कहा जाता है कि कालपी के अन्तिम हिन्दू राजा श्री चन्द्र मुसलमानों द्वारा पराजित हुए एवं उनकी मृत्यु कालपी में हुई और उनका सिर इस दरबाजे के नीचे गाड़ दिया गया। (४)

हिजरी ७९१ में कालपी के राजा लहरिया उर्फ श्री चन्द्र जब मुसलमानों से हुए युद्ध में शहीद हुए तब उनके नाम पर इस 'श्रीदरवाजे' का निर्माण हुआ । कहा जाता है कि युद्ध में वीरगति को प्राप्त राजा लहरिया श्रीचन्द्र की पटरानी लोढ़ा से राजा श्रीचन्द्र का सिर माँग कर नगर के पश्चिमी भाग में उसे दफनाया तथा उस पर एक शानदार दरवाजा बनवाया। (५)

डा० राजेन्द्र कुमार के अनुसार राजा श्रीचन्द्र सोलहवीं शताब्दी के आरंभ में महमूद लोधी द्वारा मारा गया था । बाद में श्रीचन्द्र के नाम से ही महमूद लोधी ने नगर में एक दरबाजा बनवाया था जो श्री दरबाजे के नाम से आज भी विख्यात है। (६)

श्रीरूपकिशोर टण्डन के अनुसार यह श्री दरवाजा बारहवीं शताब्दी के यवनकाल के प्रारंभ में बना हुआ बतलाया जाता है। (७)

मुंशी ख्वाजा इनायत उल्ला के अनुसार ७९१ हिजरी में सुल्तान मुहम्मद उर्फ महमूद शाह लोधी ने कालपी शहर में इस आलीशान दरवाजे की नींव डाली । इस दरवाजे के निर्माण के सन्दर्भ में यह कारण लिखा है कि महमूद शाह लोधी ने जब राजा श्रीचन्द्र को हरा दिया तब उसका सिर काटकर इस दरवाजे की नींव में रखा और यह श्रीदरवाजा बनवाया। (८)

जनश्रुति के अनुसार युद्ध में वीरगति को प्राप्त राजा श्रीचन्द्र का सिर उनकी पत्नी लोढ़ारानी से जबरदस्ती लेकर कालपी शहर की पूर्वी सीमा पर गाड़ कर उस पर इस दरवाजे का निर्माण महमूद लोधी द्वारा इस कारण किया गया कि जितने भी लोग कालपी शहर की सीमा में प्रवेश करें अथवा कालपी से बाहर जायें उन सबके पैरों तले राजा श्रीचन्द्र का सिर रौंदा जाये ।

अस्तु कालपी के अन्तिम हिन्दू राजा श्रीचन्द्र का युद्ध सन ११९६ ई० में महमूद शाह लोधी के साथ हुआ जिसमें राजा श्रीचन्द्र वीरगति को प्राप्त हुए । हिन्दू मान्यताओं के आधार पर अन्तिम संस्कार पूर्ण होने के पूर्व ही राजा श्रीचन्द्र की विधवा पत्नी रानी लोढ़ा की उपस्थिति में महमूद शाह लोधी ने अपनी बर्बता के अन्तर्गत राजा श्रीचन्द्र की लाश से सिर काटकर उसे नगर की पूर्वी सीमा पर श्रीदरवाजे के नीचे गड़वा दिया ताकि राजा श्रीचन्द्र का सिर कालपी आने जाने वाले प्रत्येक व्यक्ति के पैरों तले कुचला जा सके और लोगों को महमूद

लोधी की बर्बता का अहसास रहे ताकि कोई उसके शासन में सिर न उठा सके । रानी लोढ़ा द्वारा अपने पति की सिर विहीन लाश का ही दाह संस्कार किया गया ।

वास्तुशिल्प -

यह श्रीदरवाजा कालपी शहर की पूर्वी सीमा पर मेहराबयुक्त दुखी आकृति दर्शाता हुआ बना है (९)

यह विशाल श्रीदरवाजा ३६ फुट ऊँचा व १२ फुट चौड़ा है । इसकी दीवालें १४ फुट चौड़ी हैं । तथा यह नीचे से ऊपर की ओर क्रमशः पतला होता गया है । इस दरवाजे के ऊपर तीन पूरे कंगूरे व दो - पौने कंगूरे अंकित है । इनमें कोई दरवाजा नहीं है। (१०)

राजा श्रीचन्द्र का स्वामि भक्त अनुचर , जिसका नाम पूरन कहार था , भी फाटक के वायीं ओर आले में चुनवा दिया गया था। (११)

इस दरवाजे के बगल में ही शाही मसजिद है जिसका मुआज़िन दरवाजे की दीवार से अभी भी अजान देता है ।

इस दरवाजे के ऊपर स्थित कंगूरों में प्रत्येक में एक एक चौकोर छिद्र बना हुआ है जिससे आर पार देखा जा सकता है । कंगूरों के नीचे एक बाहर निकली हुयी पट्टिकाअंकित है जिसके नीचे पुनः आर पार देखने वाला एक एक छिद्र ऊपरी छिद्रों के ठीक नीचे अंकित है। इसके नीचे आयताकार आकृति अंकित है जिसके अन्दर एक विशाल मेहराब बना हुआ है । इस विशाल मेहराब के नीचे विशाल मेहरायुक्त दरवाजा बना है । दोनों मेहराबों के बीच एक बड़ीआयताकार आर पार देखने वाली खिड़की बनी है जिसके नीचे दोनों ओर पानी निकलने के छिद्र अंकित हैं। इसके नीचे छोटे छोटे तोड़ो पर आधारित एक छज्जा भी अंकित है। श्री दरवाजे में लकड़ी के दो विशाल फाटक भी लगे हुए थे । दरवाजे के दोनों ओर विशाल लकड़ी के फाटकों को साधने हेतुऊपरतथा नीचे की ओर पत्थर के गोल हुक भी लगे हैं ।

यह श्रीदरवाजा हिन्दुओं पर मुगलोंकी बर्बरता की मूक कहानी आज भी बुलन्दी के साथ कह रहा है ।

यह सम्पूर्ण श्रीदरवाजा पत्थर तथा चूने के संयोग से निर्मित है तथा इस पर चूने का ही प्लास्टर है ।

संदर्भ-सूची -

१- जालौन गजेटियर - डी०एल० ड्रेक ब्रोकमैन - पृष्ठ सं० १५६

२- महाकवि काली कला शोध केन्द्र उरई द्वारा प्रकाशित समारोह स्मारिका लेख - जनपद जालौन - हरीमोहन पुरवार - पृष्ठ सं०८

३- सा०लोक सेवा "कालपी - हिन्दी भवन का स्थल" (१८नवम्बर १९७३) पृष्ट सं०११

४- जालौन गजेटियर - डी०एल० ब्रोकमैन - पृष्ठ सं० १५६

५- सांस्कृतिक धरोहर - (जनपद जालौन वर्ष १९९३-९४) पृष्ठ सं० १३

६- दैनिक कर्मयुग प्रकाश - (२५ जुलाई १९७९) - " कालप्रियनाथ मन्दिर और श्रीदरवाजा" डा० राजेन्द्र कुमार - पृष्ठ सं० ३

७- कालपी महात्म - ले० रूपकिशोर टण्डन - पृष्ठ सं०६४

८- आईना - कालपी - ले० मुंशी ख्वाजा इनायत उल्ला - पृष्ठ सं० ७६

९- जालौन गजेटियर - डी०एल० ब्रोकमैन - पृष्ठ संख्या १५६

१०- पुरातन गाथाओं का शहर कालपी ले० डा० राजेन्द्र कुमार मुखपृष्ठ के पीछे की ओर

११- सा० लोक सेवा - (१८ नवम्बर १९७३) - कालपी भवन का स्थल पृष्ठ सं० ११

बावड़ी जालौन

यह बावड़ी जालौन नगर के उत्तरी पश्चिमी सीमा में लक्ष्मी नारायण मन्दिर के पश्चिम में स्थित है ।

इतिहास -

इस बावड़ी का निर्माण सम्वत् १९२३ के आस पास श्रीगोविन्द राव बुन्देला (खेर) द्वारा कराया गया था।(१) बुन्देलखण्ड में ग्रीष्म ऋतु में अधिक गर्मी पड़ने के कारण जल स्तर काफी नीचे चला जाता जिसके कारण जल की सहज प्राप्ति हेतु एवं मन्दिर तथा आस-पास

के निवासियों को सुगमता से जल प्राप्ति के निमित्त इस बावड़ी का निर्माण किया गया था।

वास्तुशिल्प -

यह बाबड़ी १४३ फुट लम्बी तथा ८ फुट ३ इंच चौड़ी है। इस बाबड़ी के पूर्व में एक कुँआ बना हुआ है जिसका ऊपरी व्यास २२ फुट है बाबड़ी एवं कुओं के सन्धि स्थल पर एक आयताकार कक्ष बना हुआ है जिसके ऊपर कमल की पत्तियों का अलंकरण है और उनके ऊपर कलश स-दृष्य निर्मित है। इस कुऐं के बगल से होकर सीढ़ियों द्वारा नीचे जाया जाता है जिससे इसके कक्ष में प्रवेश किया जा सकता है। इसके पश्चिम की ओर तीन मेहराबदार दरबाजे हैं

ाई ५ फुट २ इंच व चौड़ाई १फुट ११ इंच है। इस कक्ष के पूर्वी दीवार पर एक दरबाजा है जो कि कुएं की ओर खुलता है। यह दरवाजा ६ फुट ऊँचा है इस कक्ष की दीवार की मोटाई २ फुट ३ इंच है। इस आयताकार कक्ष की लम्बाई १० फुट व चौड़ाई ८ फुट ३ इंच है। इस कक्ष की दक्षिणी दीवार परएक आला वना हुआ है जिसकी ऊँचाई २ फुट व १ फुट चौड़ाई है। इसकक्ष के नीचे पुनः इसी भाँति एक कक्ष और है। वर्तमान में बाबड़ी का जल स्तर ऊपर से २५ फुट ६ इंच गहराई में है। बाबड़ी के पश्चिम में जल स्तर के बाद लम्बी विशाल चौड़ी सीढ़ियाँ बनी हुई है तथा आयताकार कक्ष के १८ फुट पश्चिम की ओर बाबड़ी के दोनों दरबाजों के मध्य एक मध्य दरबाजा खड़ा हुआहै। जिसके आधार तल पर एक मेहराबदार दरबाजा बना हुआ है जो कि लगभग १५ फुट ऊँचा है। पूरी बाबड़ी में कुल तीन तल बने हुए हैं। इस बाबड़ी का निर्माण पतली ईटों द्वारा किया गया है। जो कि ६ इंच चौड़ी व ७ इंच लम्बी तथा १ १/२ इंच मोटी है।

संदर्भ -

१- लोकसंगम वर्ष ७१-७२ अंक ७- मुंशीसहाय श्रीवास्तव - पृष्ठ ४६

हवेली सुभानगुंडा -

कालपी में मुहल्ला हरीगंज में ये सुभानगुंडा की हवेली स्थित है । कालपी किले के पश्चात् काली देबी का मन्दिर पड़ता है उससे आगे बढने पर बहुत से खण्डहर दिखाई पड़ते है । वही उनमें से एक प्रसिद्ध भवन सुभान गुंडा की हवेली है । (१)

इतिहास -

हवेली सुभानगुंडा के नाम से जाने बाले भवन का निर्माण शेख अहमद नागौरी द्वारा किया गया था । श्री रहीम बख्स सिद्दीकी के अनुसार कालपी की यमुना नदी के किनारे मुहल्ला हरीगंज (आभागंज) में यह हवेली व लगंर खाना है जो कि अब अवशेष मात्र ही रह गयी है । किसी समय में यह एक किला था जो अब टूटकर टीले की शक्ल में हा गया है । तब यह भवन लगभग ६व ७ बीघे में बना था । पत्थरों के चूने के ढेर तथा कहीं कहीं पर पक्के फर्श इस बात के साक्षी है कि यह भवन अत्यन्त प्राचीन है । वर्तमान में भी दो पक्के कुयें बने हुये है । तथा इन कुओं के अतिरिक्त एक तीन गुम्बदों वाली मसजिद शेष रह गयी है । इस मस्जिद के गुम्बद बहुत ऊँचे व सुन्दर है लेकिन इसकी मीनारें बहुत छोटी है । यह मस्जिद महमूद शाह लोधी के समय की है । जो लगभग ७०० वर्ष पुरानी है । इस हवेली का निर्माण उस समय हुआ जब चौरासी गुम्बद बन रहा था । कहा जाता है कि महमूद शाह लोधी के समय में जो कारीगर चौरासी गुम्बद का निर्माण कर रहे थे उन्ही के द्वारा यह हबेली सुभानगुंडा का भी निर्माण किया गया । कारीगर दिन में चौरासी गुम्बद का निर्माण करते थे तथा रात्रि में इस हवेली का निर्माण करते थे । रात्रि में कार्य करने कारण कारीगर दिन में ऊँघते थे इस कारण महमूद शाह लोधी ने कालपी शहर में मिट्टी के तेल की बिक्री पर पाबन्दी लगा दी । जिससे न मिट्टी का तेल होगा न लैम्प मशाल आदि जलेगे और फिर न ही हवेली के निर्माण का कार्य हो सकेगा । परन्तु शेख अहमद नागोरी साहब ने अपने वजू के पानी से चिराग जलवा कर , हवेली के निर्माण का कार्य जारी रखा जिससे प्रभावित होकर महमूद शाह लोधी शेख अहमद नागौरी का शिष्य हो गया । श्री शेख अहमद नागौरी , शेख हमीमुद्दीन नागौरी के शिष्य थे और शेख हमीमुद्दीन नागौरी हजरत ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती के शिष्य थे जो कि अल्लाह के खलीफा थे (२)

ख्वाजा मुंशी इनायतुल्ला के अनुसार संवत १८२२ में गोविन्दराव पण्डित के पुत्र बाला जी राव कालपी में रहा करते थे । उनके एक आभासाहब नाम का पुत्र था जिसके नाम पर आभागंज मुहल्ला आबाद हुआ । हवेली शेख अहमद नागौरी उसकी बनाई थी । (३)

वास्तु शिल्प -

शहर कालपी के वन्दोवस्त में प्लाट संख्या ४६। १.८० पर यह हवेली स्थित है। ८०फुटx२००फुट की जगह इस हवेली के नाम थी (४)

वर्तमान में जो भवन सुभानगुंझा हवेली के नाम से जांना जाता है। वह ६६'x२२२'फुट के क्षेत्र में बना है। यह एक त्रिगुम्बदीय भवन है जिसका मध्य गुम्बद विशाल है एवं उसके उत्तरी तथा दक्षिणी गुम्बद अपेक्षाकृत छोटे व गोल है। गुम्बदों के ऊपरी सिरों पर कमल दल अंकित है तथा इस कमल दल के ऊपर कलश के अवशेष अब भी दृष्टब्य है। सभी गुम्बद अष्टभुजी आधार पर आधारित है।
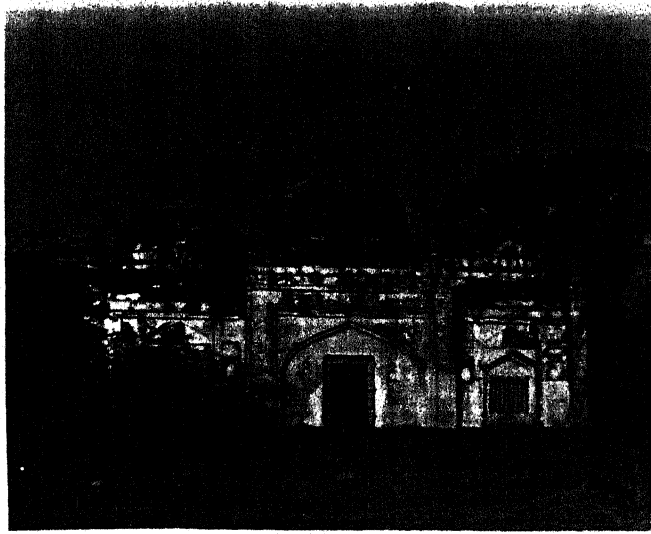
यह सम्पूर्ण भवन पूर्वामिमुख है। मध्य गुम्बद के नीचे एक वर्गाकार कक्ष है। तथा उत्तरी एवं दक्षिणी गुम्बदों के नीचे भी एक एक वर्गाकार कक्ष स्थित है। मध्य कक्ष के ऊपर बाहर की ओर चारो कोनो पर एक एक छोटी छोटी मीनारे स्थित है जो कि ठोस है। कक्ष तथा गुम्बद के अष्टभुजी आधार के संगम स्थल पर तोडे विध्यमान हैं जो कि छज्ञा होने का प्रमाण है। मध्य कक्ष की पूर्वीभुजा पर एक आयताकार दरवाजा स्थित है जिसके उत्तरी तथा दक्षिणी सिरो पर एक आला स्थित है। इस पूर्णअकंन को अपने में ह्रदयगंम करता मेहराब अंकित है। जिसके ऊपरी भाग पर दोनों ओर एक एक गोल पुष्पाकार अंकित है जिस पर १६ अरे अंकित है जो कि प्रत्येक प्रहर के अर्द्ध भाग को दर्शाता है। मध्य कक्ष के उत्तरी तथा दक्षिणी कक्ष का पूर्वी भाग भी मध्य कक्ष से मिलता है। बस अन्तर केवल इतना है कि ये दौनों कक्ष मध्य कक्ष की अपेक्षा छोटे है तथा इन कक्षों के दरवाजों की मेहराबदार अंकन के ऊपर एक अन्य मेहराब और अंकित है। इन दोनों मेहराबों के मध्य एक एक आला स्थित है।

आन्तरिक स्थिति - अन्दर से तीनों वर्ग एक दूसरे के साथ जुडे है तथा वर्गों के सभी खम्बे मेहराबयुक्त है। इनके ऊपर अष्टकोणीय शिल्प बना है। यह अष्टकोणीय शिल्प आठ भुजाओं से युक्त है जिसकी प्रत्येक भुजा पर एक एक मेहराबदार आला अंकित है। यह आला ४ फुट

कोनों की बर्फी भराई

लम्बा व ३ फुट चौड़ा है । मध्य वर्ग की प्रत्येक भुजा अन्दर से १२ १/२ फुट लम्बी है व उत्तरी तथा दक्षिणी वर्ग की प्रत्येक भुजा १२ फुट लम्बी है । दीवाल की मोटाई २ फुट है । दो वर्गों के मध्य स्थित स्तम्भ की मोटाई ५ फुट है ।

इस हवेली का वर्तमान भवन आज कल मसजिद के रूप में प्रयोग किया जा रहा है । इस भवन के तीनों वर्गाकार कक्ष वर्फी भराई से युक्त हैं जो कि चन्देलकालीन कालपी किले से मिलते जुलते हैं ।
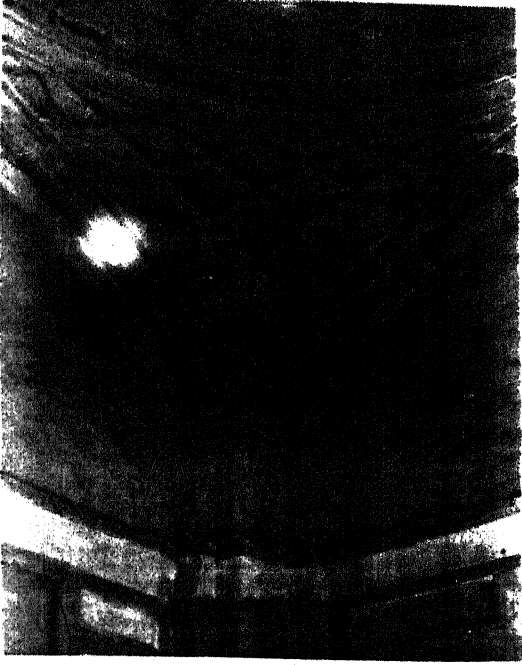
इस हवेली से ८० फुट की दूरी पर एक कुआँ स्थित है । कुआँ गोल है जो कि ऊपर की ओर चौकोर है । इस चौकोर आकृति की प्रत्येक भुजा पर एक एक मेहराब अंकित हैं । मेहराब का अंकन इस बात को प्रमाणित करता है कि कुआँ भी इस हवेली के साथ ही निर्मित हुआ होगा ।

इस हवेली के नीचे पृष्ठ भाग पर सात अन्य कक्ष स्थित है । बीच का चौथा कक्ष मेहराबदार दरबाजे से युक्त है एवं इसमें उत्तरी ओर बैठने का स्थान भी बना हुआ है । इन सात कक्षों के नीचे भी एक तलघरी खण्ड होना बताया जाता है।(५)

यह सुभान गुण्डा की हवेली मुस्लिम वक्फ में ५६ जालौन के नाम से दर्ज है । यह सम्पूर्ण भवन पत्थर तथा चूने से निर्मित है । इस भवन में लकड़ी का कोई प्राचीन कार्य नहीं है ।

भवन की मीनारें छोटी व गुम्बद ऊँचें इस बात का प्रमाण है कि भवन मुगलकाल से पूर्व का है । इस भवन के तीनों कक्षों की अन्दर की जुड़ाई व भराई चन्देलकालीन कालपी स्थित किले के गुम्बदीय अवशेष के बिल्कुल समरूप है जो इस भवन को चन्देलकालीन ठहरा सकता है । उपर्युक्त संदर्भों के अन्तर्गत यह स्पष्ट विचार है कि यह भवन चन्देलकालीन दुर्ग का ही कोई हिस्सा उस समय रहा होगा ।

प्रचलित कथा - यह हवेली सुमानगुंडा की हवेली नाम से जानी जाती है जबकि इसका निर्माण शेख अहमद नागौरी द्वारा किया गया । जनश्रुति के अनुसार सुभान

नामक एक युवक शेख अहमद नागौरी के यहाँ सेवक था। शेख अहमद नागौरी को एक रात्रि स्वप्न हुआ कि श्री की देवी लक्ष्मी उसके यहाँ आना चाहती हैं। साथ ही देवी लक्ष्मी ने यह भी कहा कि वह बहुत कगरत के साथ आवेगी तथा जब जावेगी तो आग लगाकर जावेगी। लक्ष्मी किसको बुरी लगती है सो शेख अहमद नागौरी के पास भी लक्ष्मी आ गई। शेख साहब ने इस हवेली का निर्माण कराया परन्तु इस बात का विशेष ध्यान रखा कि पूरी हवेली में लकड़ी का प्रयोग न हो जिससे आग लगने का खतरा ही न रहे। परन्तु विधि की बात। एक दिन घुड़साल में घोड़ों की नाल और पत्थर के फर्श से चिन्गारी निकली और वहाँ पड़ी सूखी घास में आग लग गयी और फिर वह आग इतनी बढ़ी कि पूरी हवेली को अपने आगोश में ले लिया। यह देखकर सुभान सेवक हवेली में मौजूद दौलत को घोड़ों पर लादकर कालपी की गलियों गलियों में दौलत लुटाता फिरा। तभी रात्रि में लक्ष्मी देवी ने सुभान सेवक से कहा कि तूने मुझे लुटवा दिया तू गुण्डा है। सुभान सेवक ने दौलत को कालपी की गलियों गलियों में फेंका था उसने हवेली से दौलत निकालकर लुटाई थी अतः यह हवेली सुभान गुण्डा की हवेली के नाम से विख्यात हो गई। इसी कथा के आधार पर कालपी के विषय में यह दोहा बड़ा प्रसिद्ध है -

'देखी तेरी कालपी , बावन पुरा उजार।
गली गली गुण्डा फिरै, घर घर बसै छिंनार ॥''

यहाँ पर गुण्डा शब्द सुभान गुण्डा के लिए व छिनार शब्द दौलत के लिए प्रयोग हुआ है। (६)

सन्दर्भ-सूची

१- कालपी महात्म - लें० रूप किशोर टण्डन पृष्ठ संख्या ६५

२- कालपी शरीफ के औलिया इकरम - " लें० रहीम बख्स सिद्दी को 'कालपी कीर्तिअंक (१६७६) पृष्ठ संख्या ६३

३- आईने कालपी - लें० मुंशी इनायत उल्ला पृष्ठ संख्या ७४

-गहर बन्दोस्त कालपी वर्ष १६०१-१६०२ ई०

५ व्यक्तिगत साक्षात्कार - फजीउर रहमान एडवोकेट दिनांक १८ -१२-६२

६- व्यक्तिगत साक्षात्कार - श्री चन्द्रशेखर पुरवार (६० वर्ष) भूतपूर्व अध्यक्ष नगरपालिका, कालपी दिनांक १६-१२-६२

हवेली काली

कालपी नगर के महमूद मुहल्ले में यह हवेली स्थित है । यह महमूदपुरा मुहल्ला कालपी के प्राचीन ५२ मुहल्लों में से एक है।(१) यह हवेली अब वर्तमान में इमामबाड़ा के रूप में उपयोग में लाई जा रही है ।

इतिहास-

यह काली हवेली नसीरूद्दीन बल्द अहमद बख्स के नाम नगर पालिका कालपी के कागजातों में दर्ज है।(२) यह हवेली शहीदों की हवेली भी कहलाती है । डा०सैय्यद रौनक अली हाशमी के अनुसार मीर कादिर अली बरजोरसिंह मगरौल तथा काजी रौशन अली हमीरपुर आदि सन १८५७ ई० में नानासाहब पेशवा की ओर से प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में अंग्रेजों के खिलाफ लड़े थे जिसके कारण इन सबको काला पानी की सजा हुयी थी ।मीरकादिर अली इस हवेली के मुखिया थे अतः उनकी सजा के बाद इस हवेली को बागी हवेली करार दे दिया गया और देशभक्तों ने हवेली को शहीदों की हवेली नाम दिया।(३)

इस हवेली को आधी हवेली के नाम से भी जाना जाता है । ऐसी लोकोक्ति है कि इस हवेली का काम होते होते रूक गया था जिससे इसका निर्माण पूर्ण न हो सका। आज भी छत के ऊपर चूने से भरे उल्टे तसलों के निशानात् मौजूद है जो इसके अधूरे कार्य करने का प्रमाण है । शायद इसी कारण इसे आधी हबेली के नाम से ख्याति मिली है ।

इस हवेली में इमाम बाड़ा जैसी जगह है जहां पर अलम आदि रखे जाते हैं। आज भी काली हवेली के अलम उठाये जाते है ।

वास्तु शिल्प -

इस काली हवेली के जो भग्नावशेष है उनको देखने से यह ज्ञात होता है कि यह हवेली अंग्रेजी के अक्षर एल के आकार में बनी है । सम्पूर्ण हवेली लगभग १०० फीटके क्षेत्र में बनी है । हवेली के पीछे की दीवार लम्बी व ऊची है जिसमें अलग अलग कमरे है । प्रत्येक पंक्तिमें कई कमरे अंकित है। आले की दो- दो पक्तियाँ दृष्टव्य है। आले का अंकन विशेष प्रकार का है । एक कमरे में पाँच बड़े आले है । उनके बगल में दो छोटे - छोटे आले है जो कि डेढ फुट गहरे है । कमरे की छत गोल डाट न होकर पक्की सीधी है । उसको पतली ईटों व चूना के गारे से बनाया गया है जिसकी मोटाई लगभग डेढ फुट है । पूरी हबेली की दीवारे पत्थर तथा चूने की बनी है । दीवारे ढाई फुट चौड़ी है। भीतरी कमरे के बाद बाहर ऊपरी छत से ढका बरान्डा है जोकि

बाहर की ओर १२ पहलुओं के खम्भों पर आधारित है। यह हवेली कभी चार मंजिल की रही होगी। ४ मंजिल अवशेष अभी दृष्टव्य है। प्रत्येक मंजिल में पहुँचने के लिए सीढ़ी की व्यवस्था थी।
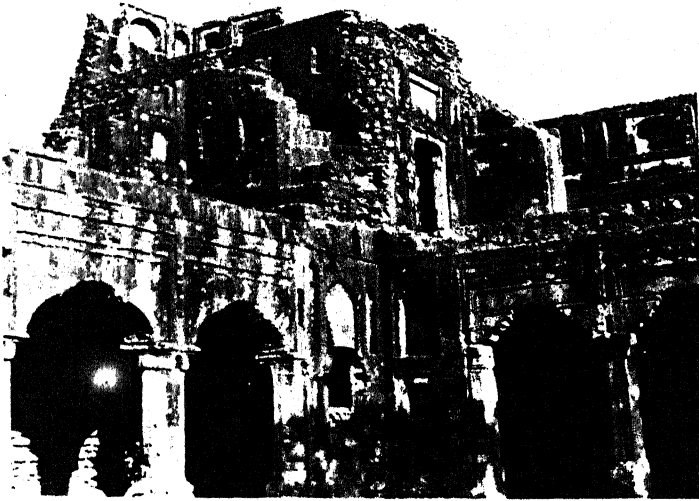
इस हवेली में नक्कासीदार लाल पत्थरों का बहुतायत में उपयोग हुआ है। इस हवेली में एल की छोटी लाईन की दशा में दीवाने आम रहा होगा। जिसपर लाल बलुआ पत्थर से ही तीन बड़े दरवाजे मेहराबदार बने हैं। इन मेहराबों में उत्कृष्ट कलात्मक पच्चीकारी देखी जा सकती है। बेलबूटे से अलंकृत यह नक्कासी बड़ी सुन्दर प्रतीत होती है। इस नक्कासी में कमल के फूलों का अत्यन्त सुन्दर उपयोग हुआ है। मेहराब के अन्दर भी बेलबूटों की अत्यधिक सुन्दर कारीगरी है जोकि देखते ही बनती है। पत्थर को आपस में लोहे की क्लिप द्वारा जोड़ा गया है। पूरी हवेली में पानी के निकास की सुन्दर व्यवस्था है। अतः यह हवेली बातानुकूलित रही होगी जिसके लिए पूरी इमारत में तमाम रोशनदान बने है
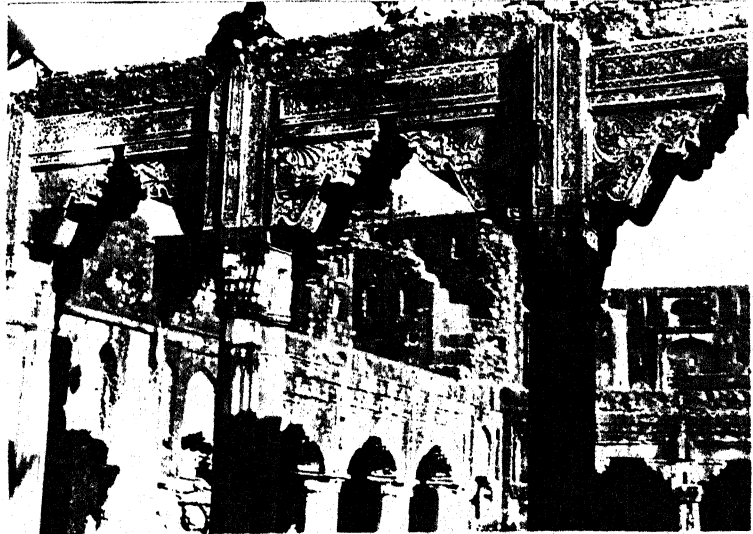
दीवाने आम की छत पर निसान अस्पष्ट है। इससे यह ज्ञात होता हैकि उसके ऊपर छत नहीं बन पाई बाकी पूरी हवेली में छत बनी हुई है। कुछ स्थान पर छत के ऊपर पुनः लाल बलुआ पत्थर के बेलबूट युक्त स्तम्भों पर आधारित मेहराब युक्त द्वार बने है। हवेली की वास्तुशिल्प देखने से यह ज्ञात होता है कि हवेली मुस्लिम स्थापत्य के अनुरूप नहीं

बनी है । इसमें पत्थर से की गई नक्कासी बेलबूटे एवं कमलपुष्पों का अंकन विशेष रूप से इस बात को स्पष्ट करता है कि इस हवेली का निर्माण हिन्दू स्थापत्य के अनुकूल हुआ होगा।

सन्दर्भ-सूची

१- कालपी महात्म - लें० रूपकिशोर टण्डन पृष्ठ सं० २७

२- बन्दोबस्त वर्ष १६०२ -०३ नगर पालिका कालपी

३- व्यक्तिगत साक्षात्कार - डा० सैय्यद रौनक अली हाशमी (आयु ६५ वर्ष) दिनांक १८-५-६२

पंचम अध्याय

मन्दिर वास्तु कला

भारत में प्राचीन काल से धार्मिक स्थलों को पवित्रमानने और उस स्थल पर स्थित मन्दिर के ध्वस्त हो जाने पर नया मन्दिर वही फिर से वनाने का प्रचलन रहा है। भारत एक कृषि प्रधान देश है । यहाँ पर बस्तियों , आवासीय भवनों, तथा धार्मिक भवनों में मार्ग अथवा द्वार में दिग्विन्यास ऊष्मा और प्रकाश के स्रोत सूर्य अथवा चन्द्रमा की उपासना से सम्बद्ध रहा है ।(१)

इन भवनों के निर्माण का स्थान तथा भूमि के चयन पर भारतीय वास्तु शिल्पियों द्वारा विशेष ध्यान दिया जाता था । "मानसार" में प्रकार की भूमि का उल्लेख आता है । जागंल, अनूप और साधारण । जागंल भूमि सबसे निष्कृट कोटि और बस्ती के लिये अनुपयुक्त भूमि है। यह या तो रेगिस्तान होता है जिसके आसपास में पानी का स्रोत नही होता है तथा वनस्पतियों के नाम पर कुछ झाड़ झखांङ ही होते है एवं हिसंक जानवर तथा पक्षियों से आक्रान्त दुंर्गम वनों और दलदलों वाली भूमि होती है । अनूप वह भूमि है जिस पर पर्याप्त वनस्पति आच्छादन होता है और जो खेती के लिये उपयुक्त होती है । साधारण मिली जुली किस्म की भूमि होती है । वास्तुकार , बस्ती के दिग्विन्यास पर अधिकतर चलने वाली पश्चिमी हवाओं को हमेशा ध्यान में रखते थे और जल का स्रोत नगर में पश्चिम की ओर रखने की अनुसंशा करते है ताकि वायु में शीतलता और अद्रता बनी रहे । (2) धार्मिक भवनो में अथवा मन्दिर के निर्माण की दृष्टि से मंध्यकालका अपना विशिष्ट महत्व है । इस देश में मन्दिरों के विभिन्न प्रकार है । भारत जैसे विस्तृत भूखण्ड में उसकी अपार जनसंख्या के बीच विविध मतमतान्ताओं के कारण प्रायः १५०० वर्ष के लम्बे कालक्रम में कला का विभिन्न शैलियों में बँट जाना स्वाभाविक है । इस दीर्घ काल में प्रधान कला की अश्वत्थ से अनेक शाखायें फूटी । देश और कला , सम्प्रदाय और मत, सुरुचि और अभिप्राय की आवश्यकता पर उसमें विविधता आयी । उसकी विविध शैली का विभाजन हुआ । मन्दिरों की साधारणतया तीन शैलियाँ है । नागर, वेसर , और द्रविड । इसके अतिरिक्त भी कुछ नाम स्थापत्य सम्बन्धी प्राचीन ग्रन्थों में आये है । जिसमें लतिन , साधार, भूमि, नागर, पुष्पक, विमान आदि । इसमें से अधिकतर यातो इन तीनों प्रधान शैली के प्रदेय है और नाम की दृष्टि से गौड़ है । इनमें नागर और द्रविण नाम यथावत व्यवहार में आयें पर बेसर में मिश्र , मिश्रक वाराट आदि पर्याय भी शास्त्रों में प्रयुक्त हुये है । वे उस शैली के स्वभाव और देश का संकेत कराते है ।(3)

इस जालौन जनपद में द्राविण तथा बेसर शैली के मन्दिरों का सर्वथा अभाव है। इस क्षेत्र में जो मन्दिर की शैली आम तौर पर प्रचलित है वह नागर शैली ही है। नागर शब्द नगर से बना है। जिसमे उसका पुर से सम्बन्धित होना स्वाभाविक है। भारतीय वास्तुशास्त्र में मन्दिर की उपमा मानव शरीर से की गई है। मध्यकाल में अधिकतर मन्दिर पंचायतन शैली के है। जिसमें प्रधान विमान केन्द्रीयमन्दिर के अतिरिक्त चार कोने में चार और देवालय होते है। जो प्रधान मन्दिर में ढके बरान्दे से जुड़े रहते है। इसके आगे मण्डप स्थित होता है और ऊपर शिखर तक आमलक। इसके मध्य में प्रधान मन्दिर का शिखर उतुम होता है। (४)

भूमितल से लेकर ऊपर शिखिर तक मन्दिर में जिन मुख्य अंगो का वर्णन शास्त्रों में मिलता है। वह इस प्रकार है।

1- **अधिष्टान या चौकी** - इस पर सज्ञापट्टी अंलकरण रुप से रहती है। इसे बसन्तपटिका भी कहा जाता है।

2 - **वेदमंत्र** - यह अधिष्ठान के ठीक ऊपर का गोल चौकोर अंग है। यह प्राचीन यज्ञ वेदियों से उद्‌भूत है।

3 - **अन्तर पत्रः** - वेदमंत्र के ऊपर की कल्पवल्ली या पत्रावली पाटिका।

4 - **जंगा** - मन्दिर का मध्यवर्ती धारण स्थल

5 - **वरंडिकाः-** मन्दिर में पुरी (बरान्दा)

6 - **शुकनासिक** - मन्दिर के ऊपर की वहिनसुता। इसका कारण तोते की नाक के तरह होने के कारण यह नाम पड़ा

7 - **कंठ या ग्रीवा** - शिखर के ठीक नीचे का भाग

8 - **शिखर या शीर्षास्थल** - शिखर में खरूजिन नामक आमलक होता था। धीरे- धीरे गोल आमलक से लम्बोतर रुप धारण किया और अंत में इससे शिखिर का रुप बना। मन्दिर की वास्तु से ये अष्टांग देश व्यापी बन गये। इतना ही नही हिन्दचीन, हिन्देशिया, नेपाल, तिब्बत तथा मध्यएशिया में भी उसका प्रसार हुआ। मन्दिर के द्वार मुख्य या प्रवेश द्वार कों गंगा यमुना, धटपल्लव, हंस, कीर्तिमुख आदि अंलकरण से सजाया जाता था।

आकृतियों के आधार पर मध्यकालीन मन्दिर के विभिन्न नाम है। उनकी पंचायतन में पूर्ण भद्र पोडशभद्र आदि संज्ञा भी दी गयी। (५)

इन्ही सब आधारो पर इस जनपद जालौन में मिल रहे मन्दिर तथा उनका ऐतिहासिक मूल्यांकन करने का उद्धम आगे किया गया है।

संदर्भ-सूची -

१- भारत के नगर -	अ० कोरोत्स्काया -	पृष्ठ ६६
२- ,,	,,	पृष्ठ ६७,७७
३- भारतीय कला की भूमिका -	भगवतशरण उपाध्याय	पृष्ठ ५,६
४- भारतीय कला का इतिहास -	भगवतशरण उपाध्याय	पृष्ठ १४०
५- भारतीय कला -	प्रो०के०डी०बाजपेयी	पृष्ठ ४२,४३

धार्मिक भवनों की स्थिति दर्शाता मानचित्र- कालपी नगर
य मु ना
कालपी का किला
पातालेश्वर मन्दिर
व्यास क्षेत्र
गोपाल जी मन्दिर
मदरसा मदार साहब
दरवाजा
गणेश मन्दिर
बड़ा स्थान
पहूलाल मन्दिर
बटाऊ लाल मन्दिर
पोस्ट आफिस
लक्ष्मीनारायण मन्दिर
चौरासी गुम्बद
आलमपुर ग्राम
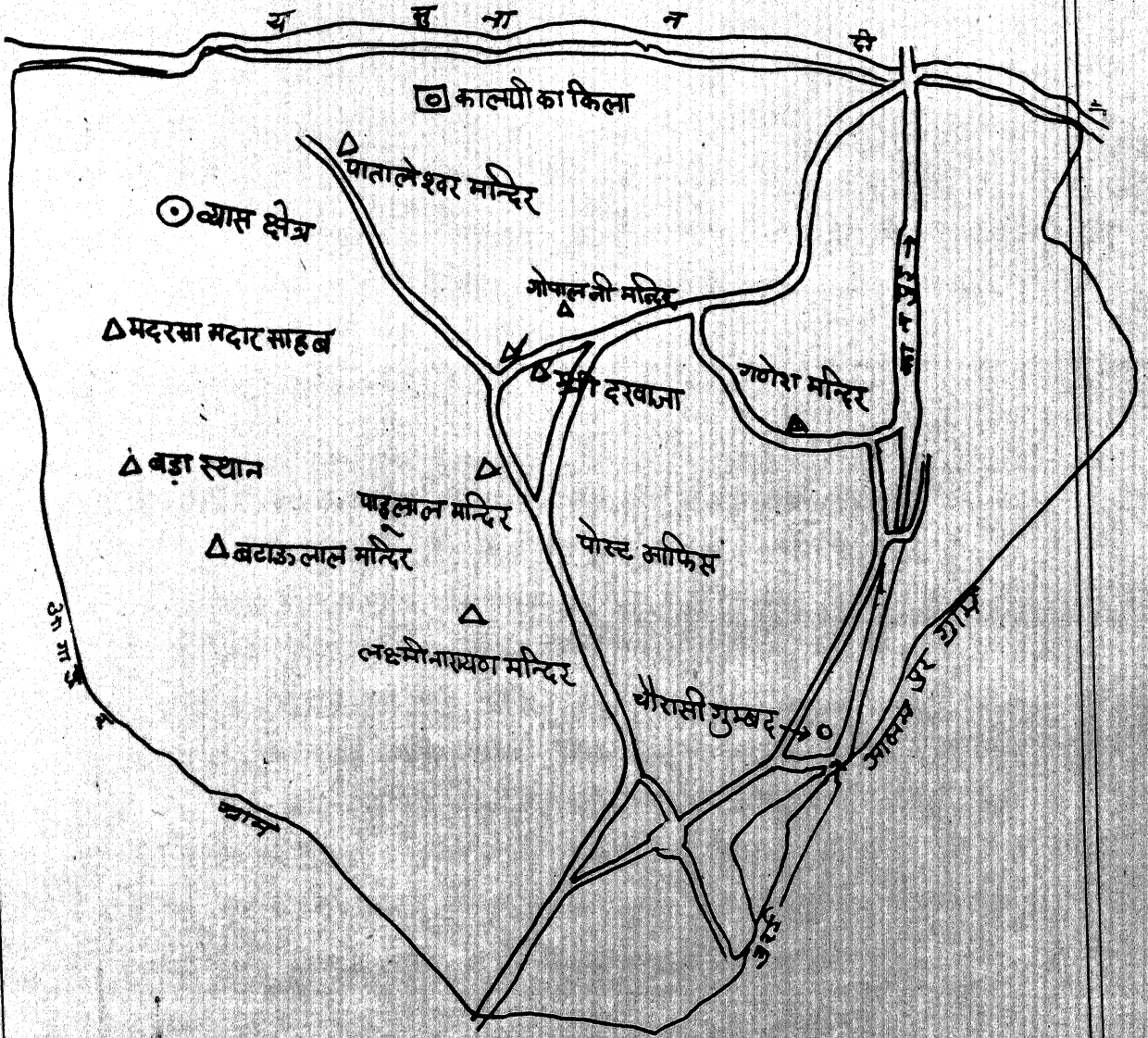
गुरू का इटौरा (रोपण गुरू का मंदिर व तड़ाग)

जालौन जनपद की कालपी तहसील में बसे एक ग्राम का नाम है "गुरू का इटौरा"।

यह ग्राम २६° २' उत्तर तथा ७६° ४३' पूर्व में स्थित है । इसका कुल क्षेत्र २२८६ एकड़ है और यह ग्राम कालपी से दक्षिण की ओर ८ मील तथा उरई से उत्तर पूर्व की ओर १६ मील की दूरी पर बसा हुआ है।(१)

नाम की सापेक्षता -

'गुरू का इटौरा ' नाम स्वतः यह इंगित करता है वह इटौरा जो गुरू का स्थान हो अर्थात् जहाँ गुरू का स्थान हो वह इटौरा । ब्रहमाण्ड पुराण के अनुसार -

"स्वर्गापवर्ग फलद पुत्रं पौत्र विवर्द्धनम ।
ततोऽविदूरे समहत्क्षेत्रं देवगुरोर्महत् ॥"

अर्थात् स्वर्ग तथा मोक्ष का देने वाला और पुत्र तथा प्रपौत्रों का बढ़ाने वाला है । वहाँ से पास ही देवगुरू (श्री ब्रहस्पति जी) का एक बहुत बड़ा क्षेत्र है ।

यह क्षेत्र ही इटौरा है क्योंकि इसी पुराण में आगे वर्णन मिलता है -

"इटौराख्यं महापुण्यं भुक्ति मुक्ति प्रदायकम् ।
इस्त्रयाणां सुसंग्राही श्रैतका दशबोधकः ॥
चतुर्दश महाविद्या उदरे यस्य संस्थिताः ।
तेनांम त्रिदशाचार्य स्तन्नामाख्याति भागतः ॥"

अस्तु वह महा पवित्र क्षेत्र इटौरा नाम से प्रसिद्ध भोग तथा मुक्ति का देने वाला है। 'इ' का अर्थ है ३ को इकट्ठा करने वाला और ८-११ का बोधक है। अर्थात् ११ और ३ (१४) विद्यायें इनके पेट में स्थित हैं और इसी से देवगुरू ब्रहस्पति इस (इटौरा) नाम से प्रसिद्ध हुए।(२)

ब्रहस्पति अगिंरस के पुत्र थे तथा देवताओं के गुरू माने जाते हैं(३)और यह इटौरा उनका स्थान होने के कारण 'गुरू का इटौरा' कहलाता है ।

इस गुरू का इटौरा' ग्राम को अकबरपुर इटौरा के नाम से भी जाना जाता है।(४)

इटौरा, ढौंडिया खेरे के राजकुल में उत्पन्न रोपण गुरू की कार्यस्थली थी जिससे प्रभावित होकर तत्कालीन भारत के मुगल बादशाह अकबर ने अपने नाम की कीर्ति हेतु ग्राम बसाया जिससे यह ग्राम अकबरपुर इटौरा के नाम से विख्यात हुआ।(५)

इतिहास -

यह गुरू का इटौरा अत्यन्त प्राचीन स्थान है । ईसा से लगभग १५०० वर्ष पूर्व के समय को वैदिक काल के रूप में इतिहासकार मानते हैं। (६) इसी वैदिक काल में पुराणों की रचना वैदिक पौराणिककाल का बोध कराता है । ब्रहमाण्ड पुराण में 'इटौरा' का वर्णन निम्नानुसार मिलता है ।

"इटोराख्यं महापुण्यं भुक्ति मुक्ति प्रदायकम् "

अर्थात महापुण्यं क्षेत्र भोग तथा मुक्ति का देने बाला , इटौरा नाम से प्रसिद्ध है। (७) ब्रहमाण्ड पुराणानुसार यह क्षेत्र देवताओं के गुरु ब्रहस्पति का ब्रहस्पति ने ब्रहमा के बर्षो में सैकडों वर्षो तक तप किया था । यहाँ पर गुरु ब्रहस्पति का तडाग महापुण्य देने वाला है । जिसके स्नान मात्र से ही सभी पाप नष्ट हो जाते है । (८)

इस इटौरा ग्राम का अस्तित्व पौराणिक काल में था । यह ब्रहमाण्ड पुराण से स्पष्ट होता है ।

ईसा पूर्व की छठी शताव्दी में हुये धार्मिक परिवर्तनों के कारण इस युग को धार्मिक क्रान्ति युग एवं बौद्ध काल के रुप में जाना जाता है । (६) इस काल में धार्मिक उत्सव एवं क्रिया कलाप उत्साह के साथ सम्पन्न होते थे । अतः प्राचीन आस्थाओं को सम्बल मिलाऔर गुरु के इटौरा में यथाविधि गुरु का महात्म बना रहा ।

ईसा से ३२७ वर्ष पूर्व सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया । (१०) परन्तु यह क्षेत्र उसके आक्रमण के प्रभाव से मुक्त रहा । ईसा पश्चात् प्रथम शताब्दी से तृतीय शताब्दी तक यौधेयों का कार्यकाल रहा और उसके बाद सन ३०० से सन ५४३ तक गुप्त शासकों का इस देश पर शासन रहा । गुप्तों के शासन से पूर्व विदेशी जातियों जैसे यवन , कुषाण , शक आदि भारत में आई परन्तु यह क्षेत्र इन सब जातियों के सांस्कृतिक प्रभाव से अछूता रहा और गुप्त काल तक इस क्षेत्र की सांस्कृतिक गतिविधियों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नही पड़ा।

सन ५४३से ५६५ तक हूणों तथा उसके पश्चात ६ वी शताब्दी तक विभिन्न स्थानीय राजाओं का इस क्षेत्र पर अधिपत्य रहा । ६ वीं शताब्दी से १३ वी शताब्दी तक चन्देलों का शासन काल इस क्षेत्र पर रहा । ये चन्देल धर्मभीरु थे इसलिये इनके शासन काल में धार्मिक कार्यों की बढोत्तरी हुयी व धार्मिक आस्थाओं को सम्बल मिला । (११) वर्ष ई० सन १२०६ से १२६० तक गुलामवंश का शासन इस देश पर रहा । सन १२६० से १३२० ई० तक खिल्जियां ने व सन १३२० से १४१३ ई० तक तुगलक वंश, सन १४१४ से १४५० तक सैय्यद वंश व सन १४५० से १५२६ ई० तक दिल्ली की गद्दी पर लोधियों शासन रहा (१२)

इन सबके शासन काल में यह गुरु का इटौरा सांस्कृतिक एवं वैचारिक रुप से अप्रभावित रहा और यहाँ पर सांस्कृतिक एवं धार्मिक कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न होते रहे।

सन १५५६ में मुगल शासक अकबर ने जब दिल्ली से इस देश की राजसत्ता सम्हाली उस समय इस स्थान पर रोपण गुरु का आगमन हो चुका था और चूंकि रोपण गुरु तमाम चमत्कारिक अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न थे इस कारण उनकी चर्चा सर्वज्ञ फैल रही थी। रोपण गुरु की अलौकिक शक्तियों की चर्चा बादशाह अकबर ने भी सुनी और उन्हे अपने दरवार में वुलवाया। रोपण गुरु स्वयं तो अकबर के दरबार में नहीं गये परन्तु उन्होन्ने शाही हुक्म को नजरन्दाज भी नहीं किया और अपने पुत्र मण्डन को अपनी अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न करके अकबर के दरबार में भेजा। जब मण्डन अकबर के दरबार में उपस्थित हुये तब अकबर ने उनकी अलौकिक शक्तियों की परीक्षा लेने की दृष्टि से एक गर्भवती घोड़ी मंगवाईऔरपूछा कि यह घोड़ी किस रंग का बच्चा जनेगी। मण्डन ने उसका जबाब दिया और कहा कि भूरे रंग का बच्चा जनेगी। इस पर उस घोड़ी का पेट खोल कर देखा गया और पाया कि बच्चे का रंग भूरा ही था। इसी प्रकार बादशाह अकबर ने एक दूसरी परीक्षा लेने के आशय से एक मटकी में काला सर्प बन्द करके दरबार में मंगवाया। इस पर मण्डन ने उस मटकी को लेकर अपने हाथ से सभी दरबारियों को उस मटकी के अन्दर से प्रसाद निकालकर वितरित किया और अकबर को प्रसाद नहीं दिया। अकबर द्वारा प्रसाद माँगे जाने पर मटकी उनके सम्मुख रखदी और कहा कि इसमें वही है जो तुमने मँगवाया था।इससे अकबर प्रभावित हुआ और उसने मण्डन के आगे अपना सिर झुका दिया और इटौरा के पास अपने नाम से एक ग्राम बसाया जो कि अकबरपुरइटौरा नाम से विख्यात हुआ।(१३)

श्री रोपण गुरू का जीवन परिचय -

श्रीरोपण गुरू का जन्म डौडियाखेरे के राजकुल में संवत १५४०में हुआ था जो कि उन्नाव जनपद में स्थित है। भविष्य खण्ड ४ के अध्याय १८ श्लोक १८ में रोपण गुरू के विषय में इस प्रकार वर्णित है -

इत्युक्त्वा भगवांजावो देव महात्म्य मुत्तमम् ।
स्वनखात्स्वांशमुत्पाद्य ब्रम्हयो निर्वभूवह
इष्ट का नगरी रम्या गुरूदत्तस्य वैसुतः
रोपणो नाम विख्यातो ब्रहम मार्ग प्रदर्शकः
सूत्र ग्रन्थ कृतां मालां तिलकं जल निर्मतम्
वासुदेवेति तन्मंत्र कलौ कृत्वा जने जने ॥

गुरू ब्रहस्पति जी ऐसा देवताओं से कहकर अपने अंश करके ब्रहम्योनि को प्राप्त भये और इष्टकापुरी में रोपण गुरू के नाम से प्रख्यात हुए और सूर्यग्रन्थ आदि ब्रहम् मार्ग के दर्शक हुए (१४)

बाल्यकाल में ही श्रीरोपण की आध्यात्मिक प्रवृत्ति थी । इसकारण राज्य छोड़कर तप करने हेतु कालिन्दी के तट पर पहुँच गये और वहाँ से वापिसी पर उस स्थान पर ठहर गये जहाँ भगवान दत्तात्रेय ने तपस्या की थी। निश्चित रुप से वह स्थान सिद्ध क्षेत्र था। उस सिद्ध क्षेत्र में श्री रोपण ने स्वयं समाधि लगाई और समाधि के पश्चात जब नेत्र खोले तब सामने एक ब्रह्मचारी को खड़ा पाया । उस ब्रह्मचारी ने श्री रोपण से जल की माँग की । रोपण जब जल की व्यवस्था करके आये तब उस ब्रह्मचारी ने रोपण से पूछा कि क्या तुम्हारा कोई गुरु है ? रोपण ने नकारात्मक उत्तर देते हुये उस ब्रह्मचारी को ही अपना गुरु बनाने की बात कही । इस पर ब्रह्मचारी ने रोपण की प्रार्थना स्वीकार करते हुये उन्हे गुरु मन्त्र से दीक्षित किया जिससे रोपण के अन्तर में ज्ञान का उदय हुआ और उन्होने उस गुरु ब्रह्मचारी को बारम्बार प्रणाम किया तथा ब्रह्मचारी ने रोपण द्वारा लाये गये जल से अपनी प्यास बुझायी । फिर ब्रह्मचारी का रुप धारण करने बाले भगवान विष्णु ने अपना लावण्य रुप प्रगट करके रोपण से वरदान माँगने हेतु कहा तब रोपण ने यह बरदान माँगा कि इस क्षेत्र को समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो और भगवान विष्णु तथास्तु कह कर अर्न्तध्यान हो गये । (१५) उपयुक्त वर्णित सम्पूर्ण प्रकरण निम्नानुसार दोहे चौपाई के रुप में मिलता है।
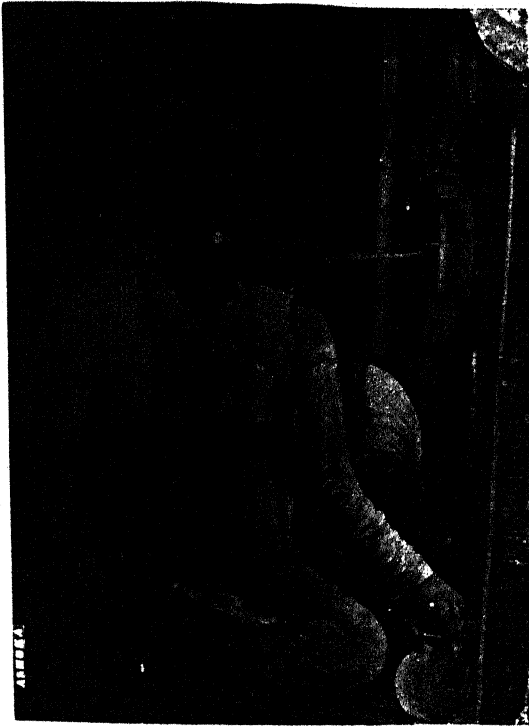
रोपण नाम राज कुल आही, बसै ड़ौडिया खेरे माही

राज छोड़कर तपै सिधाये, सुरगुरु भूमि निकट तब आये

कानन दीख तहाँ अति पावन, है तप भूमि अधिक मनभावन

निसदिन हरि दर्शन की आशा, राजेपुर में कीन्हो बासा

बहुत वर्ष बीते यह भाँती, जात न जानै दिन औ राती

एक बार भई अस मन माही, रवि तनया के दर्शन जाहीं
पहुचे ऊखल कालहिं जाई, मन में सुमिरत् कुअँर कन्हाई
प्राप्त भये कालिन्दी तीरा, मज्जन कीन गई तन पीरा
आसन बैठ ध्यान हरि कीन्हा, रुप चर्तुभुज़ चित धरि लीन्हा
प्रेम मग्न तन दशा भुलानी, सुख संसार स्वप्नवत जानी
नित्यनेम करि विविध विधि, निज आश्रम मग लीन ।
सिद्ध क्षेत्र बीचहि लख्यो , पुनि प्रसन्नमन कीन ॥
शुद्ध नीर अति सुभग तड़ागा, जिहि मज्जन तन पातक भागा
रोपण सिद्ध क्षेत्र अस जानी, सप्त ऋषिन की भूमि पिछानी
पुनि सोई करन लगे हरि ध्याना, भागे काम क्रोध मद माना
प्रभु तहाँ विप्र रुप धरि आये, रोपण से अस बचन सुनाये
हमको तृषा लागि अति भारी, शीघ्र पान करवाबो बारी
तब रोपण अस सुनि द्विज बैना, ध्यान छोड़ खोले तब नैयना
बोले तब में ल्यावो नीरा, पान करौ जावै तब पीरा
रोपण दियो ल्याय जल जबही, बोले बिप्र हरी हँस तबही
गुरु कीन्ह तुम है की नाही, सत्य बचन बोलो मों पाही
सत्य कहौ मैं गुरु नहि कीन्हा, नाम निरञ्जन चित धरि लीन्हा
द्विज कह गुरु बिन तरै न कोई, शिव अज नारद सम जो होई
तुम गुरु बिन जल कैसे पीवे, हाय प्राण मम कैसे जीवै ।
सिद्ध देख तब निकट जु आये, दैव योग सो निगुरा पाये ॥
विप्र हरी जब यहि विधि कहेऊ, रोपण को तब हृदय दहेऊ
करि प्रणाम बोले मृदु बाता, जो अस ज्ञान दीन मुहि दाता
अब हमको गुरु मन्त्र जो दीजे, भवसागर ते अभय करीजे
मम जल जाँच तृषित तुम जाई, यही उचित यह कारज काई
विप्र कहा बैठो ढिग आई, देहु तुम्हे प्रभु नाम सुनाई
अन्तरगत तब भा उजियारा, रोपण जानो सिरजन हारा
पूरन प्रीत जानि यदुराई, प्रगट भये तब कुअँर कन्हाई
पुनि हरि कहा माँग बर लेहू, रोपण कहा निज भक्तिहि देहू
रोपण गुरु तब नाम प्रकाशा, निरंजन की कर पूरन आशा ।(१६)

जब रोपण गुरु को ब्रहम् ज्ञान प्राप्त हो गया तब उनकी कीर्ति चारों ओर फैलने लगी और यह कीर्ति दिल्ली के तख्त पर बैठे अकबर ने भी सुनी । अकबर ने श्री रोपण गुरु की अलौकिक शक्तियों से प्रभावित होकर एक मन्दिर तड़ाग का निर्माण का आदेश दिया तथा निकट ही अपने नाम से एक ग्राम बसाने की भी घोषणा की । इसके बाद से श्री रोपण की गुरु के रुप में सभी जगह मान्यता हो गई । संवत १६१८ में श्री रोपण गुरु ने गुरु पद की पदवी पाई । इस गुरु परम्परा में निम्नानुसार गुरु जनों ने गुरु कार्य का निर्वाह किया -

सं०	नाम	जन्म संवत	आयु	निर्वाण संवत
१-	श्री आदि गुरु रोपण जी	१५४०	१०८	१६१८
२-	" गुरू जानराय	१५६६	८४	१६५०
३-	" परशुराम	१५६१	८५	१६७६
४-	" रतिमान	१६११	८२	१६६३
५-	" जनार्दन	१६४३	७१	१७१४
६-	" भीमसेन	१६८२	६४	१७४६
७-	" यशकर्ण	१७१६	६८	१७८४
८-	" इन्द्रजीत	१७३८	६६	१८०४
९-	" चतुर्दास	१७७१	५३	१८२४
१०-	" कृष्णदास	१७८८	५०	१८३८
११-	" भावसिंह	१८१७	६०	१८७७
१२-	" जैलाल	१८३६	६७	१६३३
१३-	" शिवप्रसाद	१८८८	५६	१६४७
१४-	" बल्देवप्रसाद (१७)	१६१७		
१५-	" यदुनाथ सिंह			
१६-	" मुन्ना (१८)			

यह गुरू परम्परा आज भी निर्बाध रूप से चल रही है । कार्तिक शुक्ल पंचमी से रोपण बाबा के सम्मान में एक मेला लगता है जो १५ दिनों तक चलता है तथा जिसमें दूर दूर से लोग आते हैं । श्रीरोपण गुरू द्वारा निरंजंनी नाम का एक अलग पंथ चलाया गया। (१६)

ग्राम गुरू के इटौरा में दो दर्शनीय स्थल है ।

१- रोपण गुरू का मंदिर

२- तड़ाग

यह दोनों स्थान एक दूसरे के निकट स्थित हैं ।

१- श्री रोपण गुरू का मंदिर -

यह मंदिर कालपी नगर के दक्षिण में यमुना नदी से १० मील की दूरी पर स्थित है। (२०)

इस मंदिर का मुख पूर्व की ओर व तड़ाग के पश्चिमी किनारे पर यह स्थित है । यह मंदिर चार मंजिलों का है तथा इसका निर्माण जहाँगीर के शासन काल में हुआ।

मंदिर का इतिहास -

श्रीरोपण गुरू की अलौकिक आध्यात्मिक शक्तियों से प्रभावित होकर अकबर बादशाह ने इटौरा के पास ही अपने नाम से एक ग्राम बसाया तथा श्रीरोपण गुरू के सम्मान में एक चौमंजिला भव्य मंदिर के निर्माण हेतु आदेश दिया । "प्रणाम-विलास " में वर्णित है-

सम्वत् सोरा सौ ऋषि नयना, क्रोधी माघं मास शुभ ऐना
पुष्य नक्षत्र चन्द्र शुभ बारा, तेहि दिन आज्ञा कीन्ह भुआरा
करौ धाम कर अब प्रारंभा, चहुँ दिशि शुभग लगावौ खम्बा
यह कह पुनि यक ग्राम बसावो, हमरे नाम प्रसिद्ध करावो। (२१)

अर्थात् सवंत १६७२ में माघ पुष्य नक्षत्र चन्द्रवार को इस मंदिर का निर्माण पूर्ण हुआ । इस मंदिर के निर्माण के विषय में प्रणाम विलास में प्राप्त वर्णन के अनुसार अकबर द्वारा करवाया गया परन्तु इस मंदिर में लगे शिलालेख के अनुसार इस मंदिर का निर्माण जहाँगीर द्वारा सम्पन्न हुआ ।

मंदिर का शिलालेख इस प्रकार है -

१- निरंजन सपेक्षणाद क्षेत्र मुनि बृत्तिना भूपाल वृन्द बधेन रामेणा-ब्देद आहितम् ।

२- नयन मुनि नृपेब्दे क्रोधन मासि माघे, सदन भकृत रामः पुष्य मेन्दौ च वारे । यवन अवन दक्षे श्री जहाँगीर संज्ञे जगति विशद की तौ कुर्वती शे सुराज्यम् ।

३- गंगाकूल सुमूल पूर्व वसति ग्रामोन्नतौरा [illegible] राजन्यो[illegible]जीन रोपा
णः पुनरतः श्रीजानि रामि प्रभु तरगा पति गुतो नुतो खिल जनैः
श्रीपरशुरामो गुरूश्चैत्य चारू चकार चोपल मयम् वैश्यों वदान्यों
मुवि ।
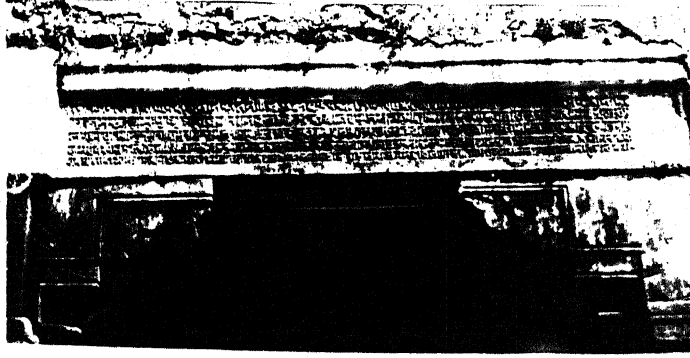
४- रामाश्चारू चकोर कोविद मतः मनं ददद्दोहि नाम् संताप विरूदन विनोद मनयत् सत्कैरवाणां कुलम् । पात्रा पात्र विवेक दान निरतः पीयूष पूर्ण सदा । श्रीभद्रोपाणि वश रत्न जलधो जातोद मुतश्चन्द्रमा : ।

५- समीपे श्री करीपुर्या ग्रामः सहावली तिच ततः शिला समानीता श्रीमतारति मानुना ।

यह शिलालेख मंदिर के दक्षिणी दरवाजे के ऊपर मेहराब के ऊपर स्थित पत्थर पर अंकित है।

मंदिर का वास्तुशिल्प -

तड़ाग के पश्चिमी तट पर स्थित पूर्वाभिमुख यह अत्यन्त मनोहारी चौ-मंजिला मंदिर है । इस मंदिर के पश्चिमी भाग में श्री रोपण गुरू सहित अन्य सभी पन्द्रह गुरूओं की समाधियाँ बनी हुयीं है । यह मंदिर तपस-माधि व विश्रामपूर्ण समाधि का अनुपम संगम स्थल है । इस मन्दिर में तपसमाधि का विशेष स्थान है। तपसमाधि एक चबूतरे के आकार की है। जिसके ऊपर एक मठिया निर्मित है । इस मठिया आकार में चन्दन का दो पल्लों का दरवाजा लगा हुआ है । इस दरवाजे से सात सीढ़ियाँ नीचे जाने पर सामने दीवाल पर एक बड़ा आलेनुमा स्थान

पर श्रीरोपण गुरू का काल्पनिक हस्त निर्मित चित्र रखा हुआ है। यह काल्पनिक चित्र मंदिर के पूर्वी स्तम्भ पर एक लाल पत्थर की शिला पर अंकित चित्र के आधार पर बनाया हुआ है। श्रद्धालुजन सीढ़ियों के सहारे नीचे तलघर में जाकर इसी स्थान पर दर्शन कर लाभान्वित होते है।

यह सम्पूर्ण तपसमाधि स्थल लाल पत्थर के चार खम्बों से घिरा है। प्रत्येक स्तम्भ चार स्तम्भों के संयोजन से बना है। ये चारों स्तम्भ ऊपरी हिस्से में जालीदार घन्टीनुमा बेल से अलंकृत पत्थरों से जुड़कर पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण चारों दिशाओं में चार अलंकृत मेहराबदार दरबाजों का निर्माण करते हैं। प्रत्येक स्तम्भ के ऊपरी अग्र कोने पर तोड़ा के स्थान पर एक सवार युक्त घोड़ा अंकित है। इस घोड़े के दोनों ओर दो दो सवार युक्त दो दो हाथी शांत मुद्रा में अंकित हैं। इन सबके ऊपर पत्थरों से जुड़ा हुआ पत्थर लगा है जो मेहराबदार दरबाजे का ऊपरी भाग का निर्माण करता है। यह मंदिर की आन्तरिक स्तम्भ पंक्ति है। इस पंक्ति के बाहर मध्य की स्तम्भ पंक्ति का निर्माण १२ स्तम्भों की सहायता से किया गया है जो कि आन्तिरिक चार स्तम्भों के वर्ग को वर्गाकार आवरण प्रदान करता है। इस मध्य वर्ग की प्रत्येक भुजा में चार चार स्तम्भ हैं। पूर्वी खम्बों की कतार में तोड़ा स्थान पर दोनों कोणीय स्तम्भों पर ऊपर की ओर बाहरी कोने पर एक एक हाथी तथा बीच के दक्षिणी स्तम्भ पर सवारयुक्त दो अश्व व उत्तरी बीच के स्तम्भों पर दो दो हाथी अंकित हैं। पश्चिमी चार स्तम्भों की पंक्ति मे तोड़ा स्थान पर दक्षिणी स्तम्भ पर एक सिंह व उत्तरी स्तम्भ पर एक सिंह व उत्तरी स्तम्भ पर एक हाथी अंकित है। बीच के दक्षिणी स्तम्भ पर दो सवार युक्त अश्व व उत्तरी स्तम्भ पर दो सवार युक्त हाथी अंकित हैं। उत्तरी व दक्षिणी पंक्ति के चारों स्तम्भों पर तोड़ा स्थान पर अंकन पूर्वी व पश्चिमी भुजा के स्तम्भों से भिन्न है। दक्षिणी पंक्ति के पूर्वी स्तम्भ पर तोड़ा स्थान पर एक हाथी व पश्चिमी स्तम्भ के तोड़ा स्थान पर एक सिंह अंकित है तथा बीच के दोनों स्तम्भों पर दो दो मोरों काएक एक जोड़ा अंकित है। उत्तरी स्तम्भों की पंक्ति में तोड़ा स्थान पर पश्चिमी स्तम्भ पर एक हाथी अंकित है शेष सभी स्तम्भों पर दक्षिणी पंक्ति के स्तम्भों की भाँति मोर व हाथी अंकित है। इस प्रकार से द्वितीय वर्ग में कुल बारह स्तम्भ हैं।

बाहरी व तृतीय वर्ग में कुल स्तम्भों की संख्या २० है। वर्ग की प्रत्येक भुजा में लगे सभी स्तम्भ लाल बलुआ पत्थर के बने हैं तथा ११/२-११/२फुट के वर्गाकार के हैं। इन सभी स्तम्भों से ही चार मंजिला यह मंदिर बना है। सबसे ऊपरी मंजिल अपूर्ण सी लगती है फिर भी उसके ऊपर कलश स्थापित है। मंदिर के वास्तुशिल्प के विषय में प्रणाम-विलास में वर्णन निम्नानुसार मिलता है -

करौ धाम कर अब प्रारम्भा, चहुँ दिशि शुभग लगावौ खम्बा

यह कहि पुनि यक ग्राम बसावो, हमरे नाम प्रसिद्ध करावौ
शासन यहि प्रकार नृप पाई, सुभग शिलायर लिये बुलाई ॥
गुरू आज्ञा लै नृप तब गयेऊ, मंदिर तहाँ बनत सो भयेऊ
चरि खंड तहँ सुभग बनाई, चहुँ दिशि खम्बा दिये लगाई
प्रतिमा बेल शिलिन में काढ़ी, शुक पिक चातक अहि मुक ठाढ़ी
तेहि ऊपर शुभ रच्यो बिताना, द्विज गण बैठि करहिं निज गाना
मलयागिरि कपाट तिन कीन्हें, शुभ्र गुफा के द्वार सो दीन्हे
छत्र सुभग सब ऊपर सोहे, देखि नरन के मन कहँ मोहे
चार द्वार चहुं दिशि को कीन्हे, मनहुँ विश्वकर्मा रचि दीन्हे
पुनि यक ग्राम बसाय सु दीन्हा, अकबरपुर तेहि नाम जु कीन्हा ॥(२२)

इस मंदिर की स्थापना का कार्य श्री परशुराम जी द्वारा एक वर्ष के अन्तराल में सम्पन्न हुआ । फिर दानशील वैश्य क्षत्रिय श्री रामजी ने इस मनोहर आयतन को प्रस्तरमय बनवाया। (२३)

इस मंदिर चैत्य हेतु श्री परशुराम जी के पुत्र श्री रतिभानु जी फतेहपुर सीकरी से ६ मील दूर स्थित भरतपुर स्टेट की रूपवास तहसील के सिंहावली नामक ग्राम से यमुना नदी के रास्ते नौकाओं से पत्थर कालपी लाये थे । वहीं से बैलगाड़ियों से यह पत्थर इटौरा लाया गया ।(२४)

यह ग्राम सोलहवीं शती में अकबर के शासन काल में बसाया गया तथा अकबरपुर में इस मन्दिर का निर्माण हुआ। (२५) यह मन्दिर अकबरकालीन प्रतीत होता है क्योंकि अकबर के समय की इमारतों में कलाकारी उच्च श्रेणी की होती थी व इस काल की इमारतें सुन्दर व सजीव होती थीं । उनकी सादगी के कारण उनमें जो निखार पैदा हुआ है वह अत्यन्त सुन्दर है । इस मंदिर की निर्माण शैली में सजावट की छाप स्पष्ट है । अकबर ने अपने समय में लाल पत्थर का उपयोग किया है जो उसे आसानी से उपलब्ध हो जाता था। (२६)

यह रोपण गुरू का मंदिर हिन्दू मुस्लिम वास्तु कला का एक अनुपम उदाहरण है । हिन्दू मुस्लिम वास्तुकला के सभी उपागों को यहं मंदिर पूरा करता है । इस मंदिर की नींव सुदृढ़ है । नीव के ऊपर वर्गाकार जो कक्ष का निर्माण है वह स्तम्भों की सहायता से किया गया है । स्तम्भ पत्थर से तैयार किये गये हैं और फिर उन्हें गढ़ कर सुन्दर बनाया गया है । इन पर बेलबूटों द्वारा सजावट की गई है । इस मंदिर का फर्श साफ सुथरा तथा चिकना है और अच्छे ढंग से बनाया गया है तथा उसमें मजबूती के साथ साथ सुन्दरता भी पैदा की गई है। (२७)

२- तड़ाग

श्रीरोपण गुरू के मंदिर के पूर्व में यह तड़ाग स्थित है इसी के पश्चिमी घाट पर श्रीरोपण गुरू का चौमंजिला मंदिर स्थित है ।

इतिहास-

यह तड़ाग अत्यन्त प्राचीन है । इसी तड़ाग को ब्रहस्पति जी का तड़ाग कहते हैं । ब्रहमाण्ड पुराणानुसार -

इटौराख्यं महापुण्यं मुक्ति मुक्ति प्रदायकम् । (२८)

अर्थात् वह महापवित्र क्षेत्र इटौरा नाम से प्रसिद्ध भोग तथा मुक्ति का देने वाला है । आगे इसी पुराण में वर्णन मिलता है कि -

भवेदत्त न संदेहो मुने ! सत्यं ब्रवीमिते ।
वृहस्पति स्तपस्तेये ब्रहमणः शरदां शतम् ॥

अर्थात् हे मुने ! इसमें तुम्हे सन्देह न हो, मैं तुमसे सत्य ही कहता हूं, यहां पर श्री बृहस्पति ने ब्रम्हा की १०० वर्ष तपस्या की ।

"एवं प्रभावः समुनि : क्षेत्र तस्य तथा विधम् ।
ब्रहस्पति सरस्तत्र दर्शनात्पापनाशनम् ॥"
"तत्रस्नात्वा विधानेन देवान पितृन समर्चयेत ।
दद्या द्दानानि विप्रेम्यस्तदा नन्त्याय कल्पते ॥"
"ब्रहस्पति सरस्नान महापातक नाशनम् ।
महा सम्पतकरं प्रोक्तं स्वर्ग मोक्ष फल प्रदय् ॥"

अस्तु वे मुनि तथा उनका क्षेत्र ऐसे प्रभाव वाला है । वहाँ पर श्री ब्रहस्पति का तालाब है जिसके दर्शन से पाप नष्ट हो जाते हैं । वहाँ पर स्नान करके विधि पूर्वक देवता और पितरों को पूजें तथा ब्राहमणों को दान दे जिससे वह कभी न नष्ट होने वाला हो जाता है। ब्रहस्पति के तालाब में स्नान करने से बड़े बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं तथा महासम्पत्ति व स्वग मोक्ष फल प्राप्त होता है । (२९)

पौराणिक काल से पूजित यह तड़ाग आज भी जनमानष में अपना विश्वास आस्था बनाये हुए अडिग है ।

यह तड़ाग काफी विशाल है ।इसके चारों ओर घाट बने हुए थे । आज इस तड़ाग के उत्तरी एवं पश्चिमी तटों पर ही घाट देखे जा सकते हैं । इस तड़ाग के मध्य में उजियार नाम के ब्रहम्ज्ञानी शिष्य का समाधि स्थान निर्मित है ।

महा भविष्य पुराण में उल्लिखित इष्टि की नगरी (वर्तमान इटौरा ग्राम) के मध्य में गुरू की ब्रहस्पति के तालाब का वर्णन है जो पापों को नष्ट करने वाला व मोक्ष का देने वाला है । वह यही तालाब है ।(३०)

वैसै तो यह तालाब काफी विस्तृत है परन्तु वर्तमान में जो भाग इटौरावासियों के उपयोग में आ रहा है वह लगभघ ४३५ फुट चौड़ा एवं ५२५ फुट लम्बा है। इसके आगे तालाब का पुन्छा नाम से जाना जाने वाला भाग अत्यन्त विस्तृत है ।

श्रीरोपण गुरू का मंदिर व तड़ाग से सम्बन्धित जनश्रुतियाँ -

१- इटौरा ग्राम के सभी हलवाई जब मिठाईयों की रानी "बताशफेनी " बनाते हैं तब उसकी चीनी की चाशनी बनाने के लिए इस ब्रहस्पति के तड़ाग का पानी ही प्रयोग करते हैं क्योंकि उन सबका अपना अनुभव है कि इटौरा ग्राम के किसी भी अन्य स्थान के जल से चाशनी में सफेदी नहीं आती है । चाशनी में सफेदी सिर्फ तड़ाग के जल से ही आती है।(१)

२- यह भी जनश्रुति है कि तड़ाग के पश्चिमी तट पर बने श्रीरोपण गुरू के चौमन्जिला मन्दिर का निर्माण गन्धर्वों द्वारा किया गया है । इटौरा ग्राम की किसी महिला द्वारा ब्रहम मुहर्त के धोखे में चक्की (अनाज पीसने वाली) चला देने के कारण गन्धर्व गण इस मंदिर की सबसे ऊपरी चतुर्थ मंजिल का निर्माण पूर्ण न कर सके और भाग गये । इसी कारण मंदिर की चतुर्थ मंजिल आज भी अपूर्णता का अहसास कराती है ।चक्की चलने की घटना उसी रात्रि की घटना है जिस रात्रि में गन्धर्व गण मंदिर का निर्माण कर रहे थे । यह मंदिर सिर्फ एक रात्रि में ही बना है।(२)

सन्दर्भ सूची

१- गजेटियर जालौन - डी० एल० ड्रेक ब्रोकमैन . पृष्ठ संख्या १५४

२- ब्रहमाण्ड पुराण - चतुर्थ अध्याय - श्लोक संख्या २६-२७-व २८

३- शब्दसागर हिन्दी - संपादक श्यामसुन्दर दास पृष्ठ संख्या २४६०

४- गजेटियर जालौन - डी०एल०ड्रेक ब्रोकमैन पृष्ठ संख्या १४६

५- प्रणाम विलास - पृष्ठ संख्या २५-२६

१. भारत का इतिहास — डा० ए० के० मित्तल — पृष्ठ संख्या [illegible]

१७- ब्रहमाण्ड पुराण - चतुर्थ अध्याय श्लोक संख्या २[illegible]

८- कालपी कीर्ति अंक - — पृष्ठ संख्या २८

९- भारत का इतिहास - — डा० ए० के०मित्तल — पृष्ठ सं०६०

१०- भारत का इतिहास - — डा० एस० के० पारिख व ए०सी० दहीभाते — पृष्ठ संख्या ६४

११- बुन्देलखण्ड दर्शन - — मोतीलाल त्रिपाठी अशान्त — पृष्ठ संख्यां ५६

१२- भारत का इतिहास - — डा० ए० के० मित्तल — पृष्ठ संख्या ४

१३- हस्तलिखित ग्रंथ प्रणाम विलास १९४०

१४- प्रणाम प्रदेशिका - — मंहत बल्देव प्रसाद - — पृष्ठ संख्या १६

१५- प्रणाम विलास - — पृष्ठ संख्या ६-७-८व६

१६- हस्तलिखित ग्रंथ - — प्रणाम विलास संवत १९४०

१७-१८- साक्षात्कार - व्यक्तिगत — श्री ओम प्रकाश पुरवारं आयु ५० दिनांक १८-६-६४

१९- गजेटियर जालौन - — डी०एल० ड्रेक ब्रोकमैन - — पृष्ठ संख्या १४५

२०- कालपी कीर्ति अंक - — मोतीलाल शर्मा - — पृष्ठ संख्या ४७

२१- प्रणाम विलास - — पृष्ठ संख्या २५

२२- प्रणाम विलास - — पृष्ठ संख्या २५-२६

२३- कलपी कीर्ति अंक — मोतीलाल शर्मा - — पृष्ठ संख्या ४८

२४- " — " — "

२५- दैनिक जागरण कानपुर - १ दिसम्बर १९९३ — पृष्ठ संख्या २

२६- हिन्दु मुस्लिम स्थापत्य कला शैली - एस०एम० असगर अलीकादरी - — पृष्ठ संख्या ८७

२७- " — " — " — पृष्ठ संख्या १९८ से२०१ तक

२८- ब्रहमाण्ड पुराण - चतुर्थ अध्याय श्लोक संख्या २७

[illegible]- कालपी महात्म - — पृष्ठ संख्या ६२-६३

३०- कालपी कीर्ति अंक — पृष्ठ संख्या ४८

जनश्रुतियाँ -

१-व्यक्तिगत साक्षात्कार - श्रीओमप्रकाश पुरवार (५० वर्ष) दिनांक १०-१-९४ विधुत विभाग उरई में कार्यरत

२- व्यक्तिगत साक्षात्कार - श्री रामनाथ शर्मा इटौरा दिनांक १-१-९४

परासन

जालौन जिंले की कालपी तहसील के अन्तर्गत जीवनदायिनी विन्ध्यगिरि पुत्री वेत्रवती (वेतवा) के तट पर २५° ५६° उत्तर तथा ७६° ४४° पूर्व पर बसे एक छोटे से ग्राम का नाम है परासन। (१)

परासन एवं इसके आसपास का क्षेत्र तपोनिष्ठ एवं पावन क्षेत्र है । इस पंचकोसीय क्षेत्र में परिक्रमा करके लोग पुण्य के भागीदार बनते हैं क्योंकि यह क्षेत्र मार्कण्डेय ऋषि, बाल्मीकि ऋषि, च्यवन ऋषि, कर्दम ऋषि, वशिष्ठ ऋषि व पाराशर ऋषि आदि का कर्म क्षेत्र था जो कि आज भी उनके कर्मों की पवित्र पुण्य सुगन्धि से सुवासित है । इस क्षेत्र में उपर्युक्त सभी ऋषियों के आश्रम थे ।(२)

नाम की सार्थकता -

पाराशर ऋषि यहाँ पर धार्मिक अनुष्ठान किया करते थे अतः बाद में उन्ही के नाम पर इस स्थान का नाम परासन पड़ा ।(३)

परासन गाँव जहाँ स्थापित है वहाँ पाराशर ऋषि का स्थान था । इसी कारण इस स्थान का नाम परासन पड़ा।(४) कालपी के समीप ही परासन नामक ग्राम में ऋषि पाराशर की तपस्थली रही है ।(५)

कालपी क्षेत्र के अन्तर्गत रोपणि गुरू आश्रम के दक्षिण की ओर परासन नामक स्थान में व्यास जी के पिता पाराशर ऋषि का आश्रम है।(६)

यह स्थल हरपालपुर से राठ होते हुए उरई रोड के पास पड़ता है । परासन ग्राम पाराशर ऋषि की तपस्या स्थली है जो चनौट (च्यवन ऋषि) के सामने बेतवा नदी के बायें किनारे पर स्थित है।(७)

बबीना से १० मील दक्षिण वेत्रवती नदी के उत्तरी तट पर यह स्थान है । यह पाराशर ऋषि की तपोभूमि है।(८)

अस्तु परासन वह स्थान है जहाँ पाराशर ऋषि का आश्रम था एवं वहाँ पर वे अपने धार्मिक अनुष्ठान आध्यात्मिक कर्म आदि सम्पन्न करते थे ।

पाराशर ऋषि परिचय - पाराशर ऋषि एक गोत्रकार ऋषि थे जो कि पुराणानुसार वशिष्ठ और शक्ति के पुत्र थे । यही वेद व्यास कृष्ण द्वैपायन के पिता थे।(९)

महाज्ञानी गोत्रकार महर्षि पाराशर व कैवर्तराज की पोष्यपुत्री महाभागा सत्यवती के गर्भ से यमुना जी के द्वीप में पाराशर नन्दन ने जन्म लिया था जो कि पाराशर्य और द्वैपायन नाम से प्रसिद्ध हुए।(१०)

बशिष्ठ जी राजा निमि के पुरोहित थे। उनके चारों ओर सदा यज्ञ होते रहते थे। एक बार यज्ञ कार्य सम्पादित कराने के पश्चात् महातेजस्वी वशिष्ठ जी विश्राम कर रहे थे उसी समय राजा निमि ने उनसे पुनः यज्ञ कार्य करवाने हेतु कहा। श्री वशिष्ठ जी ने थोड़ा विश्राम करने के पश्चात् पुनः यज्ञ कार्य सम्पादित कराने को कहा। इससे वशिष्ठ जी ने राजा निमि को विदेह होने का शाप दे दिया। राजा निमि चूँकि धार्मिक कार्य हेतु उद्यत थे और वशिष्ठ जी ने उसमें विध्न डाला अतः राजा निमि ने भी वशिष्ठ जी को विदेह होने का शाप दे दिया। ब्राहमण व राजा दोनों ही विदेह होकर ब्रहमा जी के पास गये। ब्रहमा जी ने राजा निमि को प्राणियों की पलकों में निवास करने हेतु स्थान दिया तथा वशिष्ठ जी से कहा कि तुम मित्रवरूण के पुत्र होगे। वहाँ भी तुम्हारा नाम वशिष्ठ ही होगा। इसी समय मित्र और वरूण बदरिकाश्रम में तपस्या में लीन थे। वसन्त ऋतु के समय उर्वशी वहाँ पुष्प चुनने आयी। उसे देखकर दोनों तपस्वियों का वीर्य स्खलित होकर मृगासन पर गिर गया। तब शाप के डर से उर्वशी ने उस वीर्य को जलपूर्ण मनोरम कलश में स्थापित कर दिया। उस कलश से वशिष्ठ और अगस्त्य नामक दो श्रेष्ठ ऋषिजन उत्पन्न हुए। तदन्तर वशिष्ठ ने देवर्षि नारद की बहन सुन्दरी अरून्धती से विवाह किया और उसके गर्भ से शक्ति नामक पुत्र को उत्पन्न किया। शक्ति के पुत्र पाराशर हुए। स्वयं भगवान विष्णु पाराशर के पुत्र रूप में द्वैपायन नाम से उत्पन्न हुए जिन्होंने इस लोक में भारत रूपी चन्द्रमा को प्रकाशित किया।

पराशर ऋषि की श्रेष्ठ वंश परम्परा में छैः प्रकार के पाराशरों का उल्लेख मिलता है।

१- गौर पाराशर - काण्डशय, वाहनप, जैहमप, भौमतापन एवं गोपालि ये पाँचों गौर पाराशर नाम से जाने जाते हैं।

२- **नील पाराशर** - प्रपोहय, वाहयमय, ख्यातेय कौतुजाति एवं हर्यश्व ये पाचों नील पाराशर नाम से विख्यात हैं ।

३- **कृष्ण पाराशर** - काष्णार्यिन, कपिमुख, काकेयस्थ जपाति और पुष्कर ये पाँचों पाराशर कृष्ण पाराशर के रूप में जाने जाते हैं ।

४- **श्वेत पाराशर** - श्राविष्ठायन, बालेय, स्वायष्ट उपय और इषीकहस्त । ये पाँचों श्वेत पाराशर हैं ।

५- **श्याम पाराशर** - बाटिक, बादरि, स्तम्ब, क्रोधनायन और क्षैमि ये पाचों श्याम पाराशर के रूप में प्रसिद्ध हैं ।

६- **धूम्र पाराशर** - खल्यायन, वार्ष्णायिन, तैलेय यूथप और तन्ति । इन पाचों पराशरों को धूम्र पाराशर जानना चाहिये । इन सभी पाराशरों के तीन प्रबर ऋषि माने गये हैं जो पाराशर, शक्ति और महातपस्वी वशिष्ठ के नाम से जाने जाते हैं । इन सभी पाराशरों में आपसी विवाह निषिद्ध है । इनके नामों के परिकीर्तन से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है। ऐसा वर्णन मत्स्य पुराण में मिलता है ।(११)

पाराशर ऋषि वेद व्यास के पिता थे । एक बार तीर्थ यात्रा के उद्देश्य से विचरने वाले पाराशर ऋषि ने यमुना के तट पर लव खेती एक सुन्दर कन्या को देखा तो वे उसके रूप पर मोहित हो गये और उस कन्या के साथ समागम करने की इच्छा से वातावरण में कुहरे की सृष्टि करके उसके साथ समागम किया जिससे पाराशरनन्दन वेद व्यास का जन्म हुआ । वह कन्या मत्स्यगन्धा थी जो पाराशर ऋषि के आशीर्वाद से योजनगन्धा हो गयी।(१२)

महर्षि पाराशर की कृपा से ही सत्यवती के गर्भ से विष्णु अंश से युक्त परमग्यानी वेदव्यास जी का यमुना तट पर जन्म हुआ।(१३)

भगवान व्यास - पाराशर ऋषि व महाभागा सत्यवती के गर्भ से यमुनाजी के द्वीप पर जन्मे थे।(१४)

भगवान वेदव्यास सत्रहवें अवतार में सत्यवती के गर्भ से पाराशर जी के द्वारा व्यास के रूप में अवतीर्ण हुए।(१५)

इस प्रकार से ज्ञात होता है कि पाराशर ऋषि वेदव्यास जी के पिता थे और एक गोत्रकार ऋषि भी थे । परासन ग्राम इन्हीं ऋपिवर की तपस्थली था ।

इस ग्राम में ऋषि पाराशर का एक मंदिर है एवं दो अन्य शंकरजी के मंदिर हैं।

पाराशर ऋषि मंदिर -

पाराशर ऋषि नाम से विख्यात पाराशर ऋषि मंदिर में पाराशर ऋषि की मूर्ति प्रतिष्ठित है। जो कि वेत्रवती के उत्तरी तट पर पीली मिट्टी की एक ऊँची पहाड़ी पर स्थित है। यह मंदिर वेत्रवती के तट से ५० फुट ऊपर स्थित है (१६)

वास्तुशिल्प - जिस टीले पर यह मंदिर स्थित है वह शंकु आकार का है। शंकु का ऊपरी भाग समतल है व २५फुट **x**६० फुट का एक आयत का निर्माण करता है। यह अब पक्का बना हुआ है। इसी आयताकार क्षेत्र में एक मठियानुमा मंदिर है। इस मठिया की छत गोल व विमान गुम्बदकार है। मठ की दीवारें ४ फुट चौड़ी है व मठ का दरवाजा ५ फुट ऊँचा मेहराबदार है। मठ जोकि मंदिर का गर्भग्रह भी है, अन्दर से वर्गाकार है। मठियानुमा मंदिर एक चबूतरे पर स्थित है जो कि मंदिर शिल्प के अनुसार पवित्र होता है। यह मंदिर पूर्वाभिमुख हैं। (१७) मंदिर तक पहुँचने के लिए ,सीढ़ियाँ बनी हुयीं हैं।

मूर्तिशिल्प - इसी मंदिर में पद्मासन मुद्रा में ऋषि पाराशर की श्वेत संगमरमर से निर्मित धवल मूर्ति स्थापित है। यह मूर्त्ति भी पूर्वाभिमुख है। यह मूर्त्ति ढाई फुट चौड़ी व तीन फुट ऊँची है तथा इसके वायें हाथ की ओर एक कमण्डल अंकित है व दाहिना हाथ जाप मुद्रा में सुमिरनी सहित है। मूर्ति तपस्वी सन्यासी की है परन्तु उस पर किरीट माला का श्रंगार है।यह मठियानुमा मंदिर व मंदिर में स्थापित ऋषि मूर्त्ति को देखने से ऐसा भान होता है कि यह मंदिर सोलहवीं शताब्दी का होगा। इस बात की पुष्टि ग्राम के ही एक वयोबद्ध सज्जन द्वारा की गई। (१८)

शंकर जी के मंदिर -

वेतवा नदी के तट पर महार्षि पारशर जी के मंदिर में जाने के लिए जिस स्थान से सीढ़ियाँ प्रारंभ होती हैं उससे पूर्व की ओर लगभग ५० फुट पर ये दोनों शिव मंदिर स्थापित हैं।

वास्तुशिल्प -

ये दोनों ही मंदिर अलग अलग दो चबूतरों पर निर्मित हैं तथा ईट गारे से बने हैं व इनकी दीवालो पर चूने का उत्तम कोटि का प्लास्टर हुआ है। ये दोनों ही मंदिर पूर्वाभिमुख हैं। दोनों मंदिरों के दरवाजे मेहराबदार हैं व उच्च कोटि के बेल बूटों से चूने के प्लास्टर पर अंकन

है। मंदिर के दरवाजों पर बालू पत्थर की चौखट लगी हुई है। मंदिर एक कक्षीय है। यह कक्ष अथवा गर्भग्रह वर्गाकार है व वर्ग की चारों भुजाओं के ऊपर अष्टभुजी आकृति पर मंदिर का विमान
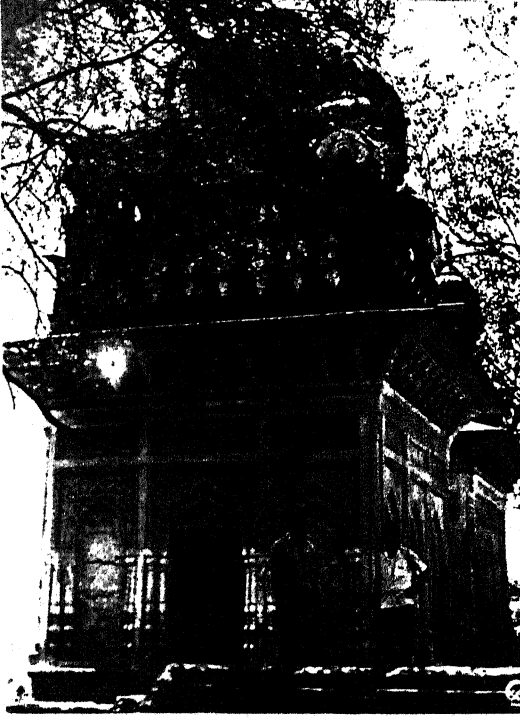
खरबूजाकार स्थिति में स्थित है जिसके ऊपर कलश स्थापित है। इस अष्टभुजी आधार पर बाहर की. ओर कमल दल कंगूरे अंकित हैं तथा इस विमान के चारों कोनों पर एक एक कलश युक्त मठ स्थापित है। दोनों मंदिर एक दूसरे के बगल में स्थापित हैं। परन्तु उत्तरी ओर स्थित मंदिर कुछ विशिष्ट हैं। उत्तरी ओर स्थित मंदिर की बाहरी दीवालों पर सुन्दर अंकन है। उत्तरी दीवाल पर बाहरी ओर चूने द्वारा द्विभुजी सिंह वाहिनी अंकित हैं जिनके दोनों हाथों में त्रिशूल है। गले में सिताराहार भी अंकित हैं ; मंदिर के तोड़ों पर मयूराकृति अंकित है। इसी मंदिर की छत अन्दर से गोल गुम्बदाकार है व फूल पत्तियों से अलंकृत है।

चित्रकला - गुम्बद की आधार आठों भुजाओं पर अन्दर की ओर से बहुत सुन्दर रंगीन चित्रकारी की गई है परन्तु दो कोनों पर अब भी सुन्दर चित्र देखे जा सकते हैं। एक कोने के एक पटल में दो मनुष्य आकृतियाँ हाथ में हाथ लिए चित्रित हैं व दूसरे पटल पर घोड़े, पण्डित व स्त्री आकृति चित्रित है। इनके नीचे एक सेवक भी चित्रित है। यह सब अनूठी चित्रकला है। बुन्देली चित्रकला की दृष्टि से यह उत्तम स्थान है।

मूर्तिशिल्प - इस उत्तरी शिवमंदिर के गर्भग्रह में काले पत्थर द्वारा निर्मित एक पंचमुखी शिवलिंग स्थापित है। इस शिवलिंग का घरूआ भी काले पत्थर द्वारा निर्मित है। इस पंचमुखी शिवलिंग की यह विशेषता है कि शिवलिंग में अंकित चार मुख जटामुकुट धारण किये हैं व चार शीर्षों के ऊपर एक शीर्ष स्थापित है जिस पर कोई किरीट अंकित नही है वरन् केशों पर
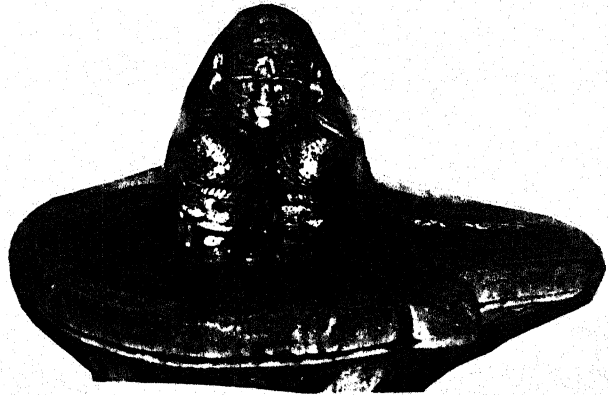
एक नाग अंकित है जोकि किरीट की भाँति शोभायमान है । अंकित नाग भी पंचमुखी है । सभी पाचों मुखों के ललाट पर शिव का अग्निमण्डित तृतीय नेत्र भी अंकित है । इस पंचमुखी शिवलिंग पीठिका (घरूआ) पर भी सूर्य अंकित है । (१६) पंचमुखी शिवलिंगों का प्रचलन राजपूत कल में ही प्रारंभ हुआ था जो कि ८वीं से १३ शताब्दी के मध्य रहा। (२०)

मंदिर का चबूतरे पर स्थित होना यह भास कराता है कि मंदिर पर चंदेल कालीन (६वीं शताब्दी से १३ वीं शताब्दी) प्रभाव रहा है । परन्तु मंदिर में ईट और चूने का प्रयोग तथा पत्थर की चौखट निश्चित रूप से इस मंदिर की प्राचीनता के साक्ष्य हैं । मंदिर पर कोई बीजक उपलब्ध नहीं है । गाँव के ही एक बृद्ध सज्ञन ने बतलाया कि इन मंदिरों का निर्माण बड़े बड़े सेठों द्वारा किया गया है। (२१)

विशेषता -

अश्विन कृष्ण पक्ष में पित्र आवाह्न के समय पितर मछली का शरीर धारण करके पिंड लेने के लिए यहाँ आते हैं ऐसी यहाँ की मान्यता है। (२२)

वेत्रवती (वेतवा) के तट पर बसे परासन ग्राम के साथ यह विशेषता जुड़ी है कि महर्षि पाराशर के मंदिर के निकट ही इस वेतवा नदी में पितृपक्ष में बड़ी बड़ी मछलियाँ आतीं हैं । कार्तिक पूर्णिमा तक रहती हैं । फिर कहाँ चली जाती हैं कुछ भी ज्ञात नहीं । स्थानीय मान्यताओं के अनुसार पितरगण मत्स्यरूप में आकर पिंड ग्रहण करते हैं । वास्तविकता में भी वेतवा की ये मछलियाँ, मनुष्यों के सम्पर्क से डरती नहीं है वरन उनके साथ अठखेलियाँ करतीं हुयी उनके हाथों से अर्पित किया गया पिण्डरूप में आटा ग्रहण करती हैं । परासन ग्रामवासियों की यह भी अवधारणा है कि ये मछलियाँ शुद्धचित्तं एवं आस्था के साथ अर्पित भोज्य पदार्थ ही ग्रहण करती है । विश्व में केवल डालफिन प्रजाति की मछली का ही मनुष्य के साथ क्रीड़ा करने का दृष्य प्रकाश में है परन्तु परासन की ये मछलियाँ सिलन्द प्रजाति की होने के बाद भी मनुष्य के हाथों से अर्पित आटे के पिण्ड को ग्रहण करती है एवं उनके साथ अठखेलियाँ करती हैं। (२३)

सिलन्द प्रजाति की मछलियाँ अन्य स्थानों पर भी पाई जाती हैं विशेषतः यमुना नदी के क्षेत्र में, परन्तु उन सभी स्थानों पर ये मछलियों मनुष्यों से डरकर दूर भागतीं हैं । एक निश्चित समय पर एक निश्चित स्थान पर इन मछलियों का आना और मनुष्यों के साथ जलक्रीड़ा करते हुए पिण्डों को ग्रहण करना आश्चर्य चकित करता है एवं जनमानष में व्याप्त आस्थाओं को सम्बल प्रदान करता है ।

परासन ग्राम में वेतवा तट पर मछलियों का आना इस बात का भी द्योतक हो सकता है कि महाभारत की चर्चित पात्रा सत्यवती जो कि मत्स्य पुत्री थी । आद्रिका नामक अप्सरा जो कि शाप के कारण मत्स्य रूप में यमुना में विचरण करती थी तथा जिसके शरीर से मत्स्य की दुर्गंध आती थी वह महर्षि पाराशर के प्रताप से योजनगन्धा में परिणत हो गई और भगवान वेद व्यास की माता होने का सौभाग्य भी प्राप्त किया । अस्तु ये मछलियां पितृपक्ष में यहाँ पर इस लालसा के कारण आती हैं कि उन्हें भी महर्षि पाराशर के सम्पर्कमें आने का शायद अवसर प्राप्त हो जाये जिससे उनके शरीर की भी दुर्गंध -सुगन्ध में बदल जाये व वे भी ऐसे पुत्र की माँ बनने का सौभाग्य प्राप्त करें जिसकी यश कीर्ति पताका से उनका भी नाम अमर हो जाये।(२४)

सन्दर्भ-सूची

१- जालौन गजेटियर - डी०एल० ड्रेक ब्रोकमैन पृष्ठ सं० १८८
२- अमर उजाला दैनिक कानपुर - ३० सितम्बर १९९३ पृष्ठ सं० ७
३- जालौन गजेटियर - डी० एल० ड्रेक ब्रोकमैन - पृष्ठ सं०१८८
४- स्थान नामों का व्युत्पत्तिगत ऐतिहासिक एवं संस्कृति अनुशीलन - शोध प्रबंध - डा० यामिनी श्रीवास्तव
५- स्मारिका - 'सहयोग' वर्ष १९९० पृष्ठ सं० ६७
६- कालपी कीर्ति अंक वर्ष १९७८ पृष्ठ सं० ४८
७- बुन्देलखण्ड दर्शन - मोतीलाल त्रिपाठी अशान्त पृष्ठ सं० २००
८- 'कल्याण' तीर्थांक - वर्ष - १९५७- श्री गिरधारी लाल पृष्ठ सं० ११३
९- हिन्दी शब्द सागर - संपादन - श्यामसुन्दर दास बी० ए० पृष्ठ सं०१९९९
१०- 'कल्याण' - पुराण कथां क - वर्ष १९८९ पृ ष्ठ सं ० ३३३
११- मत्स्य पुराणं दो सौ एकवाँ अध्याय वर्ष में प्रवरानुकीर्तन में श्लोक सं०१ से४०
१२- महाभारत - आदिपर्व - त्रिषंष्तिमो अध्याय वर्ष १९८८ श्लोकसं० ६८से ८६ तक पृष्ठ सं० १७६-१७७
१३- देवी भागवतांक - द्वितीय स्कन्ध - अध्याय १-२ पृष्ठ सं० ७८-७९-८०
१४- पुराण कथांक- पृष्ठ सं०३३३
१५- श्रीसुक सुधा सागर - प्रथम स्कन्ध - श्लोक सं० २१ वर्ष १९९३ पृष्ठ संख्या ३९
१६- अमर उजाला - " परासन जहाँ पितृ मत्स्यरूप में आते है ।" दिनांक ३० सितम्बर १९९३ हरीमोहन पुरवार
१७- व्यक्तिगत रूप से स्थान पर जाकर अवलोकन किया । दिनांक ११ अगस्त १९९३
१८- व्यक्तिगत साक्षात्कार - वृद्ध वैद्य प० प्रभुदयाल भट्ट (७० वर्ष) दिनांक ११ अगस्त १९९३ ग्राम परासन
१९- व्यक्तिगत रूप से स्थान पर देखा दिनांक ११ अगस्त १९९३
२०- दैनिक अमर उजाला - "परासन जहाँ पर पितृ मत्स्य रूप में आते है ।"दिनांक १८ अगस्त १९९३ हरीमोहन
२१- व्यक्तिगत साक्षात्कार - पं० बाबूराम तिवारी (६५वर्ष) उरई दिनांक १८ अगस्त १९९३
२२- कालपी कीर्ति अंक - "कालपी क्षेत्र के दर्शनीय स्थल" वर्ष १९७८मोतीलाल शर्मा पृष्ठ संख्या ४८
२३- दैनिक आज - दिनांक ३० सितम्बर १९९३ पृष्ठ संख्या -४
२४- व्यक्तिगत साक्षात्कार - श्री वीरेन्द्र कुमार तिवारी (३५वर्ष) परासन निवासी दिनांक १८-८-१९९३

गणेश मंदिर

कालपी नगर के गणेश गंज मुहल्ले में यह मंदिर स्थित है । कालपी रेलवे स्टेशन से लगभग दो फर्लांग की दूरी है इस मंदिर की । गणेश गंज मुहल्ला कालपी के प्राचीन ५२ मुहल्लों में से एक है । (१) यह गणेश मंदिर कालपी के दर्शनीय स्थलों में स एक है (२) ।

इतिहास-

यह मन्दिर मरहठा काल में निर्मित हुआ था और मरहठों के आराध्य देव श्री गणेश जी महाराज की यहाँ पर प्राण प्रतिष्ठा है । (३)

बुन्देलखण्ड में मरहठों का आगमन सन १७२९ से माना जाता है जब कि छत्रसाल ने बगंश खाँ को परास्त करने के लिये पेशवा वाजीराव की सहायता प्राप्त की थी तथा उसी वर्ष मरहठों को (बाजीराव पेशवा) बुन्देल प्रदेश का एक भाग प्राप्त हुआ था

इस मन्दिर का जीर्णोद्वार बालाजी बाजीराव पेशवा द्वारा किया गया था । (५) संवत १७४६ में इस गणेश मन्दिर का जीर्णोद्वार बालाजी बाजीराव पेशवा प्रथम द्वारा कराया गया । (६)

श्री अनिल यशवन्त कान्हेरे के अनुसार गोड़से नामक यात्री ने सन १८५७ ई० में अपनी बुन्देलखण्ड यात्रा के विषय में , अपनी यात्रा विवरणी जो कि "बरबर "नाम से जानी जाती है । , यह तथ्य लिखा है कि पेशवा बाजीराव प्रथम ने इस मन्दिर का जीर्णोद्वार कराया था । (७)

श्री अनिल यशवन्त कान्हरे ने एक भेट में बताया कि महाराज छत्रपति शिवाजी के गुरु समर्थ गुरु रामदास ने शक संवत १५६६ में अपने कालपी आगमन के समय अपने हाथों से लाल बलुआ पत्थर पर दाहिनी ओर सूड़ बाले गणेश जी को गढ़कर उनकी स्थापना की थी । (८)

मन्दिर का वास्तुशिल्प -

यह मन्दिर ६०x६० फुट के क्षेत्र में स्थापित है । यह पश्चिमाभिमुख मन्दिर २१x२१के चबूतरे पर १६x १६फुट में मन्दिर का गर्भगृह स्थापित है । इस गर्भगृह की ऊंचाई ८फुट है । जिसके ऊपर ७ फुट ऊंची गोल डाट की छत है और इस छत के ऊपर शुक नाशिकायुक्त विशाल ऊध्वर्कार चतुष्कोणीय विमान अंकित है जिसकी ऊँचाई २०फुट है ।इस विमान की चारो

भुजाओं पर विमान आधार से १० फुट की ऊंचाई पर शुक नासिका स्थान पर एक अन्य विमान की आकृति के दोनों ओर एक एक अन्य विमानाकृति अंकित है । मन्दिर के चर्तुभुजी विमान के
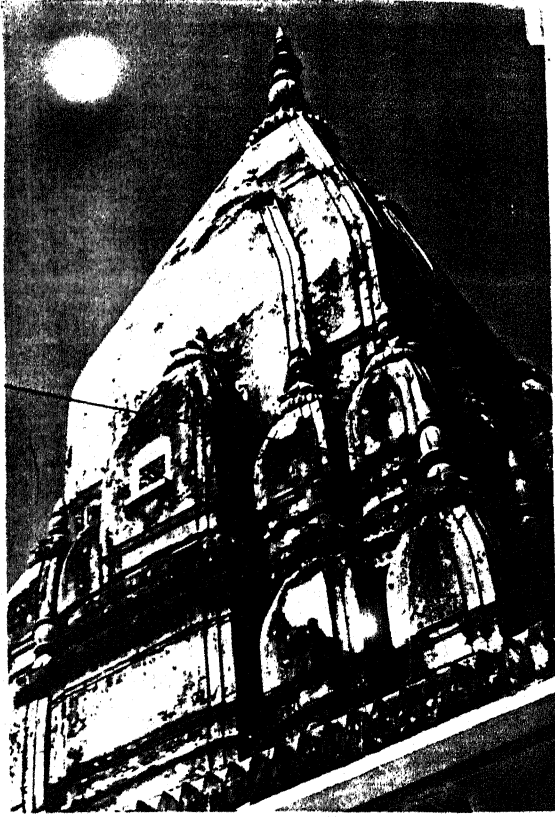
शुकनाशिका स्थान व विमान की दो भुजाओं के संगम स्थल पर भी एक के ऊपर एक विमानाकृति अंकित है। विमान के आधार पर कमल दल अंकित है । मन्दिर का सम्पूर्ण क्षेत्र ८फुट ऊंची बाऊन्ड्रीवाल से घिरा है । वाऊन्ड्री वाल ३ फुट मोटी है तथा इस बाऊन्ड्रीवाल व गर्भगृह के चबूतरे के मध्य चारो ओर २१ फुट चौड़ा खुला आगँन है जिसका उपयोग परिक्रमा हेतु किया जाता है । इस गणेश मन्दिर की उत्तरी बाऊन्ड्रीवाल से संलग्न एक शिवमन्दिर है जो कि पूर्वाभिमुख है तथा इस मन्दिर का वास्तु शिल्प गणेश मन्दिर के वास्तु शिल्प से हूबहू मिलता जुलता है । इस मन्दिर का निर्माण भी पेशवा बाजीराव प्रथम द्वारा बतलाया जाता है ।

मूर्तिशिल्प -

इस मन्दिर में गणेश जी की तीन मूर्तियाँ है।

प्रथम गणेश मूर्ति - यह मूर्ति समर्थ गुरु रामदास जी द्वारा गढ़ित है । लाल बलुआ पत्थर की १२इंच ऊँची तथा ८ इंच चौड़ी यह मूर्ति गणेश जी की शान्त मुद्रा मूर्ति है जिसके ऊपर तीन नागफनों से युक्त छत्र सुशोभित है ।

द्वितीय गणेश मूर्ति - यह मूर्ति श्वेत संग-मरमर पत्थर की शान्त मुद्रा की चर्तुभुजी मूर्ति है जिसकी सूंढ़ वक्राकार दाहिनी ओर अंकित है । इस मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा पेशवा

बाजीराव प्रथम द्वारा संवत १७४६ में मन्दिर जीर्णोद्धार के समय की गयी थी । यह मूर्ति १६ इंच ऊँची व १२ इंच चौड़ी है ।

.तृतीय गणेश मूर्ति - यह मूर्ति श्वेत संगमरमर द्वारा निर्मित है । इसकी ऊंचाई १४ इंच व चौड़ाई ८-५ इंच है । इस चर्तुभुजी मूर्ति .में सूंढ़ दाहिनी ओर वक्राकार स्थित में अंकित है । इस मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा महारानी लक्ष्मीबाई द्वारा की गयी थी ।

संदर्भ-सूची -

(१) कालपी महात्म -	रुपकिशोर टण्डन	पृष्ठ सं० २७ -
(२) समारोह पत्रिका जनपद जालौन -	हरीमोहन पुरवार वर्ष १९९३	पृष्ठ सं० ८
(३) कालपी क्षेत्र के प्राचीन मन्दिर एंव स्मारक -	प्रतापनारायण पाण्डेय	पृष्ठ सं० ८०
(४) मरहठों का नवीन इतिहास (द्वितीय खण्ड)	गोविन्द सखाराम सरदेसाई	पृष्ठ सं० ७४
(५) सांस्कृतिक धरोहर -	अर्जुनसिंह	पृष्ठ सं० १३
(६) तीर्थ भूमि कालपी -	विन्देदीन पाठक	पृष्ठ सं० १६ -
(७) व्यक्तिगत साक्षात्कार -	श्री अनिल यशवन्त कान्हेरे दिनांक २८-११-९३	
(८) व्यक्तिगत साक्षात्कार -	श्री जगदीश पुरवार दिनांक २८-११-९३	

चौरासी गुम्बद -

यह भव्य भवन २६.८ उत्तरी अक्षांस यमुना नदी के दक्षिणी तट पर बसी कालपी नगरी के दक्षिणी किनारे पर कालपी उरई रोड पर स्थित है । (१) यह भवन अत्यन्त प्राचीन है । चौरासी गुम्बद कालपी की ऐतिहासिक इमारतों में से एक उल्लेखनीय इमारत है। (२)

इतिहास -

चौरासी गुम्बद का ऐतिहासिक अवलोकन विभिन्न मतो से आवेष्ठित है । इसके विषय में कहा जाता है कि यह बहुत प्राचीन इमारत है व आकृति के दृष्टि से यह बौद्ध भवन प्रतीत होती है। (३)

इस चौरासी गुम्बद भवन को अशोक कालीन विद्यालय दर्शाते हुये कहा गया है कि यह आपरष्ठ चौरासी गुमबद के नाम से विख्यात है । (४)

सन १६२८ में श्री रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा - राजस्थान व कलकत्ता विश्वविद्यालय के इतिहास के विभागाध्यक्ष प्रो० यदुनाथसरकार ने कालपी भ्रमण के समय स्व० कृष्ण बल्देव वर्मा के यहाँ निवास किया था और उसी प्रवास के समय इन लोगो ने बतलाया था कि कालपी में चौरासी गुम्बद व अन्य मठ बौद्ध कालीन है । सम्राट अशोक द्वारा बौद्ध धर्म गृहण करने के पश्चात् एक विश्व स्तरीय सम्मेलन कालपी में हुआ था और उसी आयोजन के अन्तरगत यह चौरासी गुम्बद एंव अन्य मठों का निर्माण किया गया था । (५)

एक अन्य मतानुसार कालपी के दक्षिण भाग के एक सिरे पर एक बौद्ध मठ (स्तूप) सा प्राचीन भव्य खंडहर है । कभी इस भवन में चौरासी गुम्बद व दरवाजे थे । अतः इसका नाम चौरासी गुम्बद पड़ा । इस भवन में कुछ पत्थर बौद्धकालीन शिल्प की छाप लिए हैं । संभव है कौशाम्बी और जीजाक नामक बौद्ध राज्यों के मध्य स्थित यह कालपी शहर बौद्ध प्रभाव में रहा हो । एक जनश्रुति के अनुसार चीनी यात्री ह्वेनसांग के समय यहाँ एक बौद्ध मठ उच्च शिक्षा संस्थान एवं आवास ग्रह था।(६)

मध्यकालीन लोधी वंशजो के विशाल मकबरा चौरासी गुम्बद को बौद्धकालीन मठ भी बहुत से लोग मानते हैं।(७)

हिजरी ७६१ में सुल्तान मुहम्मद उर्फ महमूद शाह लोधी ने कालपी के लहरिया राजा उर्फ श्रीचन्द्र पर आक्रमण कर उसे. परास्त किया था । उसी विजय के फलस्वरूप चौरासी गुम्बद का निर्माण महमूदशाह लोधी द्वारा हुआ । चौरासी गुम्बद के नाम का कारण यह था कि निर्माण के समय चौरासी गुम्बद बनाये गये थे । इस भवन में तीन कब्रें हैं । एक कब्र महमूदशाह लोधी की है व दूसरी कब्र उस अमीर की है जो बादशाह की ओर से वहाँ पर रहता था तथा तीसरी कब्र एक भिश्ती की है । उस भिश्ती ने मुकामात मखवझ में बादशाह का साथ दिया था तथा ऐन वक्त पर खुद सुपर बादशाह का होकर घायल हुआ था । बादशाह ने उस भिश्ती के साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया तथा उसे वचन दिया था कि उसकी कब्र के पास ही भिश्ती की भी कब्र रहेगी । इस करण वह भिश्ती भी वहीं दफनाया गया । यह एक पुराना व दिलचस्प भवन है। (८)

इस इमारत को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि उसका निर्माण पहले अन्य प्रयोजन के लिए हुआ था । इमारत वर्गाकार है। (९)

श्री डी०एल० ड्रेक ब्रोकमैन आई०सी० एस० भी यह स्वीकार करते हैं कि बाद में इस भवन को लोधी शाह बादशाह की कब्र के नाम से जाना जाने लगा और कुछ लोग इसे सिकन्दर लोधी की कब्र मानते हैं। (१०) जबकि हम यह तथ्य जानते हैं कि सिकन्दर लोधी आगरा के निकट मरा था १०और उसकी लाश को दिल्ली ले जाया गया था। (११)

चौरासी गुम्बद नामक शानदार मकबरा महमूद लोधी का है जो बादशाह सिकन्दर लोधी का अमीर था और कालपी का सूबेदार नियुक्त हुआ था । हिजरी ७६१ में हुए एक युद्ध में महमूद लोधी अपने अंगरक्षक भिश्ती के साथ मारा गया था । उसकी याद में बने इस मजार के बीच में लोधी की कब्र और बायीं ओर भिश्ती की कब्र हैं। (१२)

चौरासी गुम्बद एक बहुत पुरानी इमारत है व इसकी आकृति देखने से यह बौद्ध इमारत प्रतीत होती है जिसको यवनकाल में नष्ट कर मुसलमानी इमारत में परिणित की हुई मालूम होती है । इसके अन्दर मुसलमानी कब्रें हैं जिसके लिए बहुतेरी भ्रमात्मक खबरें कहीं जाती है । कोई कोई तो इसे सिकन्दर लोधी की व कोई इसे उस भिश्ती की जिसने हुमायूँ की जान बचाई थी कि कब्र होना बताते हैं परन्तु इसके कोई मानवीय प्रमाण नहीं मिलते हैं । ऐसा मालूम होता है कि यहाँ नगर के किसी प्रभावशाली यवन शासक की कब्र है जो मुगलों से पहले की बनी हुयी है। (१३)
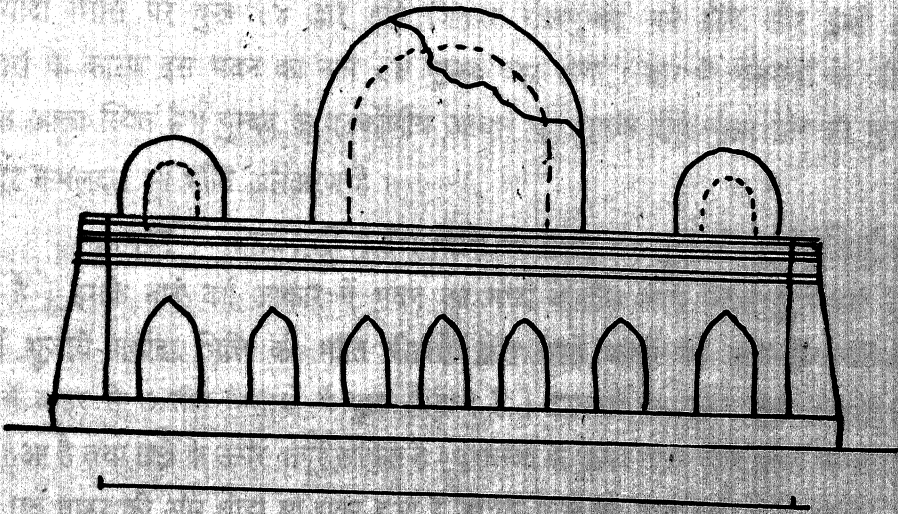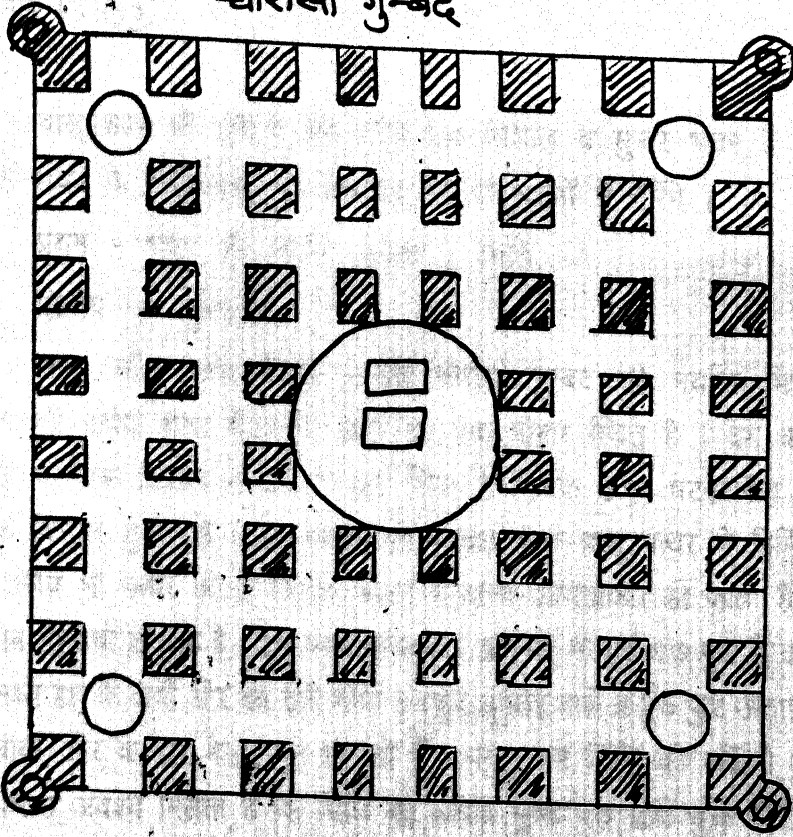
सन १८८२-८३ में एलैक्जैन्डर कनिंघम द्वारा निर्मित नक्शा

जौनपुर के सुल्तान से कालपी में महमूदशाह लोधी के बीच युद्ध हुआ था और इसकी मृत्यु हुयी थी। उसी की स्मृति में यह चौरासी गुम्बद तैयार हुआ व इसके बड़े हाल में उसकी कब्र बनाई गई। (१४)

वास्तुशिल्प -

वास्तुशिल्प की दृष्टि से यह भवन एक विशाल व सुन्दर भवन है जो कि वर्गाकार है। इस भवन के वास्तुशिल्प का अध्ययन हम दो चरणों में करेंगे।

प्रथम - भवन की मर्यादा (सीमा) भित्ति

द्वितीय - मूलभवन

भवन की मर्यादा भित्ति - इस चौरासी गुम्बद की मर्यादा भित्ति भी वर्गाकार है। वर्ग की प्रत्येक भुजा के सन्धि स्थल पर एक मीनार स्थित है। वर्ग की पूर्वी भुजा के केन्द्रस्थल पर एक विशाल मेहराबदार द्वार स्थित है जिसके ऊपर षटकोणीय आधार पर आधारित एक विशाल गुम्बद है। इस दीवार की चौखट लाल बालू पत्थर से निर्मित है। दरवाजे के ऊपर स्लैब भी पत्थर का है जिसके कारण दरवाजा आयताकार हो जाता है। यह आयतकार द्वार तीन मैहराबों से युक्त है। इस मध्य गुम्बदकार द्वार की गहराई १७ फुट है व ऊँचाई २५ फुट है। इस मध्य द्वार के दायीं ओर दस इसी भाँति १४फुट गहराई वाले व २० फुट ऊँचाई वाले द्वार स्थित हैं। बायीं ओर के द्वार नेस्तनाबूत हो गये हैं। परन्तु इस भित्ति की दक्षिणी भुजा के देखने से ऐसा आभास अवश्य मिलता है कि भित्ति की प्रत्येक भुजा २७ द्वारों युक्त होगी। इसी प्रकार से मर्यादा भित्ति पर कुल ८४ द्वार होंगे जिनपर गोलगुम्बद बने होंगे और इन्हीं ८४ गुम्बदयुक्त द्वारों के कारण इस भवन का नाम ८४ गुम्बद पड़ा होगा। द्वार के मेहराबों के दोनों ओर एक एक आला स्थित है। गुम्बद के षटकोणीय आधार एवं उसके नीचे मुख्य द्वार की भुजा पर वाह्य ओर कमलदल की भाँति अलंकरण है।

मूलभवन - भवन की मर्यादा भित्ति के अन्दर ८० फुट चौतरफा चौड़ाई का खुला आँगन है। इसके बाद वर्ग आकार में भवन का मध्य केन्द्रीय भाग स्थित है। इस वग की भी चारों भुजायें मर्यादा भित्ति की भाँति मीनारों द्वारा चारों कोनों पर जुड़ी है। वर्ग की प्रत्येक भुजा में बाहर से ७ तीन मेहराबों से युक्त दरवाजे है। दरवाजों के ऊपर तोड़ा आधार पर छज्ञा निकला हुआ है तथा छज्ञे के ऊपर कंगूरे अंकित है। दरवाजों के ऊपर छज्ञा लाल पत्थर के आधार पर आधारित एवं बाहर की ओर थोड़ा सा झुका हुआ है जो कि पानी को ढ़ाल देकर नीचे गिरने में सहायक होता है। प्रत्येक दरवाजे की मध्य भित्ति पर अर्थात् दो दरवाजो के बीच की दीवाल पर ऊपरी ओर एक एक अलंकृत आला बना हुआ है। दरवाजों के दोनो ओर ऊपरी भाग में एक एक

ज्यामितीय बेल से अलंकृत गोला अंकित है। कुछ गोलो में अरबी में अल्लाह खुदा है। इस मूल भवन का केन्द्रीय कक्ष वर्गाकार है। जिसकी प्रत्येक भुजा ३५ फुट लम्बी है। आन्तरिक वर्ग की प्रत्येक भुजा में तीन दरवाजे तथा मध्य वर्ग भाग की प्रत्येक भुजा में पाँच पाँच दरवाजे व सबसे बाहरी वर्ग की प्रत्येक भुजा पर सात सात दरवाजे बने है। इस प्रकार से मूलभवन में कुल ६० दरवाजे है। इस मूल भवन के केन्द्रीय वर्ग में उच्चकोटि का चूने का प्लास्टर है जिस पर
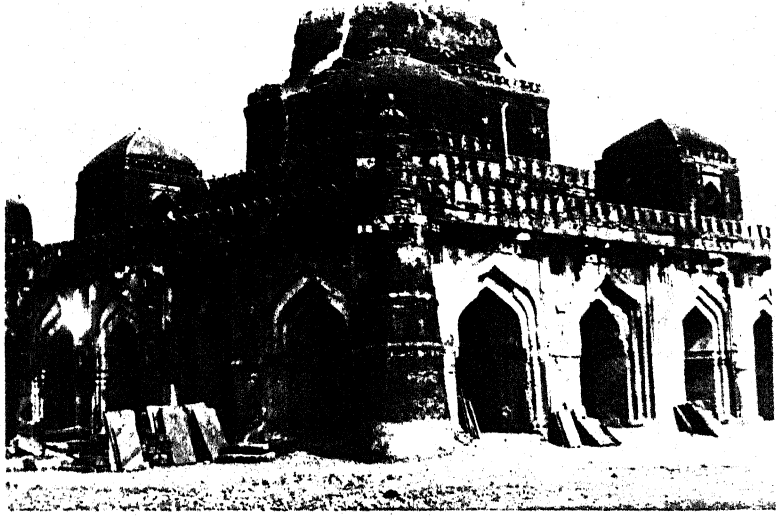
ज्यामितीय डिजाईने उकेरी गई है। अन्दर के प्रत्येक आले एवं दरवाजे पर भी अलंकरण है। इस भवन को अन्दर से देखने पर स्पष्ट होता है कि इसका आधार तल वर्गाकार तथा द्वितीय तल पट्भुजी है और इस द्वितीय षटभुजी तल के ऊपरी भाग पर भवन का तृतीय तल गोल गुम्बदोकार रुप में स्थित था जिसके अवशेष आज भी देखे जा सकते है। इसके मध्य में बड़ा चौकोर हालनुमा गुम्बद है जिसके चारों ओर छोटे गुम्बद और मेहराबी दरवाजे बने है। बाहर चारों ओर सहन के बाद बाऊन्ड्री है। इस बाऊन्ड्री में चारों तरफ गुम्बदनुमा मेहराबी दरवाजे बने है। मध्य का गुम्बद टूटा हुआ है। इसकी मीनारे बहुत छोटी है। (१५)

यह चौरासी गुम्बद भवन बाहर से १२५ फुट के वर्ग में बना है जिसकी ऊँचाई लगभग ८० फुट है। सम्पूर्ण भवन शतरंज के बोर्ड की भाँति आठ मेहराब के स्तम्भों एवं सात रेखाओं द्वारा खुली जगह में विभक्त है। इस प्रकार से ६४ मेहराब के स्तम्भ जो कि आपस में दुगने ४६ मेहराबों से ४६ कटावों युक्त जगहों से जुड़े है जिसके ऊपर समतल छत है। इस भवन के मेहराब के स्तम्भ ६ फुट २ इंच से लेकर ८ फुट ८ इंच तक वर्ग के आकार में मोटे तथा ६-५ फुट से ६-५ फुट तक फैलाव लिए हैं। (१६)

मूल्यॉकन -

यहाँ हम विभिन्न मत मतान्तरों भवन के वास्तुशिल्प एवं विभिन्न अनदखे साक्ष्यों पर विचार करके किसी निर्णय पर पहुँचने का प्रयास करेंगे जिससे इस चौरासी गुम्वद की वास्तविकता पर प्रकाश डाला जा सके ॥

वर्तमान में यह भवन लोधी की मजार के रूप में जाना जाता है जिसमें दो मजारें बनी हुई हैं । इससे यह एक मुस्लिम इमारत हुई ।

अब इसका दूसरा पक्ष भी देखें । इस भवन का नाम चौरासी गुम्बद है । चौरासी का अंक हिन्दुधर्म शास्त्रियों के अनुसार एक ऐसा प्रभावी अंक है जो अपने आप में सकल ब्रहमाण्ड के सभी जीवों का प्रतिनिधित्व करता है । गरूणपुराणानुसार -

"चतुरासीति लक्षेषु शरीरेषु शरीरिणाम् ।
न मानषं विना अन्यत्र तत्वज्ञान् त लभ्यते ॥"

अर्थात् इस चराचर जगत ने चौरासी लाख योनियाँ होती है ।(१७) अस्तु इस जगत में चौरासी लाख प्रकार के जीवजन्तु हैं और इन सभी की यह आत्मिक उत्कट इच्छा रहती है कि इस संसार के आवागमन चक्र से मुक्ति प्राप्त कर ईश्वर के परमानन्द में समाहित हो जायें। इस चौरासी गुम्बद को हिन्दुओं की इसी आस्था की दृष्टि से देखने पर इस भवन का वास्तुशिल्प उद्देश्यहीन न होकर इस बात को इंगित करता प्रतीत होता है कि चौरासी गुम्बद का प्रत्येक गुम्बद एक एक लाख योनियों का प्रतिनिधित्व करता है और प्रत्येक योनि का यह परम उद्देश्य होता है कि वह योनिचक्र से मुक्ति पाकर ईश्वर में समाहित हो जावे । इस भवन में चौरासी गुम्बद जहाँ योनियों के प्रतीक हैं वहीं इसका मूल केन्द्रीय भवन ईश्वरीय सत्ता का द्योतक है । इस दृष्टि से यह भवन हिन्दु भवन भी हो सकता है ।

अंक शास्त्र की दृष्टि से ८४ का योग १२ होता है और बारह का योग ३ होता है। तीन अंक के विषय में यह कहा गया है कि यह अंक संसार में ऊँचा उठने का ध्येय रखता है जिससे वह प्रभुत्व रख सके एवं अनुशासन स्थापित कर सके तथा यह अंक आपस में आकर्षण का भी द्योतक है|(१८) संसार में ईश्वर से अधिक ऊँचा कोई नहीं है । उसी की प्रभुता सब जगत में स्थापित है । उसी का अनुशासन सबको मान्य है और सबमें आकर्षण का वह केन्द्र है । यहाँ यह भी दृष्टव्य है कि इस भवन में जितने भी दरवाजे हैं व आले हैं वे सभी तीन तीन मेहरबों से युक्त हैं । यह तथ्य भी इस भवन के मूलस्वरूप को हिन्दु भवन के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

इस भवन की मर्यादा भित्ति में चौरासी गुम्बदों का होना इस भवन के हिन्दु भवन होने का प्रमाण है । गुम्बद शब्द का निर्माण कुम्भ से हुआ है जो कि विशुद्ध रूप

से हिन्दु चिन्ह हैं। कुम्भों को उलट देने से ही गुम्बद के स्वरूप का निर्माण होता है। अस्तु यह भवन निश्चित रूप से हिन्दु भवन था। (१६)

इस मर्यादा मित्ति के पश्चात् एक खुला आँगन इस बात को इंगित करता है कि प्रत्येक योनि का जीव जब अपना योनि शरीर छोड़ता है तो वह वायु में उन्मुक्त विचरण करता है और अपने जीवनोद्देश्य की खोज में इधर उधर भटकता है। इस भवन का मूल केन्द्रीय भवन एक तिमन्जिला भवन है जिसकी आधार मंजिल 'अर्थ' मध्यमंजिल 'धर्म' एवं सबसे ऊपरी गोल गुम्बदकार मंजिल'मोक्ष' का आभास करती है। यह मान्यता भी हिन्दुओं की रही है। इस भवन में जहाँ आलों के नीचे घंटियों का अलंकरण है वही इसके केन्द्रीय भवन के पश्चिमी दरवाजे के मेहराब के शीर्ष पर दो स्थानों पर त्रिशूल की आकृति भी दिखाई पड़ती है। ये घंटी, त्रिशूल, कमलदल आदि के चिन्हों से यह बात स्पष्ट रूप से प्रमाणित होती है कि यह भवन मुस्लिम भवन नहीं था। यहीं एक बात यह भी विचारणीय है कि इस भवन में महमूद शाह लोधी की मजार है और इसका निर्माण भी महमूदशाह लोधी द्वारा किया गया। ऐसी स्थिति में यह कुछ तर्क संगत नहीं लगता कि एक व्यक्ति स्वयं अपनी मृत्यु की तैयारी करें और अपना मकबरा बनवायें। अस्तु निश्चित रूप से महमूद शाह लोधी ने इस भवन पर अपना कब्जा करके उसमें अपनी इच्छानुसार कुछ बदलाव करवायें।

इस भवन का नाम चौरासी गुम्बद नाम क्यों पड़ा यह कोई नहीं बतलाता जबकि इसके अन्दर मात्र ४० गुम्बद हैं। अतः इसका नाम चालिसी गुम्बद रहा होगा तथा यह तथ्य बिल्कुल स्पष्ट भी है क्योंकि यह संख्या हिन्दुओं की एक प्रिय संख्या है।२० कनिघंम के कथन से यह स्पष्ट झलकता है यह भवन हिन्दू भवन रहा होगा जिसे बाद में मुस्लिमों नेअपनी सत्ता के बल पर अधिग्रहीत किया होगा।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि यह चौरासी गुम्बद भवन प्रारंभ से निश्चित रूप से हिन्दू आस्थाओं पर आधारित भवन रहा होगा। जिसे बाद में अधिग्रहीत किया गया।

सन्दर्भ-सूची

१- पुरातन गाथाओं का शहर कालपी — डा० राजेन्द्र कुमार — पृष्ठ २व५

२- डाइरी सूचना विभाग उत्तर प्रदेश सरकार — पृष्ठ १२वर्ष १६५४

३- कालपी महात्म — रुपकिशोर टंडन — पृष्ठ सं० ६३

४- श्री सम्पूर्णानन्द अभिनन्दन ग्रन्थ सम्पा० बनारसी दास आदि — पृष्ठ सं० १०५

५- व्यक्तिगत साक्षात्कार - श्री चन्द्रभानु विद्यार्थी (८० वर्ष) दिनांक १४-११-६३

६- पुरातन गाथाओं का शहर कालपी - डा० राजेन्द्र कुमार — पृष्ठ सं० ५

७- नव अंकुर - सितम्बर ८४ पृष्ठ सं० १०
८- आईना कालपी - मुंशी इनायत उल्ला पृष्ठ सं० ७५
९- युग युगों में काल्पी - लेख -. प्रो० के० डी० बाजपेयी
१०- जालौन गजेटियर - पृष्ठ सं० - १६३
११- रिपोर्ट ऑफ ए टूर इन बुन्देलखण्ड एण्ड रीवा - १८८३-८४ कनिंघम पृष्ठ सं० - १३२
१२- पुरातन गाथाओं का शहर कालपी - डा० राजेन्द्र कुमार पृष्ठ सं० ५
१३- कालपी महात्म रुपकिशोर टंडन पृष्ठ सं० ६३
१४- कालपी शरीफ के औलिया इकराम - रहीम बक्श सिद्दकी - पृष्ठ सं० - ६४
१५- कालपी शरीफ के औलिया इकराम - रहीम बक्श सिद्दकी - पृष्ठ सं० - ६४
१६- रिपोर्ट ऑफ ए टूर इन बुन्देलखण्ड एण्ड रीवा - १८८३-८४ कनिंघम पृष्ठ सं० - १३३
१७- गरुण पुराण - षोड़षोध्याय - श्लोक सं० - १३ पृष्ठ सं० - २०२
१८- अंक चमत्कार - कीरो पृष्ठ सं० - २०-२१
१९- व्यक्तिगत पत्र - पी० एन० ओक - दिनांक - ५-४-९५
२०- रिपोर्ट ऑफ ए टूर इन बुन्देलखण्ड एण्ड रीवा - १८८३-८४ कनिंघम पृष्ठ सं० - १३२

शाही मस्जिद

यह मस्जिद कालपी के सदर बाजार नामक मुहल्ले में स्थित है। (१) यह जामा मस्जिद के नाम से जानी जाती है। (२)

इतिहास

इस मस्जिद का निर्माण बादशाह कादिर शाह द्वारा कराया गया (३) इसका निर्माण लगभग ७०० वर्ष पूर्व हुआ था । (४)

वास्तुशिल्प -

यह एक आलीशान मसजिद है जिनमें तीन विशाल गुम्बद हैं। (५) यह अपने ढँग की खास इमारत है तथा इसका दरवाजा काफी बुलंद है। (६)

सन्दर्भ-सूची

१- व्यक्तिगत सम्पर्क - श्री हलीम टेलर दिनांक १४-७-९४
२- कालपी महात्म - रूप किशोर टण्डन - पृष्ठ संख्या ७२
३- कालपी शरीफ के औलिया इकराम रहीम बख्स सिद्दीकी पृष्ठ संख्या ६४
४- "आईनाऐ कालपी" मुंशी इनायत उल्ला पृष्ठ संख्या ६९
५- कालपी शरीफ के औलिया इकराम रहीम बख्स सिद्दीकी पृष्ठ संख्या ६४
६- व्यक्तिगत सम्पर्क फजीउर्र रहमान एडवोकेट दिनांक १४-७-९४

चिल्ला मदारसाहब

कालपी को फकीरों और पीरों का शहर माना जाता है ।(१)यहाँ पर पीरों के पीर थे मदार साहब ।(२)जिन्हें बदरूद्दीन शाह अली के नाम से जाना जाता है ।(३)विख्यात मुहल्ला मदारपुरा में इनकी जिन्दा बैठक है ।(४)यह मुहल्ला कालपी के प्राचीन बावन मुहल्ले में से एक था ।(५)

इतिहास

कालपी की पुरानी आबादी के पास शेखपुर बुल्दा नाम का एक स्थान है जहाँ पर मदारसाहब का चिल्ला (कब्र) बना हुआ है । यहीं पर चालीस दिनोंतक बैठकर मदारसाहब ने (इबादत) पूजा की थी ।(६)शाह बद्री उद्दीन मदार चौदह वर्ष चार माह तक कालपी में रहे ।(७) मदारसाहब के विषय में यह कहा जाता है कि जब मदारसाहब कालपी आये तब वे कालपी के शेख से भेंट करने गये । शेख ने एक प्याला शरबत का पेश किया । शाहमदार ने उसमें एक गुलाब का फूल डाल दिया । इस पूरे कृत्य का अर्थ यह बतलाते है कि शेख ने शरबत प्रस्तुत कर दो संदेश दिये । एक यह कि शरबत की मिठास की तरह कालपी के लोग उसे मानते हैं तथा दूसरा यह जिस तरह से यह प्याला शरबत से भरा है उसी तरह से यह जमीन भी औलिया अल्ला से भरी है । मदारसाहब ने उसमें गुलाब का फूल डालकर अपनी ओर से दो संदेश शेख कालपी को दिये । एक तो यह शेख की बुजुर्गी की और ताजीम की तथा दूसरा यह कि जिस तरह से यह फूल तैरता है । मैं ऐसे ही यहाँ पर रहूँगा ।(८)शाहमदार के विषय में यह भी लिखा मिलता है कि उनकी जगह मकनपुर दरम्यान जमीन गंगा व जमन के हैं । जिसका इशारा उन्हें हजरत काशिम चिश्ती शाह विलायत से हुआ था । यह मकनपुर कादर शाह बिन शेख महमूद शाह का था । जब मदार साहब का शहरा कमालियत पूरे हिन्दुस्तान में मशहूर हुआ तब एक दिन कादर शाह मदार साहब की खिदमत में आया और मदारसाहब के शिष्यों को मदारसाहब तक अपने आने की खबर भिजवाने बावत हुक्म दिया । मदारसाहब के शिष्यों ने उससे कहा कि ऐसे समय में मदार साहब के पास जाकर खबर करने की उन्हें अनुमति नहीं है। इस पर कादिरशाह ने उन शिष्यों से कहा कि अपने मकदूम से कह देना वह हमारे शहर में न रहे । शिष्यों ने कादिर शाह की बात मदार शाह से ज्योंकि त्यों कह दी । उस पर मदार साहब ने फरमाया कि अपनी फिक्र करें और कालपी से रवाना हो गये । उसी वक्त कादिरशाह के शरीर पर आबले पड गये और निहायत जलन होने लगी । यह घटना ७०३ हिजरी की बताई जाती है ।(९)

मदारसाहब का चिल्ला काफी बड़े क्षेत्र में फैला है । चारों ओर ऊँची दीवार से घिरा यह भवन कई भागों में बंटा है । दो प्रमुख गुम्बदों के अलावा एक आलीशान रिहायशी मकान के अवशेष भी यहां हैं ।चिल्ले के अन्दर एक शेर पत्थर में तराशकर बनाया हुआ है ।यह शेर प्राचीन शिल्पकारी का एक नमूना है । कहते हैं कि कादिरसाहब इसी शेर की सवारी करते थे। इसचिल्ले में इबादत की जगह पर एक कलात्मक चिराग दान बना है । (१०)

मदारसाहब का चिल्ला वर्गाकार आकृति का बना है जिसकी प्रत्येक भुजा ३० फुट की है तथा हर भुजा में तीन सलामी लेते हुए मेहराबों से युक्त दरवाजे भी बने हैं । वर्गाकार आकृति के आन्तरिक चारों कानों पर मेहराब युक्त हैं । दरवाजों के ऊपर दोनों सिरों पर अन्दर तथा बाहर की ओर द्विदलीय पद्मपद युक्त चक्र अंकित हैं तथा दरवाजे के दोनों ओर ऊपर कीओर दो दो मेहराब युक्त आले बने हुए हैं । इस वर्गाकार आकृति के ऊपर षट्कोणीय बेलयुक्त रंगीन आकृति बनी हैं जिसके ऊपर गोल गुम्बद बना है । गोल गुम्बद में अन्दर की ओर केन्द्र में एक हुक लगा है जो कि किसी वस्तु को टांगने का संकेत देता है । ऊपरी गोल गुम्बद पतली पकी ईटों को चक्राकार स्थित में संयोजित कर बनाया गया है । इस चिल्ले मेंचूने का प्लास्टर है तथा दीवाल दस फुट चौड़ी है इसके अन्दर छत के निकट दस आले भी बने हैं जिनको देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि इन आलों में कोई पत्थर आदि जड़े होंगे जो कि बाद में निकाले गये हैं ।इन आलों के धरातल पर पीठिका होने के चिन्ह भी दिखलाई पड़ते हैं

मदारसाहब का शेर बैठी हुई मुद्रा में हैं जिसके अगले दोनों पैर आगे की ओर निकले है पीठ के चेहरे के पीछे बालों के झुरभुट का अंकन बबर शेर को प्रमाणित करता है। इस चिल्ले को देखने से ऐसा भान होता है कि यह चिल्ला पहले किसी अन्य प्रयोजन हेतु बनाया गया होगा । बाद में उसे चिल्ले का स्वरूप प्रदान कर दिया गया । अंदर की ओर पीठिका युक्त दस आलों से यह सम्भावना की जा सकती है कि प्रत्येक आले में एक एक अवतारों (दशा-अवतार) की मूर्ति प्रतिष्ठित हो तथा गुम्बद की छत पर कैन्द्र में बने कुन्दे से जंजीर लटकाकर शंकरजी

की पिण्डी पर जल का घटक रखने की व्यवस्था की गई हो । इस चिल्ले के दक्षिणी सिरे पर श्री दरवाजे की ही भाँति दरवाजा बना है जो इस चिल्ले के निर्माण को श्री दरवाजों के निर्माण काल में ले जाता है । वसन्त पंचमी के दिन यहाँ पर मानव भीड़ का सैलाब इकट्ठा होता है। हिन्दु और मुसलमान सभी यहाँ पर अपनी अपनी मन्नत मांगते हैं । डोरा बांधते हैं । अपना मुण्डन कराते हैं और कलश पर अपनी इच्छाओं की पूर्ति हेतु रेवड़ी फेकते हैं। (११)

सन्दर्भ-सूची

१- सांस्कृतिक धरोहर जनपद जालौन - अर्जुन सिंह पृष्ठ संख्या १०
२-"स्मृतियों की छांव में बसी कालपी ।" सप्ताहिक लोक सेवा अखिलेश विद्यार्थी पृष्ठ संख्या ८
३-"पुरातन गाथाओं का शहर कालपी ।" डा० राजेन्द्र कुमार पृष्ठ सं० ८
४-"सा० लोक सेवा (२६दिसंबर१९९२) अखिलेश विद्यार्थी पृष्ठ सं०८
५- "कालपी महात्म" रूपकिशोर टण्डन पृष्ठ सं०२७
६-"कालपी शरीफ के औलिया इकराम" रहीम बख्स सिद्दीकी पृष्ठ सं० ६२
७-"आईना कालपी " ख्वाजा ईनायत उल्ला पृष्ठ सं० ४५
८- "
९- " पृष्ठ सं०४६
१०- सा० गेटे (१५-२-१९८२) एक शहर मजारों का - डा० राजेन्द्र कुमार पृष्ठ संख्या ३
११- "पुरातन गाथाओं का शहर कालपी " डा० राजेन्द्र कुमार पृष्ठ सं० ८

पाहूलाल मंदिर

कालपी तहसील के कालपी नगर में मुहल्ला अदल सराय में यह मंदिर स्थित है । वर्तमान में यह मुहल्ला बड़ा बाजार नाम से जाना जाता है । परन्तु अदल सरांय कालपी के प्राचीन ५२ मुहल्लों में से एक था । (१) इस मंदिर का निर्माण श्री पाहूलाल खत्री द्वारा किया गया था अतः इसे पाहूलाल मंदिर के नाम से जाना जाता है । इस मंदिर के गर्भग्रह में बिहारी जी की मूर्ति स्थापित है अस्तु यह बिहारी जी के मंदिर के नाम से भी जाना जाता है।

इतिहास

इस मंदिर का निर्माण लाला पाहूलाल खत्री ने अपनी 'मानता' (मन्नत) के आधार पर कराया । कालपी निवासी मेहरे वंशोदभव् लाला पाहूलाल ठाकुरदास, गौरीशंकरऔर हीरालाल चार भाई थे । जिनमें से लाला ठाकुर दास के ही कन्हई प्रसाद नाम का एक पुत्र था और उसी पर सबकी वंशबृद्धि हेतु आशा थी । एक दिन दैवयोग से बालक कन्हई प्रसाद हवेली के चौमंजिले छज्जे से नीचे गिर पड़ा जिसके कारण पूरे परिवार के समक्ष अन्धकार हो गया ।

लाला पाहूलाल ईश्वर में आस्था रखने वाले व्यक्ति थे अतः उन्होंने यह मानता मानी कि यदि बालक कन्हई प्रसाद स्वस्थ हो जावेगा तो वे गोपाल बिहारी जी की मठ बनवायेगे और सन १७८५ (सवंत १८४१) में इस मंदिर का शिलान्यास हुआ तथा ६० वर्षों के अनवरत निर्माण के पश्चात् सन १८४४ में (सवंत १६०१) मंदिर में गोपाल जी की प्राण प्रतिष्ठा हुई।(२)

श्रीरूपकिशोर टण्डन के अनुसार अदलसराँय स्थित यह मन्दिर सवंत १६०३ तदनुसार सन १८४७ ई० सन १८४७ ई० में बनकर तैयार हुआ।(३)

श्री विन्देदीन पाठक के अनुसार इस मंदिर का निर्माण सवंत १८०२ तदनुसार सन १७४६ ई० में हुआ ।(४)

श्री अर्जुन सिंह तथा श्री अखिलेश विद्यार्थी के अनुसार भी इस मंदिर का निर्माण सन १७४६ ई० तदनुसार संवत १८०२ में हुआ था।(५) व (६)

श्री प्रतापनारायण पाण्डे के अनुसार यह एक प्राचीन मंदिर है (७)

इस मंदिर में एक शिलालेख भी प्राप्त हैं ।यह शिलालेख देवनागरी लिपि में है तथा इस पर निम्नानुसार अंकित है -

> "श्री गणेशाय नमः श्री गोपाल जी का मंदिर बनवाया लाला पाहूलाल हीरालाल , ठाकुरदास, गौरीशंकर खत्री मेंहरे निवासी कालपी के पुरा अदल सराय । गुरू नित्यानन्द जी । कारीगर गयाप्रसाद मिती कुआँर सुदी ११ रानौ संवत १८०२ । "

उपर्युक्त शिलालेख से स्पष्ट है कि इस गोपाल जी के मंदिर का निर्माण कालपी के मुहल्ला अदल सराँय के निवासी लाला पाहूलाल, हीरालाल, ठाकुरदास, गौरीशंकर खत्री ने अपने गुरू नित्यानन्द जी महाराज के निर्देशन में गयाप्रसाद कारीगर द्वारा क्वाँर सुदी ११ संवत १८०२ तदनुससार ई० सन ० १७४६ में कराया ।

वास्तुशिल्प

यह मंदिर विशाल व विस्तृत है । इसका मुख पूर्व की ओर है व यह एक शिखराकार मंदिर है । इसके अन्दर विस्तृत आँगन है।(८)

मंदिर के गर्भग्रह में मंदिर के अधिष्ठाता देव स्थापित है । इसी गर्भग्रह के ऊपर विशाल शिखर है । इस गर्भग्रह के उत्तरी तथा दक्षिणी ओर भी एक एक सहायक गर्भग्रह कक्ष स्थापित है । इन तीनों कक्षों के बाहर पूर्व की ओर दालानरूपी मण्डप स्थित है तथ इस मण्डप के पश्चात् पूर्व की ओर एक विस्तृत आँगन है । इस आँगन के उत्तरी ओर एक दालान स्थित है जिसमें भी कई प्रकार की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं । इस विशाल खुले आँगन के पूर्व की ओर पुनः

एक दालान है । खुले आँगन के दक्षिणी ओर भी एक दालान स्थित है । यह सम्पूर्ण मंदिर पृथ्वी से ६ फुट ऊँचे चबूतरे पर स्थित है । गर्भ ग्रह के ऊपर जहाँ विशाल शंकु आकार का शिखर स्थित है वहीं उत्तरी एवं दक्षिणी सहायक गर्भग्रहों पर आमलका कृति शिखर स्थित है जोकि ऊपर केन्द्र में कमल दल से आवेष्ठित हैं । मुख्य शिखर पर चारों दिशाओं में तीन तीन मेहरबदार दरवाजों से युक्त कोबिले स्थित है एवं गोल गुम्बदाकार शिखरों के चारों दिशाओं में भी चार चार द्वारों से युक्त छोटी छोटी कोविलें स्थित हैं । मंदिर की सभी दालानें मेहराबदार दरवाजों से युक्त हैं एवं आंगन में खुलते हैं । मंदिर के पूर्वी द्वार पर गणपति जी की मूर्ति एवं मंदिर के उत्तरी द्वार पर भगवान बुद्ध की मूर्ति स्थपित है । इस मंदिर के आँगन में व आँगन के ऊपर चारों ओर छज्जे पर विभिन्न मूर्तियाँ स्थापित हैं । इस देवालय को यदि मूर्तियों का एक अनुपम संग्रहालय कहा जाये तो अतिश्योक्ति न होगी।
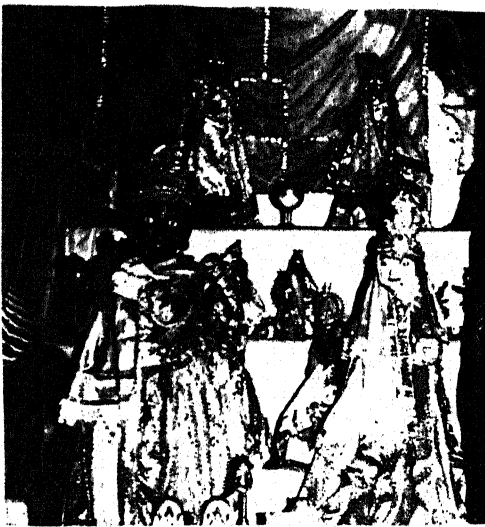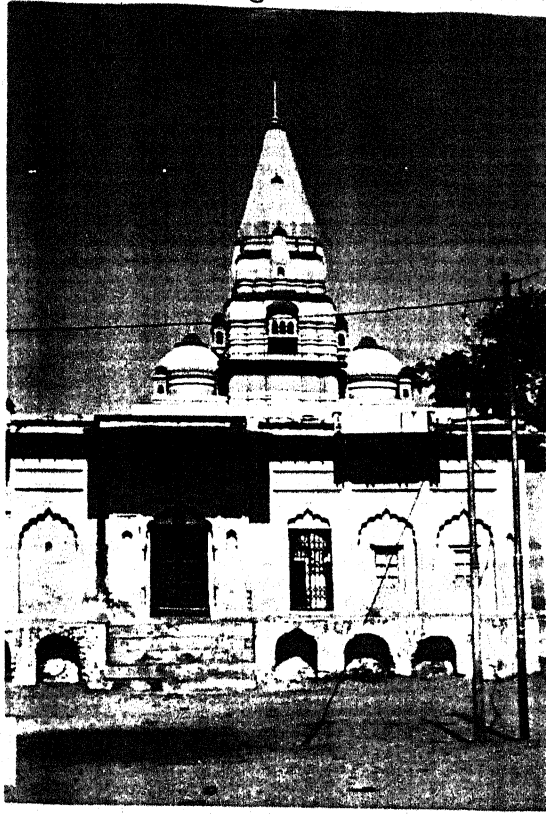
मूर्ति शिल्प -

इस मंदिर के गर्भग्रह में श्यामवर्ण की गोपाल जी की प्रतिमा व श्वेत वर्ण की राधाजी की प्रतिमा स्थापित है । गो-पालजी की प्रतिमा बासुँरी वादन मुद्रा में डेढ़ टांग पर आधारित त्रिभंग मुद्रा में सुन्दर द्विभुजी मूर्ति है एवं राधा जी की मूर्ति अत्यन्त मनोहारी प्रसन्न मुद्रा की मूर्ति है । गोपालजी की, राधाजी की चार चार मूर्तियाँ केन्द्रीय गर्भग्रह में एक सिंहासन पर आरूढ़ है । सिंहासन के आधार पर

उत्तरी एवं दक्षिणी ओर दोनों अग्रपादों के आधार पर बैठी मुद्रा में सिंह अंकित है ।

गर्भग्रह के दक्षिणी उपग्रह कक्ष में एकादश शिवलिंग स्थापित है एवं गर्भग्रह के उत्तरी उपगर्भग्रह कक्ष में दीवलों पर चारों ओर पत्थरों से निर्मित देवी मूर्तियों स्थापित हैं। गर्भग्रह की मूर्तियों को एवं शिवलिंग को छोड़कर इस मंदिर में जितनी भी मूर्तियाँ स्थापित हैं वे सभी लाल बलुआ पत्थर पर अंकित है(९)देवालय में कुल ६३ मूर्तियाँ हैं । जिनकी स्थिति नाम सहित संलग्न पृष्ठ पर अंकित है । इन मूर्तियों में दशानन, भगवान विष्णु आदि की मूर्त्तियाँ अद्वितीय है ।
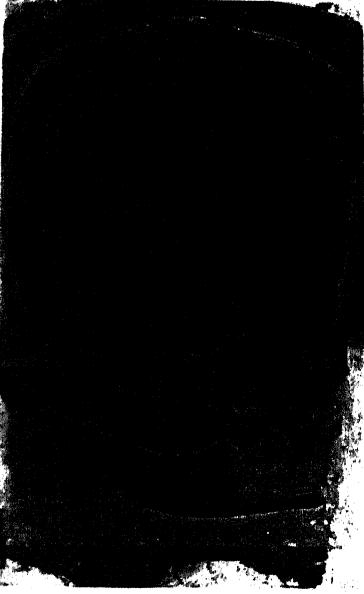
संदर्भ-सूची

१- कालपी महात्म - रूपकिशोर टण्डन पृष्ठ २७

२- व्यक्तिगत साक्षात्कार - श्रीमोती चन्द्र वर्मा (७५ वर्ष) दिनांक २८.११.९३

३- कालपी महात्म - रूपकिशोर पृष्ठ ६७

४- तीर्थ भूमि कालपी - बिन्देदीन पाठक पृष्ठ १५

५- सांस्कृतिक धरोहर - अर्जुन सिंह पृष्ठ ७

६- सा० लोक सेवा - (५ जनवरी १९९२) पृष्ठ ८

७- कालपी कीर्ति अंक - प्रताप नारायण पान्डे पृष्ठ ८०

८- युग युगों में कालपी - प्रो० के०डी० बाजपेयी पृष्ठ १४१

९- व्यक्तिगत साक्षात्कार - श्रीमोती चन्द्र वर्मा दिनांक २८ - ११- ९३

दिगम्बर जैन मन्दिर

जनपद जालौन में जैन एवं बौद्ध संस्कृति का पल्लवन एवं पोषण हुआ है इस तथ्य की पुष्टि कर्ता कालपी के सदर बाजार में स्थित दिगम्बर जैन मन्दिर अपना विशेष स्थान रखता है ।

इतिहास -

इस मन्दिर का निर्माण संवत १८६३ में श्री माखनलाल हरप्रसाद जैन द्वारा आध्यामिक चेतना के जागरण हेतु किया गया था जिसको बाद में जनसमुदाय हेतु प्रदान कर दिया गया इस मन्दिर में एक शिलालेख भी उपलब्ध है जिसमें यह अंकित है -

" श्री संवत १८६३ मिती बैशाख शुक्ल ३ दिने श्री मुक्तसंघे बलात्कारे गणे सरस्वती गच्छेण धर्मनाये श्री आचार्य कुन्द कुन्द आचार्य तत्याद पंकजे विकास भानु श्री महारक श्री जिनेन्द्र भूषण नो पदेसात् श्री ओसवाल वंशे गांधी गौत्र श्री लाला श्री चन्द्र तत्पुत्र ज्येष्ठ मन्त्री लाल , मध्यम पुत्र पलटी लाल लघु पुत्र पिस्सी लाल तयो ज्येष्ठ पुत्रस्य पुत्र गंगा प्रसाद मध्यम पुत्रस्य हरप्रसाद शंकर लाल लघु पुत्रस्य पुत्र माखन लाल नित्यं प्रणयेत् ।"

इस मन्दिर के नाम के विषय में कालपी के जैन समाज के अन्तर्गत यह लोकोप्ति भी प्रसिद्ध है कि - **वनवाया माखनलाल हरप्रसाद , मन्दिर बना अजूबा ठाट ।**

जैन मातावलम्बी के लोगो की उपस्थित के संदर्भ में जालौन जनपद गजेटियर में यह तथ्य अंकित है कि सन १६०१ में कालपी में १३३ जैन मतावलम्बी लोग थे।(१) यह जैन लोग पूरी तरह से वैश्य समुदाय के थे । जिनको बनिया भी कहा जाता है और जो समूचे जनपद में व्यापार करने के कारण फैले हुये थे । इस मन्दिर में प्रतिदिन प्रातः - सायं पूजन होता है । वर्तमान में यह मन्दिर श्री प्रताप चन्द्र गांधी के स्वामित्व में है।

स्थापत्य-

यह मन्दिर ६० फुट लम्बा एवं ३० फुट चौड़ाई के आकार में निर्मित है । जिसकी ऊँचाई लगभग ४० फुट है । इस मन्दिर का गर्भग्रह पूर्वाभिमुख है । परन्तु मन्दिर का प्रवेश द्वार पश्चिमाभिमुख है । पश्चिम की ओर से इस मन्दिर में प्रवेश करने में बरान्डा आता है और यह बरान्डा दक्षिण एवं पूर्व से उत्तर की ओर भी चला जाता है । इस बरान्डे के पश्चात एक खुला हुआ आँगन है जोकि सीधे - सीधे बरान्डे के साथ जुड़ता है । गर्भगृह के पूर्व की ओर

एक बरान्डा नुमा आराधना कक्ष है। गर्भग्रह की उत्तर की ओर एक चैत्य कक्ष है। जो कि गर्भ गह के सम्पर्क में है। गर्भग्रह का शिखर सुराहीदार लगभग २० फुट ऊँचा है। इस चैत्य कक्ष के पश्चिम में कई जैन मूर्तियाँ स्थापित है। यह खुला हुआ आँगन १६ फुट के वर्गाकार क्षेत्र में है। इस वर्गाकार आँगन का तालमेल बरान्डे के साथ स्तम्भों के ऊपर बना हुआ मेहराबदार दरवाजे से जुड़ा हुआ है। प्रत्येक दिशा में इस प्रकार के ३-३ स्तम्भ आधारित दरवाजे है। इस मन्दिर में तमाम पाषाण एवं धात्विकप्रतिमाये पुरात्त्व की दृष्टि से निधि रुप में संग्रहीत है।

मूर्ति शिल्प -

इस मन्दिर की कुछ विशिष्ट मूर्तियों का विवरण निम्नानुसार है -

१- **भगवान पार्श्वनाथ** :- इस मन्दिर में मुख्य मूर्ति -भगवान पार्श्वनाथ की है। जिसके ऊपर अनेक फनों वाले सर्प अंकित है। चरण चौकी में लाँछन सर्प अंकित है। यह मूर्ति २६ सें० मी० ऊँची व २३ से०मी० चौड़ी है। १५ वी शताब्दी में निर्मित यह मन्दिर भगवान पार्श्वनाथ की ध्यान मुद्रा को दर्शाती है। यह मूर्ति बहुमूल्य कलाकृति एंव पुरा सम्पदा विभाग की पंजीकरण सं० जे० एल० एन० यू० पी० १८३ द्वारा

पंजीकृत है। भगवान पार्श्वनाथ की ध्यान मुद्रा में बनी मूर्ति काले पत्थर द्वारा निर्मित है। इस मन्दिर में संग्रहीत विभिन्न पाषाण मूर्तियों का क्रमानुसार विवरण इस प्रकार है।
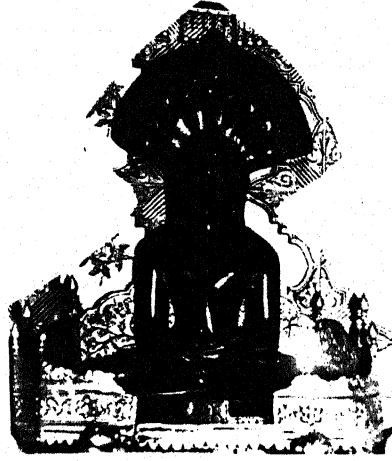
भगवान पार्श्वनाथ की एक अन्य मूर्ति श्वेत संगमरमर की बनी हुई है। उसके सिर पर सात फनों से युक्त सर्प अंकित है। चरण चौकी पर अस्पष्ट लेख है। यह मूर्ति १६वी शताब्दी की है। यह ३२ से०मी० ऊँची है एवं २० सेमी० चौड़ी है। इसकी पंजीकरण सं० जे. एल. एन. यू. पी. /१७३ है।

२- **भगवान शान्ति नाथ** :- यह प्रतिमा भगवान शान्ति नाथ की ध्यानस्थ प्रतिमा है। इसकी चरण चौकी पर भी अस्पष्ट लेख है। चरण चौकी में लाँछण हिरन स्पष्ट अंकित है। यह मूर्ति १६ वीं शताब्दी की है तथा इसकी ऊँचाई ३३ से०मी० तथा चौड़ाई २३ से०मी० है। इसका पंजीकरण सं० जे. एल. यू. वी.-/१६६ है। इस प्रकर की भगवान शांतिनाथ की एक अन्य प्रतिमा है जिसमें भी लाँछण मृग स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। यह मूर्ति १४वी शताब्दी

की थी । २६ सेमी० ऊँची तथा २७सेमी० चौड़ी है । मूर्ति की पंजीकरण सं० जे. एल. एन. यू. पी. /१७६ है ।

धात्विक प्रतिमायें - इस मंदिर में विशेष धात्विक प्रतिमायें मौजूद है। जिसमें **ऋषभनाथ** की ध्यानस्थ मुद्रा वाली मूर्ति अत्यन्त दुर्लभ एवं मनोहारी है । सिंहासन में विराज ऋषभनाथ बैठे हुए हैं । उनकी बांयी ओर दुंदभी बजाता हुआ देव, घट, लिये हुए हस्ती और मालाधारी विद्याधर तथा चामरधारी विद्याधर अंकित है । चरण चौकी पर सिंह व मंध्य में चक्र बने है । नीचे की ओर लक्षण चिन्ह बृषभ अंकित है । चरण चौकी के दोनों ओर प्रत्येक के दायी ओर गौमुख तथा बायी ओर चक्रेश्वरी देवी विराजमान है । चरण चौकी के नीचे का आसन अत्यन्त सुसज्जित है उसके दोनों और दो देवियाँ बनी

हुई है तथा उपासक एवं उपासिकाऐं आदि अंकित है । यह मूर्ति १८ सेमी० चौड़ी एवं २० से०मी० लम्बी है । इस मूर्ति पर चौकी के पीछे की ओर यह अंकन है : "संवत १३४७ वैसाख सुदी ६ पौष आदान मां सांस्वते श्री ·ी सूपक्ती सुन मुँह डार मोटा सुत का साँ प्रणामति । " यह मूर्ति १३ वी शताब्दी की है एवं इसकी पंजीकरण सं० जे. एल. एन. यू. पी. /१७० है ।
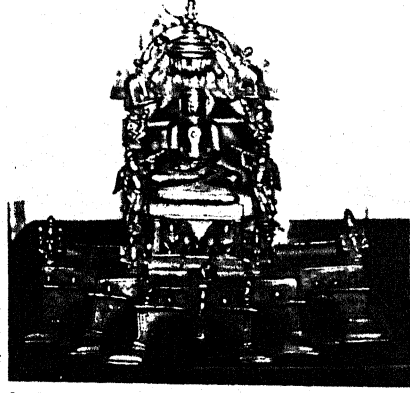
इस मंदिर में कागज के दो हस्त निर्मित अत्यन्त दुर्लभ चित्र भी है । जिसका विवरंण इस प्रकार है : " **प्रथम चित्र तीर्थकर के जन्म का है**। यह चित्र ४०X४५ सेमी० के आकार पर निर्मित है । इस चित्र पर इन्द्र के ऐरावत हाथी द्वारा तीर्थकर को सुमेर पर्वत पर स्थापित करना अंकित किया गया है । तथा वहाँ देवताओं द्वारा पूजन तथा दुग्ध स्नान का चित्रण किया गया है ।इस चित्र में रानी के प्रासाद कक्ष का चित्रांकन भी है ।

एक अन्य चित्र तीर्थकर के निर्वाण उत्सव का हस्त निर्मित है । जो ४१X३२ सेमी० के आकार पर निर्मित है । इस चित्र में चन्द्रमा रात्रि का घोतक बताया गया है । अन्य देवगण अपने-अपने विमानोसे स्वामी तीर्थकर निर्वाण उत्सव का आनन्द ले रहे हैं । दोनों ही हस्त निर्मित चित्रों में राजस्थानी शैली का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है ।

इसी दिगम्बर जैन मंदिर के पूर्व में श्वेताम्बर जैन मंदिर स्थित है । इसकी धातु की मूर्ति भी अत्यन्त दुर्लभ मूर्ति है और भगवान शान्तिनाथ की प्रतिमा इसमें विराजमान है । यह प्रतिमा सम्वत् १५११ की प्रतिमा है । कालपी में ही गणेशगंज मुहल्ले में एक अन्य दिगम्बर जैन मंदिर की स्थापना हुई जो कि जैन समाज द्वारा पोषित है ।

संदर्भ - सूची -

१- जालौन गजेटियर - डी० एल० ब्रोकमैन पृष्ठ संख्या १६७

बटाऊ लाल मंदिर

यह मंदिर मुहल्ला अदलसराय कालपी में स्थित है । हनुमान जी के एक अन्य नाम बटाऊ लाल से ख्याति प्राप्त यह अत्यन्त सिद्ध स्थान है।(१)

इतिहास

इस मंदिर का निर्माण लगभग ५०० वर्ष पूर्व हुआ था।(२) जिसे श्री बटाऊ लाल खत्री ने कराया था ।(३) इसलिए उनके नाम से इस मंदिर का नाम पड़ा । मंदिर के मध्य में शिवालय है । जिसमें शंकर जी पिण्डी घरूआ सहित स्थापित है । यह गर्भग्रह मुख्य धरातल से लगभग ५ फुट ऊँचा है । इस मंदिर में हनुमान जी की एक विशिष्ट मूर्ति भी स्थापित है (४) इस मंदिर की मान्यता सिद्ध स्थान के रूप में है(५) खत्री जाति के लोगों की यह मान्यता है , कि देवी को प्रसन्न करने के लिए माँ काली के समक्ष पशु बलि दी जाये (६) इससे इस मंदिर में पशु बलि भी दी जाती थी ।(७) महाराज विट्ठल देव स्वामी ने इस मंदिर में वर्षों तक अपनी आध्यात्मिक साधना की थी (८) जिसके कारण यह मंदिर विशेष रूप से जाग्रत हुआ । इस मंदिर पर भाद्रमाह के अन्तिम मंगलवार को विशाल मेला लगता है। (९)

स्थापत्य -

यह मंदिर चौकौर बना हुआ है । इसके मध्य में गर्भग्रह बना है । गर्भ ग्रह के चारों ओर परिक्रमा का खुला हुआ क्षेत्र है । इस खुले हुए क्षेत्र के बाद चारों ओर बरान्डा बना

है । जिसके उत्तर पश्चिम-दक्षिण कोने में गनेश जी की मूर्ति तथा दक्षिण-पूर्व के कोने में हनुमान जी की मूर्ति स्थापित है ।यह पूरा मंदिर पूर्वभिमुख है । गर्भग्रह की विमान रूपी सुराही लगभग २०० फुट ऊँची है।(१०) मंदिर के सामने कुंआ है तथा पीछे अखाड़ा है । मंदिर के चारों कोनों में ऊपर की ओर विमान के रूप में चार मठ बने हुए हैं । मठ के ऊपर कमल दल अंकित है एवं ऊपर शिखर बना है । मंदिर के गर्भग्रह में शंकर जी की शिवलिंग

प्रतिष्ठित है । गर्भग्रह १० फीट के वर्गाकार क्षेत्र में बना है । गर्भगृह की चारों दीवारों पर एक मेहराबदार दरवाजा है । चौकौर दीवार के ऊपर अष्टभुजी अंकन है । इस अष्टभुजी की प्रत्येक भुजा में एक-एक मेहराबदार अंकन है जिसमें प्रतिमाऐं बनी है । इन प्रतिमाओं में रावण की प्रतिमा विशेष रूप से दृष्टव्य है । उत्तर दिशा में अंकित रावण १६ भुजी है एवं सुन्दर पुष्प मुकुट धारण किये हुए हैं । उसके सामने दक्षिण दिशा में १६ भुजी रावण आसनारूढ़ है । पश्चिम दिशा में भगवान लक्ष्मीनारायण जी का अंकन है एवं पूर्व दिशा में गरूण पर भगवान विष्णु सवारी किएं हुए है और गरूण जी स्थानक मुद्रा में है । इस अष्ट भुजी पर गोल गुम्बदकार छत और छत के ऊपर विशिष्ट सुराही दार विमान अंकित है । गर्भग्रह लगभग २० फुट ऊँचा है मंदिर की दीवार २ फुट मोटी है ।

मंदिर का विमान विशेष रूप से दर्श-नीय है । इस विमान के पूर्व में गणेशजी पश्चिम भुजा में भैरव उत्तर में मां सिंहवाहिनी तथा दक्षिण में हनुमान जी की मूर्ति स्थापित है ।

यहाँ पर हनुमान जी की मूर्ति एक विशेष प्रकार की मुद्रा में है । जो लगभग आठ फुट ऊँची है । मूर्ति के दाहिने हाथ में गदा एवं बाये हाथ में धनुष है । इस तरह की यह एक अत्यन्त दुर्लभमूर्ति है और पैरों के नीचे २ राक्षसगणों का भी अंकन है । जो कि त्राहिमाम् बोल रहे हैं।
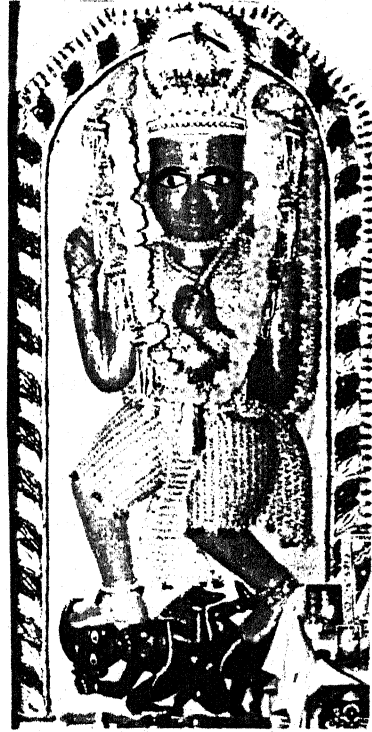
सन्दभ-सूची

१- कालपी महात्म -	रूपकिशोर टण्डन -	पृष्ठ सं०६७
२- कालपी क्षेत्र के प्राचीन मंदिर एवं स्मारक -	प्रंताप नारायण पाण्डे	पृष्ठ सं०८१
३- कालपी महात्म-	रूपकिशोर टण्डन	पृष्ठ सं०६७
४-तीर्थ भूमि कालपी -	विन्देदीन पाठक	पृष्ठ सं०१२
५- कालपी क्षेत्र के प्राचीन मंदिर एवं स्मारक-	प्रतापनारायण पाण्डे	पृष्ठ सं० ८१
६-व्यक्तिगत साक्षात्कार -	श्रीमोती चन्द्र वर्मा (७२वर्ष) दिनांक २८-१२-९२	
७- "	"	"
८- तीर्थ भूमि कालपी-	विन्देदीन पाठक	पृष्ठ १२
९- "	"	"
१०- कालपी क्षेत्र के प्राचीन मंदिर एवं स्मारक-	प्रतापनारायण पाण्डे	पृष्ठ सं० ८१

बड़ा स्थान

यह मंदिर कालपी के प्राचीन बाबन मुहल्लों में से एक प्रभावती मुहल्ले में स्थित है। (१) यह अत्यन्त प्राचीन मंदिर है और इस मंदिर में भगवान लक्ष्मीनारायण जी की मूर्ति स्थापित है।

इतिहास-

इस मंदिर का निर्माण लगभग ८०० वर्ष पूर्व हुआ था। (२) व्यक्तिगत रूप से सम्पर्क करने पर यह ज्ञात हुआ है कि यह मंदिर नागाबाबाओं का एक विशेष स्थान है, जो कि अखाड़े के नाम से जाना जाता है। (३) इसकी द्वितीय शाखा हैदलपुर में स्थित है। इसलिए ऐसी मान्यता है कि उज्जैन के राजा द्वारा इस मंदिर को आर्थिक सहायता प्रदान की गई थी (४) यह मन्दिर मरहठों का बनवाया हुआ है (५) इस मंदिर के साथ लगभग ८०० बीघा जमीन है। जिसमें से ४०० बीघा जमीन द्वितीय शाखा हैदलपुर में स्थित है (६) इस मंदिर के नाम जो भी काश्त है उसकी लगान औरंगजेब के समय से माफ थीं उसका प्रमाण लगानीकागजातों में मौजूद है (७) वर्तमान में मंदिर के मौजूद महन्त श्री रामलखन दास जी है।

वास्तुशिल्प -

मंदिर का मुख्य द्वार उत्तर की ओर होने के कारण यह उत्तराभिमुख है। इस मंदिर के पश्चिम में एक कुँआ है। मंदिर में शंकर जी, हनुमान जी तथा राधाकृष्ण जी की मूर्तियाँ है। मुख्य मूर्ति चतुर्भुजी भगवान विष्णु की है जिसके बायी ओर शक्ति श्री लक्ष्मी जी की मूर्ति प्रतिष्ठित है। यह दोनों श्वेत संगमरमर की बनी है। यह भी मान्यता है कि यह मंदिर कन्नौज के राजा हर्षवर्धन के समय बनाया गया था (८)

सन्दर्भ सूची

१- व्यक्तिगत सम्पर्क - श्री चन्द्रशेखर पुरवार पूर्व अध्यक्ष नगरपालिका कालपी दिनांक १३-७-६४
२- कालपी क्षेत्र के प्राचीन मंदिर एवं स्मारक- प्रेमनारायण पाण्डे पृष्ठ संख्या ८०
३- व्यक्तिगत सम्पर्क - श्री रामलखन दास जी महंत दिनांक १३-७-६४
४- " "
५- कालपी महात्म - रूपकिशोर टण्डन पृष्ठ संख्या ६६
६- व्यक्तिगत सम्पर्क - श्री रामलखन दास जी महंत दिनांक १३-७-६४
७- कालपी क्षेत्र के प्राचीन मंदिर एवं स्मारक - प्रेमनारायण पाण्डे पृष्ठ सं० ८०
८- व्यक्तिगत सम्पर्क - श्री चन्द्रभानु विद्यार्थी (८२) दिनांक १३-७-६४

गोपाल जी का मंदिर

यह मंदिर कालपी के सदर बाजार में स्थित है (१)

इतिहास-

इस मंदिर का निर्माण व्यक्तिगत आधार पर श्रीदीपचन्द्र दुलीचन्द महेश्वरी द्वारा कराकर उसे सामाजिक उपयोग हेतु समाज को समर्पित कर दिया गया (२) दीपचन्द्र दुलीचन्द्र महेश्वरी के पश्चात इस मंदिर का रख-रखाव मुक्ताप्रसाद उसके पश्चात् छेदीलाल तथा उनके बाद श्री कृष्ण तथा उनके पश्चात् नरसिंह दास और वर्तमान में श्री पूरनचन्द महेश्वरी कर रहे है (३) ई० सन् १६०२ -१६०३ के खसरे में इसका नाम हुकुमचन्द बल्द मुक्ताप्रसाद मालिक गोपाल जी मंदिर के नाम दर्ज है । इस प्लाट का खसरा नं०५७०-५७१ है जिसकी पैमाइस .२८ डेसीमल व १८ डेसीमल है इसके अन्दर भगवान श्रीकृष्ण की अष्टधातु की मूर्ति स्थापित है(४) जोकि लगभग डेढ़ फुट ऊंची है । कुछ लोगों की यह भी मान्यता है कि इस मंदिर में मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा पृथ्वीराज चौहान द्वारा की गई थी । परन्तु इसका कोई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं ।(५)

मंदिर का वास्तुशिल्प :-

यह मंदिर ३ खण्डों का है । इसमें निम्न (आधार) तल पर रहने युक्त रहायसी कमरें है । जिसमें पहले मंदिर के महन्त का निवास आदि था । दूसरे खण्ड में मंदिर प्रतिष्ठित है । यह मंदिर पूर्वाभिमुख है तथा गर्भग्रह सबसे पीछे स्थित है । गर्भग्रह के पूर्व की ओर मण्डप है जिसके उत्तरी दीवार में एक दरवाजा बना है तथा मन्दिर के पूर्व के ओर चौकोर खुला आँगन है जो कि तीन मेहराबयुक्त दरवाजों की सहायता से खुले आँगन से जुड़ता है । पूर्व की ओर एक अर्द्ध मण्डप है । इससे नीचे की ओर सीढी जाती है जिससे मन्दिर में आवागमन किया जा सकता है । मण्डप के दक्षिणी दिशा में एक कक्ष बना है । तथा खुले आँगन के भी दक्षिणी ओर एक बरान्डा है । गर्भ ग्रह के अन्दर सीढ़ियां है । जिनसे ऊपर तीसरे तल में पहुँचा जा सकता है। तीसरे तल में भगवान के भोग निर्माण हेतु रसोढ़ा था । रसोढ़ा से महन्त भोजन लेकर सीधे गर्भग्रह में आ सकता था जिससे भोजन प्रदूषण से बचा रहे तथा भगवान जी का भोग लगता था । तृतीय तल में सिर्फ यही रसोढा बना हुआ है । मन्दिर गर्भग्रह के ऊपर कोई विशेष अलग से विमान आदि नही है । परन्तु विमान के स्थान पर कोविल जैसा स्थान बना है और उसी के ऊपर शिखर स्थित है ।

गोपाल जी की मूर्ति का शिल्प -

मन्दिर के गर्भग्रह में भगवान गोपाल जी सुन्दर छबीली सी लगभग ड़ेढ़फुट ऊँची मूर्ति विराजमान है । यह मूर्ति अस्टधातु से निर्मित कही जाती है ।

सन्दर्भ सूची :-

१- व्यक्तिगत साक्षात्कार — श्री जगदीश पुरवार — दिनांक - १३-६-६४

२- व्यक्तिगत साक्षात्कार — श्री पूरनचन्द्र महेश्वरी — दिनांक १३-६-६४

३- ,, ,, ,,

४- कालपी क्षेत्र के प्राचीन मन्दिर एमं स्मारक - प्रेमनारायण पाण्डे — पृष्ठ सं० - ८१

५- व्यक्तिगत साक्षात्कार - श्री चन्द्रशेखर पुरवार भूतपूर्व अध्यक्ष नगरपालिका कालपी दिनांक १८ - ५-६४

लक्ष्मीनारायण का मन्दिर

यह मन्दिर कालपी के प्राचीन बाबन मुहल्लों(१) में से एक उदनपुरा नामक मुहल्ले में स्थित है।(२)

इतिहास -

यह मन्दिर ८०० वर्ष पुराना है (३) इस मन्दिर का निर्माण वैरागियों द्वारा कराया गया था (४) यह भी कहा जाता है कि वैरागी सन्त श्री मैकूदास ने यहाँ जीवित समाधि ली थी इस कारण यह अत्यन्त सिद्ध माना है (५) और संत मैकूदास जी की कृपा यहाँ सब दर्शनार्थियों को सहज सुलभ होती है। उदनपुरा प्राचीन काल में कायस्थों का मुहल्ला था (६) सम्भावना यह भी है कि इस मंदिर का निर्माण कायस्थों द्वारा किया गया हो (७)

स्थापत्य -

यह मंदिर पूर्वाभिमुख है। गर्भग्रह भी पूर्वाभिमुख है। गर्भग्रह के पश्चात् अन्तराल स्थित है और अन्तराल सेजुड़ा हुआ मण्डप है। इस मंदिर में निरन्धार का कोई स्थान नहीं है। मंदिर के वर्तमान स्वरूप के आधार से ज्ञात होता है कि इस मंदिर का जीर्णोद्वार लगभग ५० वर्ष पूर्व हुआ।

मूर्तिशिल्प -

इसमें भगवान विष्णु एवं उनकी माया लक्ष्मीजी की मूर्ति स्थापित है। भगवान विष्णु जी की मूर्ति श्वेत संगमरमर की बनी हुई जो लगभग डेढ़ फुट. ऊंची है यह मूर्ति चतुर्भुजी मूर्ति है। जिसके निचले हाथ में शंख ऊपरी हाथ में चक्र अंकित है। एवं दाहिने हाथ में गंदा एवं निचला दाहिना हाथ वरद् हस्त मुद्रामें हैं। इस हाथ के नीचे पुत्रवत् मानव अंकित है। इस मूर्ति के पूर्वी ओर लक्ष्मी जी की मूर्ति स्थापित है। इस मंदिर में हनुमान जी की अष्टभुजी मूर्ति स्थापित है जिसकी लोग बड़े श्रद्धा के साथ पूजा अर्चना करते हैं।

संदर्भ-सूची -

१- कालपी महात्म	रूपकिशोर टण्डन	पृष्ठ सं० २७
२- कालपी क्षेत्र के प्राचीन मंदिर एवं स्मारक-	प्रतापनारायण पाण्डेय	पृष्ठ सं० ७६
३- " "	"	"
४- " "	"	"
५- " "	"	"
६- " "	"	"
७- " "	"	"

पातालेश्वर मन्दिर

कालपी नगर में यमुना नदी के दक्षिणी किनारे पर कालपी किले के पश्चिमी भाग पर यह पातालेश्वर मन्दिर स्थित है । इस पातालेश्वर नाम के शिवलिंग की अत्याधिक मान्यता है (१) यह शिवाला किलागिर्द मुहाल में किले के समीप बना हुआ है जिसमें शिवजी की मूर्ति कुछ निचाई में स्थित है जहाँ बहुत ठंडक रहती है (२)

इतिहास -

यह अत्यन्त प्राचीन शिवाला है (३) इस पातालेश्वर मंदिर के नजदीक अग्रेजों का कब्रिस्तान है तथा यह मंदिर बहुत पुराना है (४)

यह मंदिर ५००० वर्ष से भी ज्यादा प्राचीन है । द्वापर में यही मूर्ति मणिकेश्वर महादेव के नाम से विख्यात थी । कालपी में जब किले का निर्माण हुआ तब गहराई में होने के कारण यही पातालेश्वर के नाम से पुकारा जाने लगा । किवंदन्ती के अनुसार कौरवों तथा पाण्डवों के गुरू द्रोणाचार्य जी ने पुत्र प्राप्ति हेतु इसी शिवलिंग का पूजन किया था जिससे भगवान शंकर ने प्रसन्न होकर उन्हें अश्वत्थामा नामक अमरत्व को प्राप्त पुत्र दिया (५)

इस मंदिर का निर्माण मराठा काल में हुआ था । इसके पकरोटे में श्री मणिकेश्वर जी का मंदिर है तथा पीछे वायीं ओर नाग मंदिर भी हैं जहाँ पर एक शिलालेख भी हैं जो पढ़ने में नहीं आता तथा सामने सीताराम जी की मठिया है (६)

मंदिर में लगे एक पट्ट के अनुसार यह मणिकेश्वर के नाम से जाना जाता है । यह मूर्ति ५००० वर्ष से अधिक प्राचीन है । इसका पूजन पाँडव गुरू द्रोणाचार्य ने पुत्र प्राप्ति हेतु किया था। (७) इस मंदिर में शिवलिंग की स्थापना है । जनश्रुति के अनुसार यह शिवलिंग स्वंयभू शिवलिंग हैं एवं इसका कोई पता नहीं है कि यह कितना गहरा है । शिवपुराण के सहस्त्रों नामों में मणिकेश्वर नाम भी मिलता है ।मंदिर निर्माण शैली से ऐसा प्रतीत होता है कि मंदिर का जीर्णोद्धार मरहठा काल में हुआ होगा । परन्तु यह मंदिर मरहठा काल से भी प्राचीन है । इस मंदिर की भौगोलिक स्थिति का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि यह मंदिर चन्देलकालीन कालपी किले के शेष बचे एक मात्र ध्वंसावशेष के बिल्कुल नजदीक है एवं किले से इसकी अधिकतम दूरी २०० मीटर होगी । कालपी का किला अत्यन्त विशाल था और उसकी विशालता की परिधि में इस मंदिर का आना स्वभवतः इंगित करता है कि यह मंदिर उस

काल में भी रहा होगा । इस पातालेश्वर शिवलिंग के गर्भग्रह के बाहर वृक्ष के नीचे भी एक शिवलिंग हैं ।

शिवालिंग वर्णन -

लाल बलुआ पत्थर से निर्मित २५ इंच ऊँचा एवं १२ इंच चौड़ा यह विशाल भव्य शिवलिंग पश्च गुप्तकाल का परिचय देता हैं । चित्रकूट में गुप्त गोदाबरी के द्वार पर भी इसी शिवलिंग से मिलता जुलता एक शिवलिंग स्थापित है ।

यह शिवलिंग एक लिंग के ऊपर बना है । जिसमें चारों दशाओं की ओर एक एक मुख अंकित हैं । चारों मुखों के ऊपर लिंग के अग्रभाग की भाँति शिश्न की आकृति एवं उसके ऊपर बाहय झिल्ली को एक चौतरफा गोल बेल के रूप में वर्गीकृत करके अंकित किया गया है।

इस शिवलिंग का प्रत्येक मुख चार वर्णों के प्रत्येक वर्ण का द्योतक है । प्रत्येक मुख के ऊपर जटामुकुट धारण है एवं ललाट के मध्य काम को नष्ट करने वाला तृतीय नेत्र अंकित है चारों मुखों का भाव शान्त है । इस क्षेत्र का यह अत्यन्त पुरातात्विक महत्व का शिवलिंग है ।

वास्तु शिल्प -

यह पातालेश्वर मंदिर दो कक्षों के समूह से निर्मित है तथा पूर्वाभिमुख है। पूर्वी कक्ष मण्डप की भाँति उपयोग में आता है एवं पश्चिमी कक्ष मंदिर का गर्भग्रह चौकोर है। इसमें ५ सीढ़ियों से नीचे उतर कर जाना पड़ता है । इस कक्ष के ऊपर षटकोणीय विमान है। जिसके ऊपर केन्द्र में कमलदल के मध्य कलश स्थापित है । गुम्बद एवं षृटभुजी आधार के सन्धि स्थल पर चारों ओर उठी हुई कमल की पंखुड़ियों अंकित है । इस गर्भग्रह के ऊपर षृटभुजी गुम्बद से अलग चारों कोनों पर एक एक ऊँचे आधार पर स्थित चतुर्भुजी ; चतुर्द्वारीय मठिया अंकित हैं । इस गर्भग्रह के बाहर पूर्व की ओर अर्चना मण्डप की गोल डाट की सादा छत हैं जिसके केन्द्र में कलश एवं पताका स्तम्भ लगा है ।

गर्भग्रह की ऊपरी वाह्य दीवाल पर तोड़ों पर आधारित एक छज्जा भी बना हैं जिसके ऊपर चौतरफा मेहराब अंकित हैं ।

मंदिरमहात्म-

इस मंदिर का महात्म निम्न शलोक से स्पष्ट है -

यत्रक्कापिमृतः कश्चित्तत्पाश्वान्तिक वाहिनीम् ।
कालिन्दी मनसाध्यायन बैकुण्ठे लभते स्थितम् ॥
ततः पूर्व दिशि भ्राजन्माणिक्येश्वर इत्यसो ।

राजते श्री महादेव : सर्वभीष्ट प्रदायकः ॥

इस मन्दिर की महात्ता तथा इसमें स्थापित मणिकेश्वर शिवलिंग का वर्णन हमें इस प्रकार मिलता है -

किं दानैः किं तपोभिश्च किं तीर्थर्वाहुश्रमैः ।
मणिकयेश्वरं सत्पुंण्य क्षेत्रं यावल सेव्यते । "

अस्तु जबतक माणिक्येश्वर (पातालेश्वर) पवित्र क्षेत्र का सेवन न किया जाय तब तक दान , तप , तथा तीर्थादि से जिनमे बहुत परिश्रम होता है , क्या लाभ ?

तत्र सचरंता पुंसां कार्य्य सिद्धिरलौकिकी ।
इहामुभ खावाप्तिभवेदत्र न संशयः ॥

अर्थात वहाँपर भृमण करने वाले पुरुषो की औलाकिक कार्य सिद्धि होती है । और यहाँ तथा परलोक में भी सुख की प्राप्ति होती है , इसमें सन्देह नही । (८)ऐसा प्रतीत होता है कि मन्दिर का जीर्णोद्धार मरहठा काल में हुआ होगा । परन्तु मन्दिर की भौगोलिक स्थित का अध्यन करने से ज्ञात होता है कि यह मन्दिर चन्देल कालीन कालपी किले के शेष बचे एक मात्र ध्वंसावशेष के बिल्कुल निकट है एवं किले से इसकी अधिकतम दूरी दो तीन र्फलांग होगी। कालपी का किला अत्यन्त विशाल था और उसकी विशालता की परिधि में इस मन्दिर का आना स्वाभावतः इंगित करता है कि यह मन्दिर चन्देल काल में भी रहा होगा ।

संदर्भ-सूची

१- जनपद जालौन - लेo हरीमोहन पुरवार पृष्ठ संख्या ८
२- कालपी महात्म लेo रूपकिशोर टण्डन पृष्ठ सं०६८
३- " " "
४- आईने कालपी मुंशी ख्वाजा इनायता उल्ला पृष्ठ सं० ७८
५- तीर्थ भूमि कालपी - लेo विन्देदीन पाठक पृष्ठ सं० १४
६- कालपी कीर्ति अंक- कालपी क्षेत्र के प्राचीन मंदिर एवं स्मारक - लेo प्रतापनारायण पाण्डेय
७- मंदिर में लगा एक सूचना पट्ट
८- तीर्थ भूमि कालपी - विन्देदीन पाठक पृष्ठ सं० ६

व्यास क्षेत्र

जालौन जनपद के कालपी परगना में स्थित है यह व्यास क्षेत्र । यह कालपी २६° ८° उत्तर व ७६° ४५° पूर्व में यमुना नदी दक्षिणी किनारे पर बसी है (१)

वेदव्यास ऋषि का सम्बन्ध इस क्षेत्र से होना प्रमाणित करता है कि आर्य सभ्यता के प्रारंभ काल से ही यह स्थान आर्यों के रहने का स्थान था ।(२)

कालपी नगर के पश्चिम उत्तर में व्यास क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध क्षेत्र महर्षि व्यास का जन्म स्थान माना जाता है।(३)
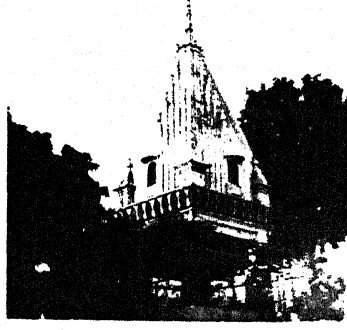
महर्षि वेदव्यास की जन्मस्थली होने के कारण ही यह क्षेत्र व्यास क्षेत्र के नाम से जाना जाता है । इसी क्षेत्र में व्यास जी द्वारा पुराणों की रचना की गई थी । इसी कारण श्रीनारायण चतुर्वेदी का कथन है -

" पाथतीं जहाँ हों देवि गोबर के कन्डे आज,
व्यास ने वहाँ ही तो पुराणों को बनाया था"।।(४)

इतिहास-

जालौन जिले में यमुना नदी के तट पर बसी कालपी नगरी में एक स्थान व्यास क्षेत्र है जहाँ पर बैठकर महर्षि वेदव्यास ने अपने अमर ग्रन्थों की रचना की थी ।(५)

कालपी में यमुना नदी में जोंधर नाम की नदी जिस स्थान पर मिलती है , वह स्थान व्यास क्षेत्र कहलाता है । इस व्यास क्षेत्र से लेकर दक्षिण पूर्व गुलौली ग्राम तक किसी समय कालपी की बस्ती बसी हुई थी ।(६) कालपी में पहले ५२ मुहल्ले थे जिनमें से एक मुहल्ला व्यास क्षेत्र भी था (७)कालपी एक ऐतिहाससिक प्राचीन नगर है जहाँ वेदव्यास जैसे महापुरुष ने जन्म लिया था तथा वेद पुराण दर्शन आदि की रचना कीं थी।(८)

भगवान व्यास की जन्मभूमि कालपी में आकार मैं भाव विहवल हो गया । भगवान व्यास आर्यत्व की मूर्ति थे । आर्यत्व के एक आदि संस्थापक के पौत्र माछी मात्र के दौहिज, वे भारतीय जातियों के मिश्रण के प्रतीक थे । छिन्न भिन्न हुए वेदों को उन्होंने एकत्र किया , संस्कृति के अव्यक्त मूल्यों को व्यक्त किया और अपनी संस्कृति को सातत्य दिया । पांडव

कौरवों के वे पितामह थे । महाभारत युद्ध का काल जिसमें ही भारतीय जीवन पल्लवित हुआ उस समय वे पूज्य और प्रेरक थे । भगवान श्रीकृष्ण की महत्ता उन्होंने देखी । उनका प्रचंड व्यक्तित्व शब्दों द्वारा मूर्तिमान किया । उनके संदेश को शब्द देह देकर मानव उद्धार के लिए अमर कर दिया। जो सनातन थे उनको अपनी शब्द संजीवनी के द्वारा फिर से सनातनत्व दिया । भारत का सामुदायिक मानस व्यासजी ने बुना है । तीन हजार वर्ष पूर्व उनकी साहित्य शक्ति से रचे हुए जीवन और आदर्श ने ताने बाने दिये हैं । भगवान व्यास ही भारत के गढ़ने वाले उसके अधिष्ठाता और प्रणेता है । भगवान व्यास जगत के आद्य हो गये हैं । उन्होंने अनुभव किया , सिखलाया कि मनुष्य मात्र में देवी अंश है । भगवान श्री वेदव्यास जी के जन्म स्थान की रज अपने सिर पर चढ़ाकर मैं कृतार्थ होता हूँ । यह अधिकार प्राप्त होने पर मेरे सौभाग्य की सीमा नहीं है और फिर मैं अपनी अंजलि देता हूँ ।

"अचतुर्वदनो ब्रहमा द्विबाहु परोहरि : ।
अभाल लोचन : शम्भुर्भगवान् बादरायण : ॥
व्यासाय विष्णु रूपाय व्यासरूपाय विष्णवे ।
नमो वै ब्रह्महृदये वसिष्ठाय नमोनमः ॥" (९)

यह अत्यन्त प्राचीन जनश्रुति है कि महर्षि व्यास का सम्बन्ध कालपी से था । वर्तमान कालपी नगर के समीप ही यमुना तट पर स्थित व्यास क्षेत्र अब भी इसकी स्मृति को जाग्रत किये हुए है ।

कालपी के उत्तर पश्चिम में मदारपुर (प्राचीन मत्स्य गंधापुर) व्यास क्षेत्र है । यहाँ यमुना में जोंधर नामक एक नाला मिलता है , इस नाले का पुराना नाम व्यास गंगा बताया जाता है । बरसात के दिनों में इसका वेग और विस्तार काफी बढ़ जाता है । इसके कारण व्यास क्षेत्र की ऊँची भूमि का एक बड़ा भाग कट कर कर गिर गया है । व्यास क्षेत्र पर पहले व्यासजी का एक मंदिर बताया जाता था जो कुछ वर्ष पूर्व गिरकर नष्ट हो गया है । इस मंदिर के कुछ अवशेष अब भी व्यास टीले पर देखे जा सकते हैं ।

व्यास जी पुराणों तथा महाभारत के रचियता के रूप में ख्याति प्राप्त हैं । इनके पिता का नाम पाराशर व माता का नाम सत्यवती था । कालपी से कुछ दूर पर परासन का गाँव अब भी व्यास पिता की स्मृति जाग्रत किये हैं (१०)

वैदिक ग्रन्थों व महाभारत के अनुसार महर्षि वेदव्यास का जन्म यमुना के संगम तट पर हुआ था । बसंत पंचमी को यमुना नदी व व्यास नदी के संगम स्थान पर प्रतिवर्ष मेले का आयोजन श्रद्धालुओं के महान आकर्षण का केन्द्र हैं (११)

पुराणों के वर्णन से यह ज्ञात होता है कि कालपी का अस्तित्व अति प्राचीन है । महर्षि वेदव्यास की जन्मभूमि कालपी अपना एक गौरवपूर्ण इतिहास रखती है । (१२)

वेदों के रचयिता वेदव्यास जी का जन्म कालपी में हुआ था आज भी बड़े स्थान के पास व्यास टीला बना हुआ है । यहीं पर यमुना में समर्पण करने वाली एक नदी भी दिखाई देती है जिसे व्यास नदी कहते हैं। (१३)

कालपी में जोंधर नाला के पास व्यास टीला है । कालपी के लोगों की मान्यता है कि व्यास टीला भगवान व्यास का आश्रम स्थान है । यहाँ के लोगों की यह भी मान्यता है कि प्रलयकाल के समय इसी जोंधर नाले के पास से एक मोटी जलधारा निकलेगी जोकि समूचे विश्व को जल मग्न कर देगी। (१४) महर्षि वेद व्यास की जन्मस्थली हमीरपुर है। (१५)

उपर्युक्त को दृष्टिगत रखते हुए यह कहा जा सकता है कि भगवान वेदव्यास की जन्मस्थली यह व्यास क्षेत्र है जहाँ पर उन्होंने पुराणों की रचना की है । कवि कथन है -

" ब्रहम वशिष्ठ पितामह ने रघुराम से है धनुर्धारी बनाये ।
देवी अरून्धती के संग, तारक पुन्ज के मन्जु निकुन्ज में छाये ॥
वेत्रवती तट पितृ - पराशर ने स्मृति - ज्ञान के गान बहाये ।
जन्म भू कालपी कालिन्दी कूल पै , व्यासजी पंचम वेद लै आये ॥ (१६)

कवि द्वारा प्रस्तुत तथ्यानुसार भगवान वेदव्यास का जन्म भी कालपी में हुआ था तथा चारों वेदों के अलावा पाँचवे वेद की मान्यता प्राप्त 'महाभारत' का सृजन भी कालिन्दी (यमुना) के तट पर ही हुआ । हमीरपुर पहले कालपी के मुहाल में ही सम्मिलित था और कालपी हमीरपुर के मध्य यमुना नदी के आधार पर मात्र ३० मील का ही अन्तर है (१७) अतः भगवान वेदव्यास का जन्म कालपी में ही मानना तर्कसंगत होगा ।

वेदव्यास परिचय -

भगवान वेदव्यास महर्षि पाराशर व योजनगंधा के पुत्र थे । उनके जन्म के विषय में यह उल्लेख मिलता है कि एक बार धीवर कन्या मत्स्यगंधा जिसे सत्यवती कहते थे को देखकर पाराशर मुनि आसक्त हो गये । दिन में बिहार करना निषिद्ध होने के कारण उन्होंने कुहरा खड़ा कर दिया और मत्स्यगन्धा के शरीर से मत्स्य की दुर्गन्ध को दूर करके सुगन्धित कर दिया जिससे मत्स्यगन्धा-योजनगन्धा, कहलाने लगी । व्यासजी, इसी योजनगन्धा सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न पुत्र हैं । नदी के बीच एक टापू पर जन्म होने के कारण इन्हें ''द्वैपायन'' तथा काला रंग (वर्ण) होने के कारण "कृष्ण " कहते हैं। (१८)

स्वयं भगवान विष्णु पराशर ऋषि के पुत्र रूप में द्वैपायन नाम से उत्पन्न हुएअतः

"यस्य द्वैपायनः पुत्रः
स्वयं विष्णु रजायत ।" (१६)

वेदव्यास ज़ी के जन्म के समय एवं स्थिति का यह भी विवरण मिलता है कि ऋषि पाराशर ने कोहरे के मध्य सत्यवती की अनुकूलता पाकर यमुना में स्नान किया एवं वहां से तुरन्त पधार गये । सत्यवती भी अपने पिता के घर लौट गयी । उसी क्षण उसे गर्भ रह गया । समयानुसार सत्यवती ने यमुना के द्वीप में ही पुत्र उत्पन्न किया (२०)

एक अन्य कथानुसार मत्स्यगन्धा ने ऋषि पाराशर से सुगन्ध का वर पाकर हर्षोल्लास से भरकर ऋषि पराशर का संयोग प्राप्त किया और तत्काल ही एक पुत्र को जन्म दिया । यमुना के द्वीप में अत्यन्त शक्तिशाली पाराशर नन्दन व्यास प्रकट हुए । वे वाल्यावस्था में ही यमुना के द्वीप में छोड़ दिये गये थे इसलिए 'द्वैपायन' नाम से प्रसिद्ध हुए । अतः

"इति सत्यवती हृष्टा लब्ध्वा वरमनुत्तमम् ।
पराशरेण संयुक्ता सद्यो गर्भे सुषाव सा
जज्ञे च यमुना द्वीपे पराशर्यः स वीर्यवान ॥
स मातरमनुज्ञाप्य तपस्येय मनो दधे ।
स्मृतोऽ हं दर्शयिष्यामि कृत्योष्विति च सोऽब्रबीत् ॥
एवं द्वैपायनो जज्ञे सत्यवत्यां पराशरात् ।
न्यस्तो द्वीपे स यद् बालस्तस्माद् द्वैपायन : स्मृत : ॥
ततः सत्यवती हृष्टा जगाम स्वं निवेशनम । (२१)
महर्षि वेद व्यास का जन्म यमुना के संगम तट पर हुआ था। (२२)

महर्षि वेदव्यास जी का जन्म यमुना जोंधर नदी (व्यास गंगा) व यमुना नदी के संगम पर हुआ था यतः

व्यास जन्म सरित्कृष्ण बल्लभासंङ्ग में तुयः
दीपान्प्रज्वालयेत् भक्तया ब्रहमलोक भवांप्रुयात ।(२३)

कालपी में अष्टांगयोग , सांख्य तथा पुरश्चरणादि की सिद्धि क्षणमात्र में हो जाती है । यहीं पर वासवी (सत्यवती) ने पाराशर से ब्रहमसूत्र के रचने वाले तथा भारतादि पुराणों के बनाने वाले वेदव्यास जी को पुत्ररूप से पाया था । जो कि निम्नानुसार है -

अष्टाङ्गस्य च सांख्यस्य पुरश्चर्यादि सत्कृते : ।

क्षणेनैकेन संसिद्धिः कालप्यां जायते ध्रुवम् ॥

ब्रहमसूत्रप्रणेतांर कर्तारम् भारतादिकान् । "

वेदव्यासं सुतं लेभे वासत्यत्र पराशरात् ॥ " (२४)

शिवपुराण में भी वेदव्यास के जन्म के विषय का कथानक वर्णित है।

संदर्भ-सूची

१- जालौन गजेटियर - डी०- ड्रेक ब्रोकमेन पृष्ठ सं०१५७

२- कालपी महात्म रुप किशोर टण्डन पृष्ठ सं० - १व २

३- " " "

४ - पुरातन गाथाओं का शहर कालपी - राजेन्द्र कुमार पृष्ठ सं०४

५- डायरी - उत्तर प्रदेश सरकार की सूचना विभाग द्वारा प्रकाशित वर्ष १९५४ पृष्ठ सं० १२

६- कालपी महात्म रुप किशोर टण्डन पृष्ठ सं० २५

७- " " पृष्ठ सं० २७

८ - राज्यपाल उत्तर प्रदेश श्री बी० सत्य नारायण रेड्डीद्वारा १७ जुलाई १९९० को हिन्दी भवन कालपी में दिये गये भाषण का अंश ।

९- राज्यपाल - उत्तर प्रदेश - महामहिम श्री कन्हैया लाल माणिक लाल मुंशी द्वारा दिनांक ३० जनवरी १९५३ को हिन्दी भवन में महर्षि वेदव्यास स्मारक का शिलान्यास करते हुए दिये गये अभिभाषण का एक अंश ।

१०- युग युगों में कालपी - प्रो० कृष्ण दत्त बाजपेयी पृष्ठ १४०

११- सा० लोकसेवा - दिनांक १२ जनवरी १९९२ "स्मृतियों की छाँव में वसी कालपी "अखिलेश विद्यार्थी पृष्ठ ८

१२- कालपी का इतिहास - व्यास वाणी पत्रिका, राधाकान्त पाण्डेय पृष्ठ सं० ३५-३६

१३- पर्यटकों का आकर्षण जनपद जालौन 'सहयोग' पत्रिका संतोष कुमार पाठक पृष्ठ सं० ६७

१४- कल्याण तीर्थांक - गिरधारी लाल खरे पृष्ठ संख्या ११३

१५- कालपी महात्म - श्री निधि द्विवेदी, पृष्ठ १४६

१६- साप्ताहिक लोकराज - रतन लाल अग्रवाल १ जुलाई १९५८

१७- साप्ताहिक लोकसेवा - " महर्षि वेदव्यास का जन्म स्थान - कालपी" चन्द्रकिशोर दुबे - पृष्ठ सं० ३

१८- पौराणिक कोष - स० राणा प्रसाद शर्मा पृ ष्ठ सं ख्या ४८२

१९- मत्स्य पुराण -अध्याय सं०२०१ शलोक सं० ३१ - पृष्ठ सं० ८३५

२०- संक्षिप्त देवी भागवतांक - द्वितीय स्कन्ध पृष्ठ सं० ७९

२१- महाभारत - आदिपर्व - तिरसठँवा (६३) अध्याय श्लोक संख्या ८३ से ८६ तक

२२- सा० लोकसेवा -१२ जनवरी १९९२ - स्मृतियों की छांव में बसी कालपी ले० अखिलेश विद्यार्थी पृष्ट सं० ८

२३- तीर्थ भूमि कालपी - विन्देदीन पाठक पृष्ठ सं० ८

२४- ब्रहमाण्ड पुराण - श्री बालेनदुशेखर श्री गंगाधर गोविन्दात्मज श्री नारद व्यास सम्वादे श्री व्यास सरितकालिन्द संगम प्रभाव प्रथम अध्याय । श्लोक संख्या ३२ व ३८ ।

कुम्भज ऋषि आश्रम कुरहना

जनपद जालौन की कालपी तहसील के अन्तर्गत उरई से उत्तर - पूर्व की ओर ३२ किलो मी० की दूरी पर यह ग्राम कुरहना बसा हुआ है । इस ग्राम के विषय में यह जनश्रुति है कि कुंभज ऋषि का आश्रम यहीं पर था ।

इतिहास -

महाभारत में कुंभज ऋषि का वर्णन मिलता है । कुम्भज और वशिष्ट मुनि दोंनो भाई भाई थे तथा मित्रावरूण की संतान थे । इनके विषय में कथानक प्रसिद्ध है कि भगवान शंकर अपनी शक्ति सती के साथ त्रेतायुग में उनके आश्रम में गये थे । जहां पर ऋषि द्वारा , इनको अखिलेश्वर जानकर इनकी पूजा की गयी । यह वृतांत रामचरितमानस में इस प्रकार वर्णित है ।

एक बार त्रेतायुग माहीं , सम्भु गये कुम्भज ऋषि पाहीं ।

संग सती जग जननि भवानी , पूजे ऋषि अखिलेश्वर जानी। (१) इन कुम्भज ऋषि के बारे में यह पौराणिक कथन है कि ये विन्ध्याचल पर्वत को पार कर दक्षिण - भारत की ओर गये थे और वहीं पर अगत्स्य ऋषि नाम से प्रसिद्ध हुए । इन्हीं अगत्स्य मुनि ने समुद्र के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने हेतु उसके जल को अपने पेट में समाहित कर लिया था । इसलिए इनको अगत्स्य मुनि के नाम से जाना गया । रामचरित् मानस में यह वर्णन दृश्ट्व्य है कि

कहँ कुंभज कँह सिन्धु अपारा । सोषेउ सुजसु सकल संसारा ॥

रवि मंडल देखत लघु लागा । उदयँ तासु तिभुवन तम भागा ॥ (२)

अस्तु यह स्पष्ट है कि कुंभज ऋषि और अगस्त्य अलग अलग नहीं थे वरन् दोंनों एक ही थे । मान्यता के अनुरूप कुरहना में ही इनका आश्रम था । जहाँ पर उन्होंने या तो अपना चर्तुमास मासव्यतीत किया हो अथवा अपनी तपस्थली बनाया होगा । इस ग्राम में दो प्राचीन मठियाँ है जो कि शंकरजी एवं पार्वतीजी की मठियाँ है । यहीं स्थानीय श्रद्धालुओं द्वारा श्वेत संगमरमर की कुम्भज ऋषि की मूर्ति स्थापित की गई है । कुम्भज ऋषि की मठिया का जीर्णोधार अभी निकट में कराया गया है जबकि इनके सामने ही शंकर जी तथा पार्वती जी की मठियाँ है , जिनका जीर्णोधार अभी नहीं हुआ है ।

वास्तुशिल्प -

शंकर जी की मठिया अन्दर से वर्गाकार है। अष्टभुजी आधार पर अर्द्धगोल गुम्बद बना है जिसके ऊपर मध्य में कमलदल का अंकन है और उस कमलदल में कलश

स्थापित है। मठिया की वर्गाकार चारों भुजाओं के मध्य में एक एक मेहराबयुक्त दरबाजा बना हुआ है जिसके दोनों सिरों पर २-२ आले अंकित है। मठिया लगभग २५ फुट ऊँची है। वर्ग की प्रत्येक भुजा १४.५ फुट लम्बी है। दीवार २ फुट चौड़ी है तथा इसका दरवाजा ६, १।२ फुट ऊँचा एवं २, १।२ फुट चौड़ा है। इस मठिया की दीवारों पर चूने का प्लास्टर है। मठिया के कोने में मेहराब का अंकन है और ऊपर ८ आले बने हुए है। छत पर बेलबूटों का अंलकरण है। इसमें प्रयुक्त ईटें हल्की एवं मोटी हैं। यह मठिया पूर्वाभिमुख है।

शिवलिंग - भगवान शंकर का शिवलिंग ग्रेनाइट पत्थर से बना हुआ है। जिसके बारे में यह मान्यता है कि इसकी गहराई के विषय में कोई जानकारी प्राप्त नहीं है। परन्तु वर्तमान अर्घे में यह गोल लिंग जिसका व्यास ११.५ फुट तथा ऊँचाई १ फुट स्थापित दिखता है।

पार्वतीजी की मठिया - यह मठिया भी वर्गाकार है। जिसपर अष्टभुजी आकार की अर्द्धगोल छत बनी है जिसके मध्य में कमल दल का अंकन है। इसमें प्रयुक्त ईटें पतली परन्तु अत्यन्त हल्की है। चूने के प्लास्टर पर बेलबूटों का बाहर की ओर से अंलकरण स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। पार्वती जी की मठिया एक चौकोर चबूतरे पर बनी हुई है। जो कि जमीन से लगभग ३ फुट ऊँची है। मठिये के वर्ग की भुजा १२, १।२ फुट लम्बी है। दरवाजा ५ फुट २ इंच ऊँचा व २ फुट ६ इंच चौड़ा है। दीवार की चौड़ाई मय प्लास्टर ३, १।२ फुट है।

मूल्यांकन -

दोनों मठिया अत्यन्त प्राचीन है एवं उनको देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि ये मठियाँ लगभग १६ वीं, १७ वीं शताब्दी के आस पास की होनी चाहिये। इसके सामने

प्राचीन बजरी पत्थर के कुछ खण्ड भी पड़े हैं तथा एक चबूतरे पर कुछ खण्डित पाषाण प्रतिमाएं भी पड़ी है । खण्डित पाषाण प्रतिमाओं को देखने से यह आभास होता है कि यह प्रतिमाएं ६वी, १०वीं शताब्दी के आस पास की होनी चाहिये । मठियों तथा खण्डित मूर्तियों को देखने स यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह स्थान प्राचीन स्थान रहा होगा । किन्तु मूर्तियों का मूर्ति शिल्प हमें ६वीं, १०वीं, शताब्दी के काल में ले जाता है। इसके पश्चात दैवी आपदाओं विध्वंशकारी प्रवृतियों के कारण ये नेस्तनाबूद हुए होंगे परन्तु जन आस्थाओं का सम्बल पाकर पुनः १६वी, १७ वी, शताब्दी में जीर्णोधार हुए होगे और आज वर्तमान में पुनः जीर्णोधार की उत्कंठा अपने मन में संजोये समाज की आस्थाओं का परीक्षण कर रहे है । ब्रहमाण्ड पु राण में वर्णित चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत कालपी महात्मं में भी इस क्षेत्र का उल्लेख हुआ है ।

यहाँ स्थानीय स्तर पर शंकर जी की मठिया के विषय में यह लोकोक्ति है कि आज से लगभग २५-३० वर्ष पूर्व कुछ अपराधिक प्रवृत्तियों के लोगों को जो भगवान शंकर के शिवलिंग को उखाड़ कर उसके नीचे दबे हुए धन की प्राप्ति की इच्छा रखते थे, उन्हें यहाँ पर खींच लाई और इन अपराधिक प्रवृत्तियों वाले व्यक्तियों द्वारा पिण्डी की खुदाई की गयी तथा उसमें उन्हें न तो कोई छोर मिला और न ही धन की प्राप्ति हुई बल्कि उस समय भगवान शंकर का वाहन एक बृषभ वहाँ पर आ गया और इन बदमाशों को वहाँ से खदेड़ दिया । तब से यहाँ पर इस प्रकार की घटना की पुर्नरावृत्ति नहीं हुई। (३)

संदर्भसूची -

१- रामचरित मानस - गोस्वामी तुलसीदास - बालकाण्ड दोहा संख्या ४७

२- " " "

३- व्यक्तिगत साक्षात्कार श्री रामशंकर द्विवेदी एडवोकेट हाईकोर्ट दिनांक १३-५-६४

सूर्य मंदिर कालपी

यह मंदिर कालपी के पूर्व की ओर स्थित ग्राम गुलौली में विद्यमान था। आज उसके भग्नावशेष रह गये हैं। यह गुलौली ग्राम यमुना के दक्षिणी किनारे पर बसा हुआ है। विश्व के सभी देशों में सूर्य की मान्यता आदि काल से चली आ रही है। आदि मानव ने भी किसी न किसी रूप में सूर्य के प्रति अपना मस्तक झुकाया है। सूर्य की मान्यता को देखते हुए अनेकानेक भारतीय राजाओं ने अपनी मुद्राओं पर सूर्य अंकित किया है। ३००-४०० वर्ष ईसा पूर्व के आहत सिक्के जिनमें सूर्य चक्र के रूप में अंकित है, इस बात के स्पष्ट उदाहरण है कि प्राचीनकाल से ही मानव समाज सूर्य के प्रति नमस्तक रहा है।

इतिहास -

प्रसिद्ध पुरातत्ववेता प्रो० कृष्णदत्त बाजपेयी के अनुसार, " पूर्व प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में सूर्य के महत्व काबहुसंख्यक उल्लेख है। इस प्रकार अन्य वैदिक साहित्य रामायण, महाभारत, पुराण, ग्रन्थ तथा परवर्ती संस्कृत प्राकृत आदि के साहित्य में सूर्य के प्रति सम्मान की महती भावना दृष्टव्य है। सूर्य की विविध संज्ञाये - सविता, आदित्य, विवस्वानू, भानु, प्रभाकर, कालप्रियनाथ आदि प्रसिंद्ध है। सूर्योदय के पहले से लेकर सूर्यास्त के बाद तक भानु के जो विविध रूप होते हैं उनके रोचक वर्णन कवियों, नाटककारों , कथाकारों आदि ने किये।" (१)

सूर्य मंदिर की स्थापना के संदर्भ में यह वर्णन मिलता है कि द्वापर युग में नारद मुनि के भड़काये जाने पर श्रीकृष्ण ने अपने पुत्र शाम्ब को कोढी होने का श्राप दे डाला। शाम्ब की प्रार्थना पर नारदमुनि ने शाम्ब को सूर्योपासना के माध्यम से सूर्यदेव को प्रसन्न कर अपने कोढ़ के कारण हुई कुरूपता समाप्त करने का उपाय बतलाया। शाम्ब ने मुनि के बताये अनुसार सूर्य की उपासना द्वारा सूर्य देव को प्रसन्नकर लिया तब सूर्यदेव ने शाम्ब से कहा कि तुम्हें शीघ्र ही नदी में तैरती एक प्रतिमा मिलेगी जिसे तुम मूल स्थान (आजकल का मुल्तान पाकिस्तान) में स्थापित कर देना। शाम्ब को स्नान करते समय चन्द्रभागा नदी में सूर्य की प्रतिमा मिली, जिसके विषय में सूर्यदेव ने बतलाया कि प्रतिमा का निर्माण कल्पवृक्ष द्वारा विश्वकर्मा ने किया है। सूर्यदेव ने शाम्ब से कहा कि -

सानिध्यं मम पूर्वने सुतीरे द्रक्ष्यते जनः ।
कालप्रिये च मध्याने अपराहने चात्र नित्यशः॥

अर्थात् लोग मेरी उपस्थिति पूर्वान में मुतीर में , मध्यान्ह में कालप्रिय में तथा अपरान्ह में इस स्थान में अर्थात् मूल स्थान में देखेगे । उपर्युक्त तीनों स्थानों की स्थिति इस प्रकार बतलाई गई है (२)

"साम्बं सूर्य प्रतिष्ठां च कारयामास तत्ववित् ।
उदयाचले च सांश्रित्य यमुनायाश्च दक्षिणे ।।
मध्ये कालप्रियं देवं मध्यान्हे स्थाप्य चोत्तमम् ।।
मूलस्थानं ततः पश्चाद् अस्तमानाचले रविम् ।
स्थाप्य त्रिमूर्ति साम्बस्तु प्रातमध्यापरान्हेकम् ।।

अस्तु शाम्ब ने सूर्यदेव की प्रतिमा तीन स्थानों पर स्थापित की । १- पूर्वीय पर्वत २- यमुना नदी के दक्षिणी तट कालप्रिय में ३- तथा पश्चिमी पर्वत मूलस्थान में (मुल्तान पाकिस्तान) (३)

इस प्रकार हम पाते है कि मध्यान्ह में भगवान भास्कर की उपस्थिति हमें कालप्रिय में प्राप्त होगी । अब जिज्ञासा यह है कि यह कालप्रिय स्थान कहाँ है ।

"अत्र खत्तु भगवतः कालप्रियनाथस्य यात्रायामार्य
मिश्रान् विश्रापयामि । (उत्तर रामचरित)

संनिपतितश्च भगवतः कालप्रियानाथस्य यात्रा
प्रसंगेन नाना दिगन्त वास्तव्यो जनः ।। मालती माधव ।।
भगवतः कालप्रियानाथस्य यात्राकामार्य मिश्राः समदिशान्ति ।
(महावीर चरित)

कालप्रियनाथ के सम्बन्ध में मनीषियों में मतैक्य नहीं है । काणे आदि विद्वान कालप्रिय से उज्ञयिनी के भगवान शंकर के महाकाल मंदिर को मानते हैं (४)

नवीन अन्वेषणों के आधार पर कालप्रियनाथ स्थान कालपी को ही माना जाता है । हँस सुता के पावन पुलिन पर बसी कालपी में ही उक्त कालप्रिय प्रांगण था । तथा यहाँ ही शाम्ब द्वारा यमुना के दक्षिणी तट पर कालप्रिय नाथ मेंसूर्य की मूर्ति स्थापित की गई(५)

आज भी कालपी से २-३ मील पूर्व यमुना के पावन पुलिन पर जोधा कुण्ड के समीप सूर्य यतन का प्रसिद्ध मेला लगता है (६)

यह सूर्य मंदिर कालपी में ही था। इसका वर्णन भविष्य पुराण में भी हमें इस प्रकार मिलता है। चन्द्रभागा नदी के समीप मित्रवन (मुल्तान) में साम्ब ने सूर्य प्रतिमा स्थापित की। साम्ब ने सूर्य प्रतिमा से जब यह प्रश्न किया कि इस प्रतिमा का निर्माण किसने किया तब सूर्य प्रतिमा ने अपने उत्तर में यह बतलाया कि प्रतिमा निर्माण का कार्य विश्वकर्मा द्वारा किया गया। साथ ही साथ यह भी बतलाया कि प्रातः मनुष्यगण इस चन्द्रभागा के तट पर मेरा सानिध्य प्राप्त करेंगे। मध्यान्ह में कालप्रिय (कालपी) में अनन्तर यहाँ प्रतिदिन मेरा दर्शन करेंगे। (७)

कालप्रियनाथ के समीप कन्नौज के राजा यशोवर्मा का वार्षिकोत्सव एवं मेला मनाया जाता है। कालपी कन्नौज के राजा यशोवर्मा के राज्य का भाग था। अतः यहाँ राज्य का प्रसिद्ध उत्सव होना तथा उसी अवसर पर भवभूति विरचित नाटकों का अभिनय होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। भवभूति ने तीन नाटकों का प्रणयन किया है। अतः तीन उत्सवों पर उनका अभिनय किया गया होगा। उक्त प्रमाणों के आधार पर मैं कालप्रिय को कालपा में ही मानने के पक्ष में हूँ।

वास्तुशिल्प-

यद्यपि वास्तुशिल्प की दृष्टि से इस मंदिर के आज केवल भग्नावशेष ही देखने को मिलते हैं। यहां पर कभी सौ मठिया थी जिनमें से अब केवल कुछ ही शेष रह गई है। परन्तु यह मंदिर अपने समय में अत्यन्त भव्य था। कालपी के इस सूर्य मंदिर का वर्णन महाकवि भवभूति के सभी नाटकों में हैं। जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भवभूति नाटकों का प्रथम मंचन कालपी में कालप्रिय मंदिर के प्राँगण में ही हुआ है। भवभूति द्वारा रचित महावीर चरित्र की प्रस्तावना में सूत्रधार कहता है।

"भगवत : कालप्रियानाथस्य यात्रामार्यमिश्रा ; समदिशान्ति ।"

अर्थात् भगवान कालप्रियनाथ के मेले में एकत्रित सम्मानित जनों को उसने ऐसा आदेश दिया है। महाकवि अपने दूसरे नाटक मालतीमाधव की प्रस्तावना में इन नाटकों की प्रथम अभिव्यक्ति के संबंध में इस प्रकार वर्णन दिया है।

" मारिष सु विहितानि, रंगमगलानि संनिपातितश्च भगवतः

कालप्रियनाथस्य यात्रा प्रसंग न नाना दिगन्तवास्तव्यो महाजन समाजः । आदिष्टश्चास्मि विद्वज्ञन परिषदा यथा केन चिद् पूर्व प्रकरेणम् बमं विनोदमित्वया इति"

अर्थात् मारिष रंगमंच की मांगलिक क्रिया विधिवत् सम्पन्न हो चुकी है । भगवान कालप्रियनाथ के मेले के संदर्भ में अनेक दिशाओं से सज्ञन समाज यहाँ एकत्रित हुआ है । विद्वसमाज द्वारा मुझे आज्ञा दी गयी है कि नवीन नाटक के अभिनय से उनका मनः प्रसादन किया जाये ।

यह मंदिर अत्यन्त भव्य तथा इस मंदिर की भव्यता के संदर्भ में राष्ट्रकूट राजा इन्द्र तृतीय की यात्रा विवरण के कैम्बे प्लेट में भी इस प्रकार प्राप्त होता है -

" यन्माद्यद्द्विपदन्तघातविषमं कालप्रिय प्रागंण ।
तीर्णा यत्तुरगैरगाध यमुना सिन्धु प्रति स्पार्धिनी
येनेदं हि महोदयारि नगरं निर्मूल मुन्मूलितं ।
नान्माद्यापि जनैः कुंशस्थल भिति ख्यातिं परां नीयते ॥"

अर्थात् भगवान काल प्रियनाथ के प्रांगण उद्धत हाथियों के दंत प्रहार से ऊँचा नीचा कर दिया गया उसके घोड़ों ने विस्तार में समुद्र की प्रतिसृपर्धा करने वाली अर्थात यमुना नदी को पार किया जिसने अपने शत्रु के नगर महोदय को समूल ध्वस्त कर दिया। (८)

इसी स्थान से एक पाषाण खण्ड भी प्राप्त हुआ है जो कि लम्बे आकार का है तथा जिस पर एक ओर बेल बूटे अंकित है व दूसरी ओर ध्यानस्थ तपस्वियों की मूर्तियों का अंकन है ।

इसी क्षेत्र में एक टीला और भी है जो कि काफी विशाल एवं विस्तृत है । इसे यहाँ पर मोदी टीला के नाम से जाना जाता है । इस मोदी टीला से अभिप्राय है कि ऐसा मुहल्ला जहाँ पर वैश्व वर्ग या व्यापारीवर्ग रहता हो अथवा व्यापार करता हो । इस क्षेत्र में मिट्टी के पात्र तथा उनके अवशेष प्राप्त हुए हैं जो कि बुन्देलखण्ड संग्रहालय भरत चौक उरई में सुरक्षित है । इसके संदर्भ में राष्ट्रीय संग्रहालय झाँसी के वीथिका सहायक श्री रूद्र किशोर पाण्डेय का कथन है कि ये पात्र कुषाण काल तथा गुप्त काल के पात्रों से मिलते - जुलते हैं । इन मृणपात्रों की उपलब्धता से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कालप्रियनाथ के मंदिर का अस्तित्व कुषाण-गुप्त काल में था ।
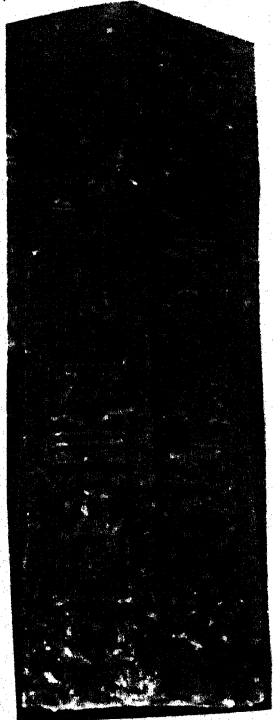
डा० मिराशी का विचार है कि - " कालपी में आज भी काल्पदेव के नाम से प्रसिद्ध टीला है जो कालप्रियनाथ के मंदिर का स्थल प्रतीक होता है । कालप्रियनाथ (सूर्य)
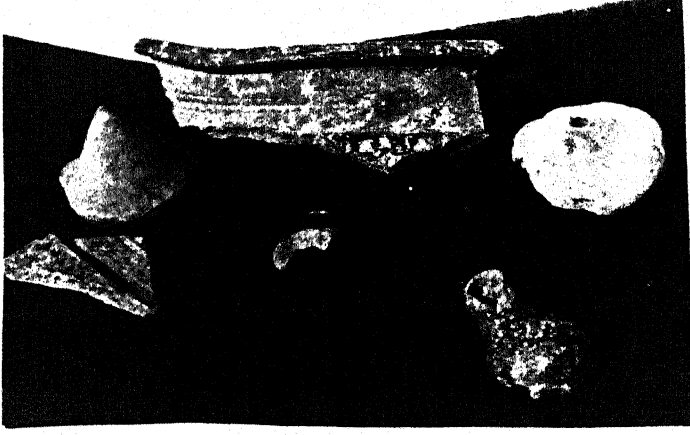
का यह मंदिर प्राचीन काल में उतना ही प्रसिद्ध था जितना कि आजकल कोर्णाक और उसे उतना ही भव्य होना चाहिये जितना कि कोर्णाक मंदिर । अतएव यह बड़ी बात होगी , यदि उस टीले का उत्खन्न हो जाये और कालपी का यह मंदिर प्रकाश में आ जाये ।

आशा है इस पुरातात्विक महत्व के खण्डहरों व टीले की खुदाई में महाभारत कालीन व कुषाणकालीन युग की सामाजिक , सांस्कृतिक , ऐतिहासिक, राजनैतिक व शिल्पगत विशेषतायें प्रकाश में आ सकेंगी । काल के गर्त में दबी यह अक्षय धरोहर , हमें अपने अतीत के वैभव से सामना व दर्शन करायेगी (९)

संदर्भसूची -

१- ज्योतिष विचार (नवम्बर १९८८) हरीमोहन पुरवार पृष्ठ संख्या ८

२- कल्याण वराह पुराण (१९७७) अध्याय १७७ पृष्ठ संख्या ३१७

३- सा० लोकसेवा (१८ नवम्बर १९७३) परिपूर्णानन्द वर्मा पृष्ठ संख्या २

४- " " "

५- वराह पुराण - श्लोक संख्या ५५-५७ अध्याय १७८

६- दैनिक मध्यदेश (दीपावली विशेषांक १९७१) अयोध्याप्रसाद गुप्ता पृष्ठ सं० ८२

७- कल्याण भविष्य पुराणांक (१९९२) अध्याय १२९ पृष्ठ संख्या १३४

८- कल्याण सूर्य अंक (१९७९) प० जानकीनाथ शर्मा पृष्ठ संख्या ४२८

९- ज्योतिषविचार (नवम्बर १९८८) हरीमोहन पुरवार पृष्ठ संख्या ११

भवनों की स्थिति दर्शाता मानचित्र - कोंच
भदेरा ग्राम
कलन्दर शाह की मजार
लक्ष्मीनारायण मन्दिर
बारह खम्बा
तकिया खुर्रमशाह
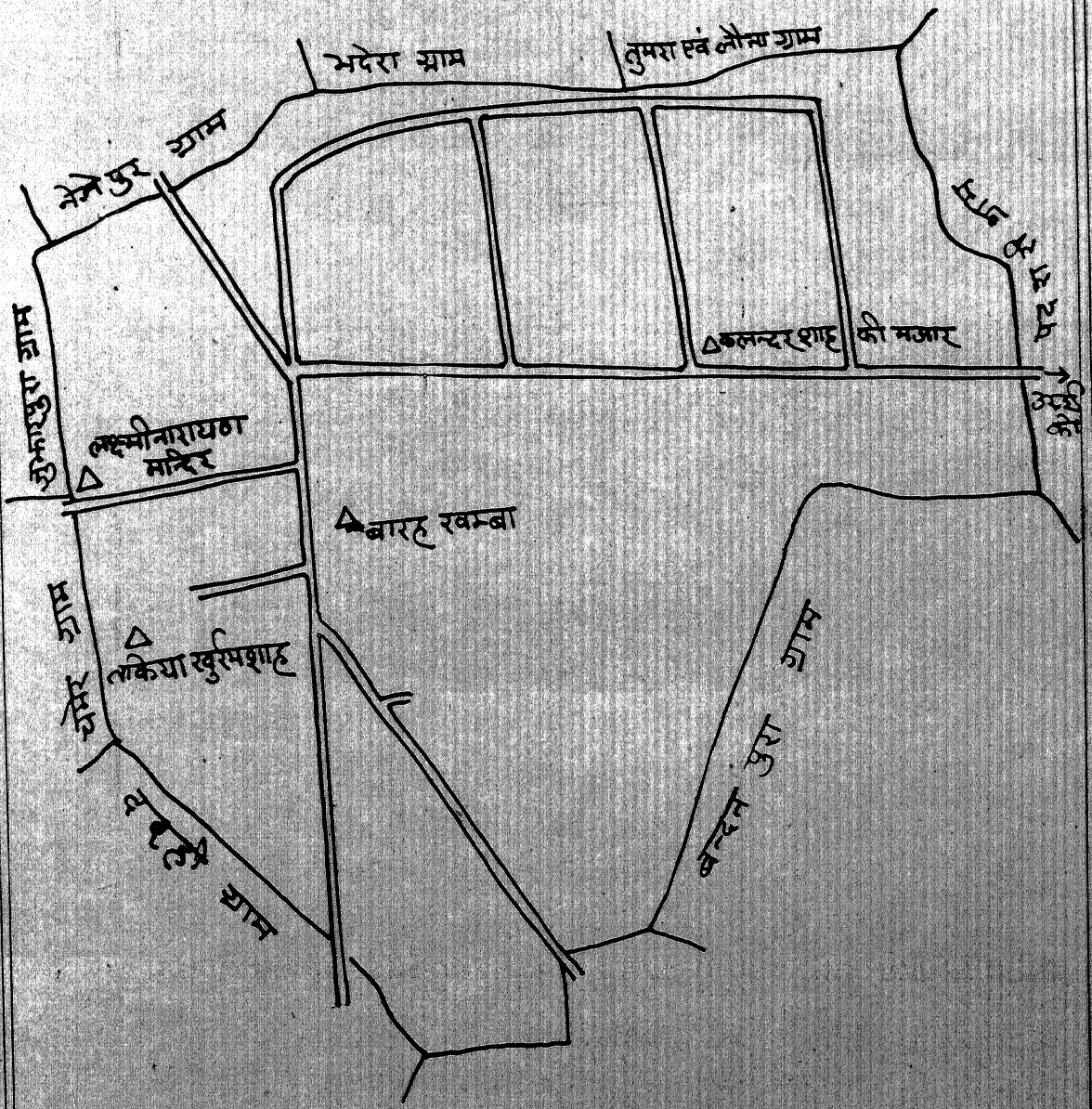
लक्ष्मीनारायण मन्दिर कोंच

जालौन जनपद के कोंच नगर में मालवीय नगर मुहल्ले में भगवान लक्ष्मीनारायण का यह मंदिर स्थित है । मालवीय नगर मलंगा नाले के किनारे स्थित है ।(१)

इतिहास -

यह मंदिर सत्रहवीं शताब्दी में निर्मित हुआ था।(२) मंदिर के आदि संस्थापक गोस्वामी श्री भानुदास जी महाराज थे , जोकि अठारहवीं विक्रमी संवत में हुए थे । वे उच्च कोटि के सन्त और भगवतभक्त थे । गोस्वामी श्री भानुदास जी की आध्यात्मिक उपलब्धियों से प्रभावित होकर तत्कालीन शासकों ने उनके निजी निर्वाह हेतु कई गांवों की जमीन सेवा - पूजा के लिए दी थी । मंदिर की देवमूर्ति के लिए भी कई गाँवों में कृषि भूमियाँ प्रदान की गयी थी । गोस्वामी श्री भानुदास जी महाराज को सर्वप्रथम किस शासक ने भूमि प्रदान की थी, इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है किन्तु महाराज अनूपसिंह बुन्देला द्वारा जारी की गई राजाज्ञा दिनांक जेठ बदी १४ संवत १७६७ विक्रम से प्रकट होता है कि इसके पूर्व भी विभिन्न ग्रामों में उन्हें कृषि भूमियाँ प्राप्त थीं ।(३) व (४)

श्री वैष्णव संप्रदाय में विशिष्ट द्वैत सिद्धांत के प्रवर्तक श्री रामानुजाचार्य का यह मंदिर जिला जालौन का सबसे बड़ा और प्राचीन मंदिर होने के कारण बड़ा मंदिर के नाम से जाना जाता है । गोस्वामी श्री भानुदास जी महाराज के पश्चात् अब तक इस मंदिर के पुत्र शिष्य परम्परा में ६ महन्त हो चुके हैं ।

वर्तमान में श्री ब्रजभूषणदास महन्त इस मंदिर का रख रखाव व व्यवस्था कर रहे हैं तथा गद्दी के उत्तराधिकारी हैं ।(५)

इस मंदिर में भगवान लक्ष्मीनारायण एवं हनुमान जी की मूर्ति स्थापित है । हनुमान जी के गले में यह अंकित है **श्री महावीर जन्मतिथि भादौं सुदी १४ मंगल सं० १८८६ स्थापित** । इस मूर्ति का मुखौटा पीतल का तथा धड़ लाल पत्थर द्वारा बना हुआ है । यह मंदिर श्री चतुर्भुज दास जी की प्रेरणा से स्थापित किया गया था । इस मंदिर में एक अन्य शिलालेख भी है जिसमें निम्नानुसार अंकित है , **"पुनः २१० वर्ष पश्चात् स्थापित श्री खुन्नीलाल शिष्य अग्रवाल हलवाई कोंच सम्वत् २०२० वि०"** वर्तमान में श्री ब्रजभूषणदास जी के स्वर्गीय गुरू एवं पिता महन्त श्री चतुर्भुज दास जी ने सन १६३६ ई० में मंदिर के

जगमोहन का सुधार -निर्माण कराया था । वर्तमान महन्त ने द्वारा सन [illegible] ई० में इस मंदिर का सुधार कराया ।

स्थापत्य -

यह मंदिर तीन परकोटों के अन्दर स्थित है । इसका मुख्य दरवाजा पश्चिमाभिमुख है (६) जो कि लगभग २५ फुट ऊँचा तथा १५ फुट चौड़ा है । इसका निर्माण पतली ईटों व चूने से हुआ है तथा इसकी निर्माण तिथि सम्वत् १६७० व पूर्ण तिथि २०१७ अंकित है । मंदिर का गर्भग्रह १०x१० फुट के वर्गाकार में बना हुआ है जोकि पूर्वाभिमुख है । इस मंदिर के ऊपर प्रथम तल अष्टकोणीय आलों से युक्त है । ऊपर गोल गुम्बदाकार डाट बनी हुई है । गर्भग्रह के शिखर में चारों कोनों पर एक एक छोटे मण्डप स्थित है । गोलशिखर के आधार पर कमल पत्रों अथवा नागफन जैसे आकार के घुमाओं से निर्माण किया गया है । मंदिर भवन की रचना शैली १६ वीं १७ वी शताब्दी के आस पास की प्रतीत होती है । मंदिर के गर्भग्रह के तीनों ओर प्रदक्षिणा पथ बना हुआ है । उसके सामने पूर्व की ओर विशाल जगमोहन स्थित है । इस जगमोहन के उत्तरी ओर कथा मंच है । जगमोहन के पश्चिमी ओर भगवान महावीर की विशाल मूर्ति स्थापित है । जगमोहन के उत्तरी ओर बराण्डा । बराण्डे के पश्चात् ३०x३० फुट का खुला आँगन, उसके पश्चात् पुनः बराण्डा और उससे संलग्न कार्यालय स्थित है । गर्भग्रह के उत्तर में भण्डार ग्रह रसोई और उसके उत्तर में भोजन कक्ष से लगा हुआ एक जलकूप भी बना है । भोजन कक्ष के उत्तर में २ कमरे बने हुए हैं । भगवान महावीर की मूर्ति के उत्तर में एक कक्ष उसके उत्तर में एक सत्संग कक्ष, तत्पश्चात् उत्तरी ओर पुस्तकालय है । कथामंच के दक्षिणी ओर बाग एवं खुली जगह है जोकि ८०x५० फुट स्थान घेरे हुए हैं और यह मुख्य मार्ग से जुड़ता है ।
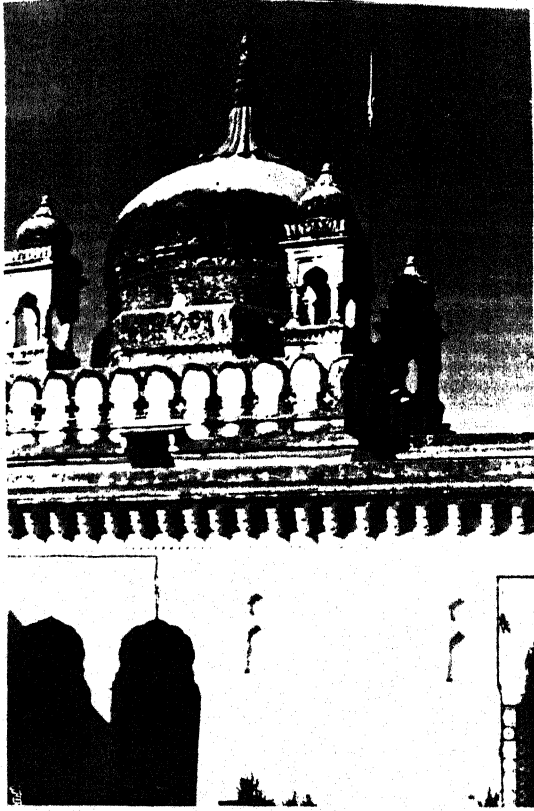
मंदिर का मूर्तिशिल्प :-

१- चतुर्भुजी विष्णु मूर्ति : यह मूर्ति काले पत्थर द्वारा निर्मित है जो कि कमल युक्तपीठिका पर स्थित है। इस मूर्ति की लम्बाई तीन फुट चार इंच व चौड़ाई दो फुट तीन इंच है। भगवान विष्णु के चरण गोल ठोस आभूषण युक्त है। भगवान विष्णु की ऊपरी बायें हाथ में गदा व दायें हाथ में कमल तथा निचले बायें हाथ में चक्र तथा दाये हाथ में शंख सुसज्जित है। इस प्रकार की मूर्ति शास्त्र के अनुसार **नारायण** (७) नाम से सम्बोधित की जाती है।

२- लक्ष्मी मूर्ति - माँ लक्ष्मी की चतुर्भुजी मूर्ति भी काले पत्थर द्वारा निर्मित है। परन्तु इनके चरणों के नीचे चरण पीठिका नहीं है। यह मूर्ति २ फुट ऊँची तथा १ फुट ४ इंच चौड़ी है। लक्ष्मी जी के चरण पाजेब युक्त है। लक्ष्मी जी के दोनों हाथों में कमल सुशोभित है। निचला बायाँ हाथ अभयमुद्रा में तथा दायें हाथ में शंख सुसज्जित है।
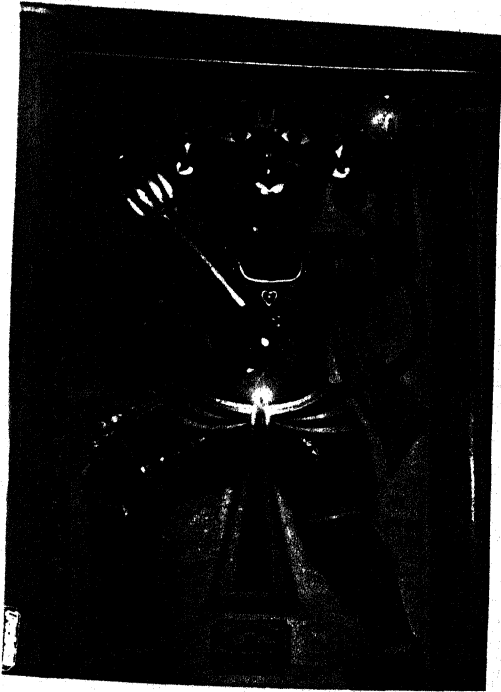
३- हनुमान जी की मूर्ति - इस मूर्ति का धड़ लाल पत्थर से बना हुआ है जो कि ४ फुट ४ इंच चौड़ा तथा ५ फुट ६इंच ऊँचा है। इसके ऊपर पीतल का मुखौटा लगा हुआ है, जोकि १ फुट ७ इंच चौड़ा तथा २ फुट ५ इंच ऊँचा है। इस प्रकार यह सम्पूर्ण मूर्ति लगभग ८ फुट ऊँची है। इस मूर्ति के ग्रीवा में इसके स्थापन की तिथि अंकित है।

अन्य मूर्तियाँ :- इस मंदिर में सिहासनारूढ़ भगवान श्री कृष्ण राधा विग्रह की पीतल की प्रतिमा प्रतिष्ठित है तथा भगवान

श्री विष्णु की एक प्रतिमा यहाँ पर है जो कि चतुर्भुजी है तथा सिंहासनारूढ़ है । यह मूर्ति दक्षिण शैली की प्रतीत होती है । इसके साथ साथ शालिगराम तथा गणपति आदि अनेकों छोटी - छोटी मूर्तियाँ है ।

संदर्भ-सूची -

१- पत्र ब्रजभूषण दास महंत दिनांक १०-३-६५
२- दैनिकदीवान (१७-७-६५) जनपद जालौन की हृदय स्थली कोंच - मु० नईम बाबी
३- दैनिक मध्य देश झांसी (दीपावली विशेषांक १६७१) अयोध्याप्रसाद गुप्त पृष्ठ सं० ८४
४- प्राचीन सनद संवत १७६२
५- व्यक्तिगत साक्षात्कार श्रीब्रजभूषण दास महंत दिनांक १०-२-६५
६- दैनिक दीवान (१७-७-६५) जनपद जालौन की हृदय स्थली कोंच - मु० नईम बाबी पृष्ठ सं० ३
७- प्रतिमा विज्ञान - डा० इन्दुमती शर्मा - पृष्ठ सं० - १२६

बारह-खम्भा

कोंच नगर के मुहल्ला भगत सिंह नगर में यह बारह खम्भा भवन स्थित हैं तथा इसके बगल में एक राम तलइया स्थित हैं और राम तलइया के बगल में मुहाल आराजी लाइन में आठ खम्भा स्थित हैं (१)

इतिहास -

दिल्ली सम्राट पृथ्वीराज चौहान सिरसागढ़ में मलखान को पराजित करने के पश्चात घायल होकर अपने सैनिकों के साथ कोंच आये । जहां उनके विश्राम हेतु रातों -- रात बारह खम्भा तथा तालाब का निर्माण किया गया । तालाब और बारादरी का निर्माण उनके सामन्त चामुण्डराय के द्वारा कराया गया था , तथा उस ताल का नाम चामुण्डराय चौड़िया के नाम पड़ा । वैरागढ़ में जहां पृथ्वीराज चौहान और आल्हा ऊदल के बीच युद्ध हुआ वहाँ पृथ्वी राज चौहान की सेनाओं ने कोंच व उसके आस -- पास के स्थान को अपनी छावनी बनाया । उस समय २६एकड़ जमीन पर चौड़िया ताल का निर्माण हुआ । पृथ्वीराज चौहान जो कि युद्द

में घायल हो गया था उसका उपचार चन्द्रकुआं के पास भट्ट जी की हवेली मे हुआ था (२) चन्द्र कुआँ के पास ही भूतेश्वर , नृसिंह जी आदि के मन्दिर हैं । जोकि वर्तमान मे मुसलमानो के कब्जे में हैं । परन्तु इनका निर्माण भी चौहान काल में हुआ । यह भी विचारणीय विषय है कि कोंच गढ़ी का अस्तित्व उस समय होता तो पृथ्वी राज चौहान उपचार हेतु भट्ट जी की हवेली में न लाये गये होते । उस गढ़ी में ही ले जाये गये होते । बारह खम्भों के निर्माण के विषय में यह लोकोक्ति हैं कि उसे एक ही रात मे जिन्नातों द्वारा तैयार किया गया है और सुबह मुर्गे की बाँग होते ही जिन्नात भाग गये तब इसकानाम बारह खम्भों रखा गया (३) यह बारह खम्भा चन्देल कालीनभी कहा जाता हैं । (४) इसी भाँति -- मुहल्ला आराजी लाइन में स्थित आठ खम्भा भी बारह खम्भे की तरह बना हुआ हैं अन्तर केवल इतना हैं कि यह बारादरी आठ खम्भा के ऊपर स्थित हैं । दौनों की डिजाइन में तथा इन दौनों के निर्माण में प्रयुक्त सामग्री में कोई अन्तर नही हैं और न ही उनके शिल्प में कोई अन्तर हैं । वर्तमान में यह आठ खम्भा बारादरी को चारों ओर से घेर लिया गया हैं और मठिया का स्वरुप प्रदान कर दिया गया हैं । यह मठिया पूर्वाभिमुख हैं । दरवाजे के अन्दर प्रबेश करने पर आठ खम्भा स्पष्ट दिखलायी पड़ते हैं ।

वास्तु शिल्प -

बारह खम्भा की वास्तु शिल्प देखने से ज्ञात होता हैं कि यह एक ऊची पीठिका पर स्थित हैं । बारह खम्भा को एक वर्गाकार ढांचे पर अर्द्ध गोलाकार शिखर बना है ।५ यह वारादरी का ढांचा देखने से यह स्पष्ट है कि इसमें जिन सामग्रियों का प्रयोग किया गया है। वह पहले अन्य भवनों में प्रयुक्त हो चुकी है । अलंकृत बेतरतीब, बेडोल शिला खण्डों तथा कंकण चूने से इसका निर्माण किया गया । इसकी दक्षिणी भुजा के अंतिम छोर पर अन्तिम दो स्तम्भ के ऊपर एक शिला रखी है । जिसपर कुछ अस्पष्ट लिखा है इस बारादरी के दक्षिण में एक कच्चा तालाब है जो चौड़िया ताल के नाम से विख्यात है । इसके प्रत्येक खम्बा की ऊँचाई ८ फुट है और
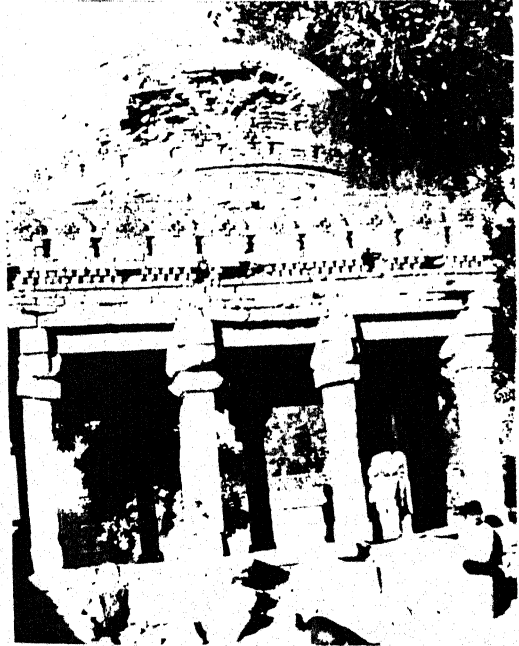
उसके ऊपर गोलडाट का गुम्बद बना हुआ है जिसे लम्बी चौड़ी डाट द्वारा बनाया गया है।

संदर्भ-सूची -

१- व्यक्तिगत साक्षात्कार - श्री कृष्णबिहारी शर्मा पालिका सदस्य दिनांक १३-५-६४
२- दैनिक मध्य प्रदेश (दीपावली विशेषांक १६७१) जालौन जनपद के धार्मिक स्थान - पृष्ट सं० ८३
३- दैनिक दीवान (१८-७-६५) जनपद जालौन की हृदयस्थली कोंच - मु०नईम बाबी पृष्ट संख्या २
४- दैनिक दीवान (२०-७-६५) कोंच की सांस्कृतिक सम्पदा - डा० रामसजीवन शुक्ला पृष्ट संख्या ३

तकिया खुर्रमशाह

अल्लाताला के एक मजंनू थे वली खुर्रमशाह जिन्हें खुदा की बख्शी तमाम रूहानी ताकतें हासिल थी जिनके जरिये वो अवाम में खुशियाँ बाँटते फिरते थे । उन्हीं की यादगार में उन्हीं की रूहानी ताकतों से भरापूरा यह तकिया कोंच के आजाद नगर मुहल्ले में बना है ।

इतिहास -

सन १७५५ से १७६५ के बीच यह तकिया तामीर हुआ । वली खुर्रमशाह जिनके नाम पर आज यह तकिया आबाद है वे औरंगजीब के वक्त के थे । वली खुर्रमशाह की उमर के बारे में यह कहा जाता था कि वली की उमर सौ साल से ज्यादा थी । सन १७५५ में वली खुर्रमशाह' का इन्तकाल हुआ और उनके बाद वली निहालुद्दीन शाह को यह शाही रूतबा हासिल हुआ । सन १७६५ में इनके इन्तकाल के बाद वली रूह उल्ला शाह वली हुए । सन १७६२ में इमामशाह फिर सन १८२४ में फकीर उल्लाशाह फिर सन १८३६ में यकीन शाह फिर सन १८८० में मुहम्मद शाह फिर सन १६२१ में अकबर शाह और सन १६३४ में शाह मुजफ्फर अली कौकब इस तकिया की गद्दी पर गद्दी नसीन हुये और उनको वली का रूतवा हासिल है (१)

तकिया खुर्रमशाह के अल्फाजी मायने पर गौर करने से पता चलता है कि यह तीन अल्फाजों से मिलकर बना है । '**तकिया**' अरबी व फारसी दोनों का वह लफ्ज है जिसके

मायने होता है वह जगह जहाँ फकीर रहता है तथा जिस पर पूरा इत्मीनान किया जा सके । **खुर्रम** लफ्ज फारसी का है और इसका इस्तेमाल लकब (विशेषण) के रूप में होता है । इसके मायने होता है खुश, आनन्द , प्रसन्न व हराभरा तथा आफताब से दूर रहने वाला । **शाह** लफ्ज फारसी का है जिसके मायने होता है खुदाबन्द, फकीरों को पुकारने का लकब, दाता । शाह लफ्ज का इस्तेमाल बादशाह के लिए सिर्फ इस बजह से किया जाने लगा क्योंकि वह अवाम की जड़ और उसका आका होता है । तकिया खुर्रम शाह के इन मायनों की वजह से यह नतीजा निकाला जा सकता है कि यह वह जगह है जहाँ जहाँनी आफताब से दूर रहने वाला खुशमिजाज, खुदावन्द अपनी झोली से दूसरों में खुशियाँ व मुहब्बत बाँटने वाला और जिस पर सबका इत्मीनान हो , ऐसा फकीर आराम फरमाता हो (२)

आजकल इस तकिया के वारिस श्री शाह मुजफ्फर अली कौकब अल कादरी उम्र ८२ वर्ष ने बतलाया कि यह जगह दगियाना कहलाती है क्योंकि इस जगह पर ही हिन्दू ठाकुरों ने इस्लाम कबूल किया था जिसकी वजह से हिन्दू ठाकुरों की कौम पर दाग लग गया और यह जगह दगियाना हो गयी (३)

वास्तुशिल्प -

यह तकिया ३०X३० फुट के चौकौर व ३ फुट ऊँचे चबूतरे पर बना है । इसकी ऊँचाई ६० फुट है तथा इसका दरवाजा दक्खिन की तरफ है और इसकी दीवालें ३-३ फुट मोटी है । इस तकिये में जमीनी धरातल पर वली खुर्रमशाह की मजार तामीर है और जमीनी मंजिल के ऊपर पहली मंजिल की चारों दीवारों और चारों कोनों पर मेहराबदार आठ फुट ऊँचे आले बने हैं जिनके ऊपर गोल डाट पड़ी है तथा जिसके बीचों बीच कुछ लटकाने बावत एक कुन्दा लगा है और इस कुन्दे के तारों तरफ कमल के फूल के मानिंद फूल बने हैं । दीवालों और गोलडाट के सन्धि स्थल पर तोड़ो पर आधारित चौकौर जगह बनी है , जिसपर कमल की पंखुड़िया बनी है। छज्जे के तोड़ों पर तोता, मोर परिन्दों की तस्वीरें तामीर है और कमल फूल भी बने है । पहली मंजिल पर ही तकिये की चारों दीवालों के चारों कोनों पर एक-एक गुम्बदायुक्त मीनार बनी है। बीच के
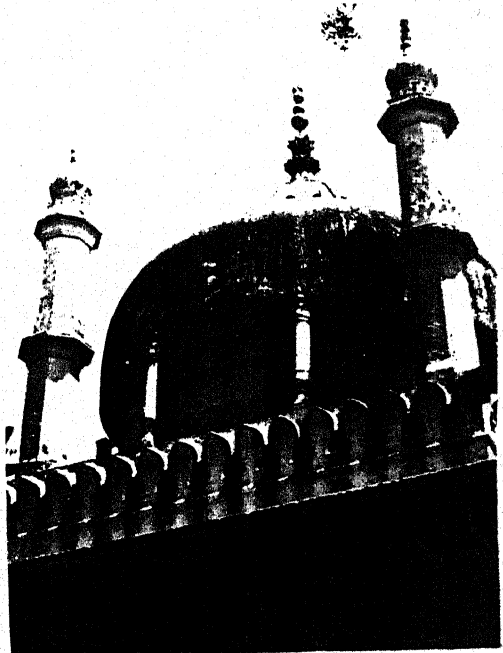
मुख्य गुम्बद पर एक फूल बना है जिसके बीच में कलश स्थापित है वास्तुकला की छाप से सम्पूर्ण तकिये की तामीर में हिन्दू वास्तुकला की छाप स्पष्ट दिखाई देती है।
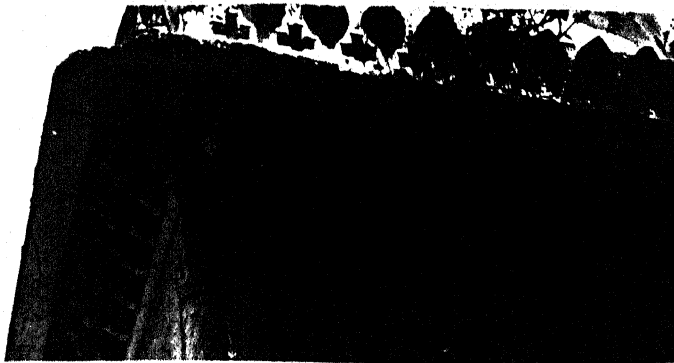
किवदन्तियाँ -

इस तकिये के बारे में यह मशहूर है कि यहां पर जो भी मन्नत माँगी जाती है वह वली की आसमानी ताकत के जरिये जरूर पूरी होती है इसी कारण आज भी हिन्दू मुसलमान बगैर किसी भेदभाव के यहाँ पर आते हैं और अपनी मुरादों की झोली भरकर ले जाते हैं। वली साहब के हजारों चेले थे और हमेशा घूमते ही रहते थे।

इस तकिये के दाहिने बाजू पर एक दीवाल बनी है। कहते हैं कि एक दिन वली खुर्रम शाह सुबह के वक्त इसी दीवाल पर बैठे थे उसी समय कोई हाकिम मिलने आये। वली साहब उसी दीवाल पर बैठे रहे और दीवाल ने आगे बढ़कर हाकिम की अगुवाई की। इस तरह से दीवाल के चलने का यह वाकया है। वली के कई इसी तरह के हैरतंगेज वाकयात है (४) मसलन वली साहब के एक चेले थे जिन्हें घूमने फिरने का बहुत शौक था। एक बार वे कीमियागीरी सीखकर वली खुर्रम शाह के हुजूर में पहुँचे और अपनी कीमियागीरी के हुनर के बावत बढ़चढ़कर बात की। वली साहब ने अपने 'स्तन्जापाक' का डेला एक पत्थर पर फेककर मारा। वह पत्थर वली के स्तनजापाक से छूकर खालिस सोने में तब्दील हो गया तब उस चेले का चेहरा शर्म से झुक गया।

इस तकिये के बारे में यह भी रवायत मशहूर है कि फकीर उल्ला शाह के वक्त कोई मकोई नाम का गोरा अंग्रेज शराब पीकर व जूते पहिने हुए वली साहब की मजार पर चढ़ने जा रहा था कि उसने जैसे ही मजार के दरवाजे की जंजीर छुई किसी रूहानी ताकत ने उसे बाहर फेंक दिया जिससे उसका सिर फट गया और वह वहीं पर मर गया। आज भी चमेंड़ मौजे में उस गोरे अंग्रेज की कब्र बनी है जो मकोई बाबा के नाम से जानी जाती है। उस दिन से यह मशहूर हो गया कि इस तकिये पर कोई अंग्रेज नहीं चढ़ेगा (५) वास्तव में मकोई नाम का कोई अंग्रेज नहीं था। उस समय कैप्टेन मेकाले था। जो रानी लक्ष्मीबाई के साथ कोंच में हुए ऐतिहासिक युद्ध में मारा गया आज भी वही मैकाले मकोई बाबा के नाम से जाना जाता है। क्योंकि यदि मकोई अंग्रेज इस तकिये पर मरता तो उसकी कब्र वहीं आस पास कहीं होनी चाहिये

थी न कि इस तकिये से २ मील दूर (६)यहां पर यह तथ्य भी दृष्टव्य है कि भदवरा से लेकर धमूरी तक मकोईबाबा का स्थान कहा जाता है उसके आस पास मैदान में तमाम अंग्रेजों की कब्रें जिन्हें यहाँ स्थानीय भाषा में मुनारें कहा जाता है । चूँकि वली साहब को औरतों में कोई दिलचस्पी नहीं थी ।

इस वजह से वली साहब के हुजूर में औरतजात नहीं जाती है ।

संदर्भसूची -

१- दैनिक दीवान (१७-७-६५) जनपद जालौन की हृदय स्थली कोंच मु० नईम बोबी - पृष्ठ ३

२- दैनिक आज (४ - ७-६४) हरीमोहन पुरवार पृष्ठ४

३- व्यक्तिगत सम्पर्क - श्री शाह मुजफ्फर अली कौकब दिनांक १७-७-६४

४- दैनिक दीवान (१७-७-६५) जनपद जालौन की हृदय स्थली कोंच मु० नईम बो... - पृष्ठ ३

५- व्यक्तिगत सम्पर्क - श्री शाह मुजफ्फर अली कौकब दिनांक १७-७-६४

६- व्यक्तिगत सम्पर्क - श्री कृष्ण बिहारी शर्मा सदस्य नगर पालिका कोंच दिनांक १७-७-६४

मजार कलंदर शाह

यह मजार कलन्दरियों के नाम से मशहूर है जो कि कोंच नगर के मिया गंज मुहल्ले में स्थित है ।

इतिहास -

इस मजार का निर्माण सन १६४२ में हुआ था । पानीपत के पहले अलीशाह के सिलसिलों में कुछ फकीर यहां पर आये और यहां पर गुजर गये । उनकी मजार यहीं पर बनवाई गयी । इस मजार में भरपूर शाह और भंवर गुलजार शाह की मजारें बनी है । भवन गुलजार शाह ने तकिये की मजार व कुआँ बनवाया । यह मजार धार्मिक, सामाजिक भावनाओं की मिसाल है । श्री शाह मुहम्मद अली ने एक भेंट में बतलाया कि यहाँ पहले भी तकिये के वारिश जो होते थे । वह हिन्दू जाति के होते थे । यहाँ के आखिरीपीर भंवर गुलजार शाह थे जो कि अहीर के लड़के थे और उन्होंने ६५-१०० वर्ष की उम्र पायी थी । आजकल वर्तमान में इसका रखरखाव आदि मंजूर अली शाह देख रहे हैं और इसी जनपद के मोहन गांव के निवासी हैं और

वे ब्राहमण के पुत्र थे । उनके पहले का नाम राधाचरन था । कई जमीदारों ने काजियों के लिए खेत नदेपुरा मौजा भवंर गुलार शाह को दिये थे (१)

स्थापत्य -

इस मजार का बाहरी दरवाजा दक्षिण की ओर है तथा इस विशाल दरवाजे के मध्य से उसके अन्दर प्रवेश किया जा सकता है । मुख्य दरवाजे के अन्दर प्रवेश करते ही
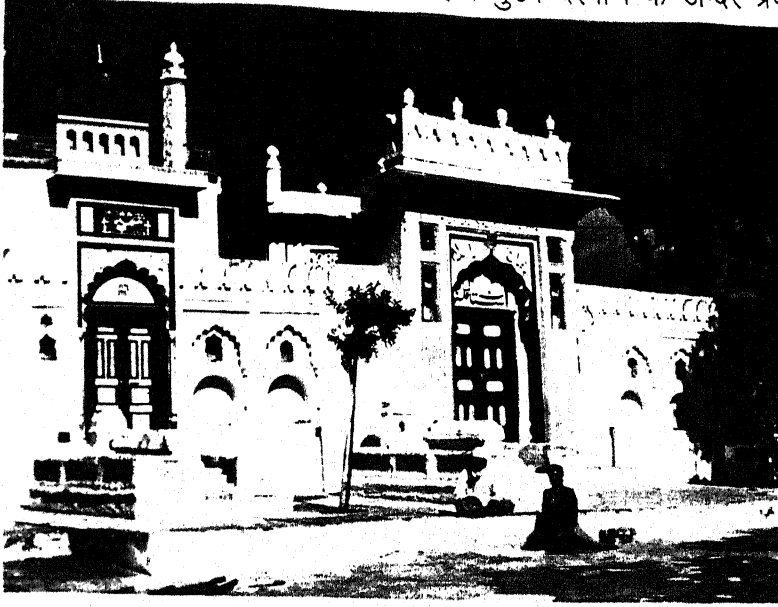
पश्चिम की ओर मजारें स्थित है । जिसके ऊपर गोल गुम्बदकार डाटें पड़ी हैं । यह मजार का निर्माण नवीन है तथा नयी शैली के अनुरूप मीनारें आदि बनी है ।

संदर्भ -

१- व्यक्तिगत साक्षात्कार - शाह मुहम्मद अली कौकब कांच दिनांक ७-४-६४
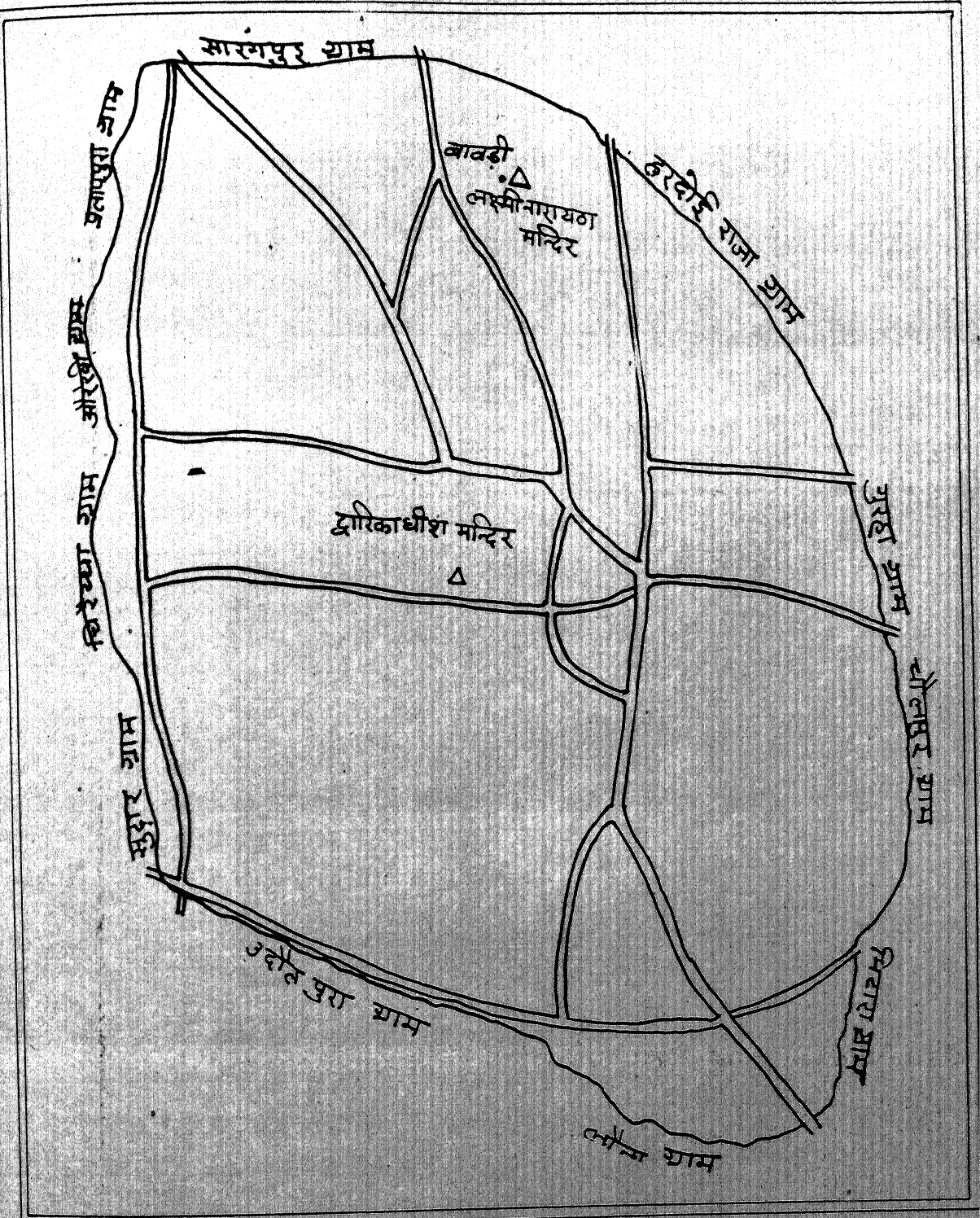
भवनों की स्थिति दर्शाता मानचित्र - जालौन

शिव मंदिर - सरावन

भगवान शंकर का यह मंदिर जालौन तहसील में स्थित सरावन ग्राम में है ।

इतिहास-

इस मन्दिर निर्माण का संकल्प सरावन के राजा फतेह सिंह द्वारा संवत १२०५ में लिया गया था । सरावन एक छोटी सी जागीरदारी थी जिसका कार्य भार राजा फतेह सिंह द्वारा देखा जाता था । समाज में भक्ति भावना के प्रचार प्रसार तथा आध्यात्मिक अभिरूचि के कारण इस मंदिर का निर्माण संकल्प पूर्ण हुआ (1)

वास्तुशिल्प -

यह मन्दिर नागर शैली का एक अद्वितीय उदाहरण इस कारण है कि इसका गर्भग्रह आधार तल लगभग १० फुट ऊँचाई तक इंकसार गया तथा तत्पश्चात् शंकु आकार लेता
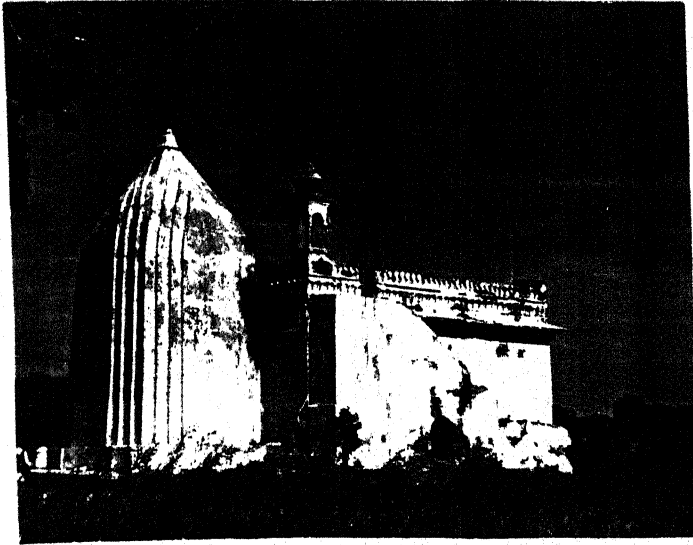
हुआ संकुचित होता गया तथा इसकी चारों भुजायें आधारतल से लगभग १५ फुट ऊँचाई पर एक साथ मिलकर मन्दिर के आमलक का निर्माण करती है जिस पर चक्राकार अंकन के पश्चात् कलश स्थापित है । इस वर्गाकार गर्भग्रह के पूर्व में एक विशाल आयताकार मण्डप बना है जिसकी वाह्य ऊपरी चहरदीवारी पर चारों कोनों पर एक-एक मठिया स्थित थी तथा ऊपर छत पर जाने हेतु दक्षिणी भुजा से संलग्न सीढ़ियाँ बनी हुयी है। इस आयताकार मण्डप की दीवार के ऊपरी सिरों पर कमल दल का अंकन है । यह मंदिर चूने के उत्तम प्लास्टर से युक्त है ।

मूर्ति शि[illegible] -

इस मंदिर के गर्भगृह में भगवान शंकर की पिण्डी स्थापित है जो कि श्वेत संगमरमर द्वारा निर्मित है । इस शिवलिंग का घरूआ नहीं है । इसके आधार पर इसको चारों ओर से घेरता हुआ फन उठाये एक सर्प अंकित है जो कि पत्थर में प्राण होने का एक जीवन्त उदाहरण है ।

संदर्भ -

१- व्यक्तिगत साक्षात्कार - श्रीमूंगालाल गुप्त (आयु ६० वर्ष) सरावन दिनांक २८-३-६३

द्वारिकाधीश मंदिर जालौन

यह मन्दिर जालौन नगर के मुरली मनोहर नामक मुहल्ले में स्थित है।

इतिहास -

इस मन्दिर का निर्माण सन १८८० से १८८५ के बीच सेठ चतुर्भुज दास मारवाड़ी पुत्र श्री नत्थूलाल मारवाड़ी द्वारा कराया गया । सेठ चतुर्भुज दास, ग्राम बाउली से गोद आये थे । इनके पूर्वज मूल रूप से जैसलमेर (राजस्थान) के निवासी थे । इस मन्दिर के निर्माण का मुख्य उद्देश्य ईश्वर के चरणों में समर्पण कर निजी पुण्य लाभ अर्जित करना तो था ही साथ ही साथ वंश वृद्धि की कमना भी थी । इनके तीन विवाह हुए थे । प्रथम विवाह के उपरान्त मन्दिर की आधारशिला रखी गयी । पर प्रथम पत्नी के स्वर्गवास के पश्चात् जब

दूसरा विवाह होने पर दूसरी धर्मपत्नी भी अल्पकाल में ही स्वर्गवासी हो गयी तो उनका तृतीय विवाह हुआ। तृतीय धर्मपत्नी के सामने मन्दिर में भगवान द्वारिकाधीश जी की प्राण प्रतिष्ठा हुई और उसके परिणामस्वरूप इस वंश को एक मात्र कुल दीपक प्राप्त हुआ। जिसे गोकुलदास जी के नाम से जाना गया। सेठ चतुर्भुज दास जी ने अपनी जमींदारी के समय ग्राम हरदोई राजा की जमीन पर गोकुलपुरा नामक ग्राम की नींव डाली और उस पर हरिजनों को आबाद किया और आज भी यह हरिजनो की अच्छी आबादी का ग्राम है। इस मन्दिर की सेवापूजा वैष्णव सम्प्रदाय की बल्लभ कुलीन पुष्टि मार्गीय सेवानियमों पर आधारित है। श्री नाथ (राजस्थान) से प्राप्त होने वाली वार्षिक निर्देशिका से मन्दिर के सभी कार्य संचालित होते है। इस मन्दिर में भगवान के दर्शन प्रातः मंगला, श्रंगार एवं राजभोग तथा सायंकाल में उत्थापन संध्याआरती एवं रात्रि में शयन आरती के समय ही निर्धारित समय पर होते है। सावन के महीने में झूलों का विशेष उत्सव चलता है। उस समय इस मन्दिर में मथुरा वृन्दावन जैसा वातावरण हो जाता है। यह कार्यक्रम जन्माष्टमी के दूसरे दिन दधिखाना उत्सव तक चलता है। वैसे तो लगभग सभी त्यौहार इस मन्दिर में मनाये जाते है। परन्तु अन्नकूट उत्सव अपना विशेष महत्व रखता है। देवोत्थान एकादशी पर पूर्ण रात्रि दर्शन खुले रहते हैं। शरदपूर्णिमा पर ठाकुर जी को चौक पर ले जाया जाता है। जिससे चन्द्रमा की स्वच्छ शीतल धवल चाँदनी में उनके दर्शन हो सके। उस रात्रि शयन नहीं होता है क्योंकि यह रात्रि में ही भगवान जी द्वारा रासलीला की जाती है। इसी भाँति रामनवमी को दोपहर ११-३० बजे से १२-००बजे तक राम जन्मोत्सव एवं कृष्णाजन्माष्टमी को रात्रि ११-३० बजे से १२-०० तक कृष्ण जन्मोत्सव सम्पन्न होता है। सेठ चतुर्भुज दास पूरे धार्मिक आस्था वाले व्यक्ति थे। जिन्होंने अपनी आय का अधिकांश भाग कई बड़े मन्दिरों के निर्माण में लगाया। जिनमें जालौन में स्थित बड़ी देवी, छोटीदेवी भैरो जी और हनुमान जी आदि के मन्दिर प्रमुख है। अपनी जमींदारी के गांव गोराभूपका में भी रामचन्द्र जी तथा देवी जी के विशाल मन्दिरों का निर्माण कराया। सेठ चतुर्भुज दास जी अन्य जमींदारों के मुकाबले में अधिक जमींदारी न खरीद लें इस कारण ब्रिटिस सरकार ने व्यक्तिगत जमींदारी खरीदने पर पाबन्दी लगा दी थी तथा उन्होंने कई पूरे के पूरे गाँव जैसे हरदोईराजा , पारेन तथा कुसमरा, पनिहार आदि के कुछ भाग खरीद कर श्री द्वारिकाधीश जी के मन्दिर में लगा दिये। चूँकि द्वारिकाधीश जी के मन्दिर के निर्माण के साथ वंश वृद्धि की भावना भी जुड़ी थी जो आजतक श्री द्वारिकाधीश जी की कृपा से फलीभूत हो रही है। परिणाम-स्वरूप सेठ चतुर्भुज दास जी के पुत्र श्री गोकुल दास इनके पुत्र श्री द्वारिका दास. उपनाम (सीताराम महेश्वरी) तथा इनके पुत्र श्री विनय कुमार जी एक मात्र पुत्र होने का सुयोग चलता चला

आ रहा है । यह भगवान द्वारिकाधीश के आशीर्वाद का ही प्रतिफल माना जाता है ।

स्थापत्य :-

मन्दिर के मूल भवन का निर्माण ककैय्या ईटों तथा चूने से हुआ था जिसका जीर्णोद्धार सन १९६४ से १९७२ के मध्य सेठ द्वारकादास जी उपनाम सीताराम जी ने कराया।
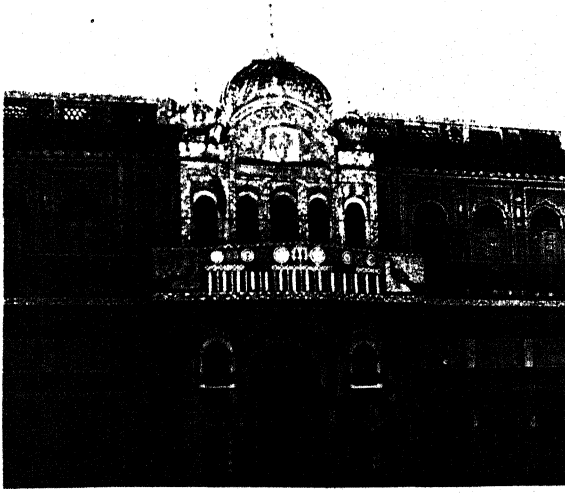
मन्दिर के निर्माण में तत्कालीन समय में चांदी के २५,०००/- रूपये व्यय होना बतलाया जाता है । उस समय चित्रकार तथा शिल्पी लोंगों में प्रतिस्पंर्धा जगाकर पर्दा डाल दिया जाता था कि कौन कितनी अच्छी शिल्प या चित्रकारी कर पायेगा । उनको पारितोपक भी दिया जाता था । विशेषकर गर्भग्रह के ऊपर बने हुए तीन मंगला कमरा इसका मुख्य प्रमाण है । समस्त मन्दिर का भवन तीन मंजिला है जोकि बगीचा एवं खुले परिसर सहित है । गर्भग्रह आयताकार है । जिसके पश्चिम में एक बगीचा है तथा जिसके पूर्व में दालान तथा फिर चौक है और चौक के उत्तरी ओर मन्दिर बड़ी देवी जी का तथा चौक के पश्चात् एक दालान है और दालान के बाद एक चबूतरा बना हुआ है । मन्दिर कुल १३६ फुट चौड़ाई एवं २०६ फुट लम्बाई में सीमित है । मन्दिर पूर्वाभिमुख है (१)

संदर्भ -

१- व्यक्तिगत सम्पर्क - सेठ द्वारकादास (सीताराम जी) जालौन दिनांक २२-४-९४

लक्ष्मीनारयणमन्दिर, जालौन

यह मन्दिर जालौन नगरी के उत्तरी छोर पर स्थित है ।

इतिहास -

इस मन्दिर का निर्माण सम्वत् १६२३ में श्री गोविन्द राव बुन्देला (खैर) द्वारा कराया गया (१) मन्दिर निर्माण के विषय में यह प्रचलित है कि इस मन्दिर का निर्माण सन्तान न होने के कारण सन्तान प्राप्ति हेतु कराया गया था (२) मन्दिर के उत्तर में मन्दिर के उपयोग हेतु एक कुआँ भी खुदा हुआ है।

वास्तुशिल्प -

मन्दिर १२५ फुट लम्बा एवं ८० फुट चौड़े क्षेत्र में बना हुआ है । मन्दिर

का गर्भग्रह बीच में बनवाया गया था । जिसमें चारों ओर खुला प्रदक्षिणा पथ के बाद दालान बनी हुई है । मन्दिर चबूतरे पर बना हुआ है । गर्भग्रह मण्डप आदि सब ३६ फुट ६ इंच की लम्बाई में बने है । इसकी चौड़ाई ३३.३ फुट ३ इंच है मन्दिर का गर्भग्रह ७ फुट ८" लम्बा तथा ७ फुट ५ इंच चौड़ा है । इस गर्भगृह के बाद इससे लगा हुआ आराधना मण्डप है जो कि ७फुट १० इंच चौड़ा तथा २७ फुट लम्बा है । आराधना मण्डप में उत्तर की ओर एक व्याम पीठिका बनी हुई है जो कि ४ फुट चौड़ी है एवं ३ फुट ऊँची है । व्यास पीठिका के नीचे भण्डार ग्रह है । आराधना मण्डप में अश्वमुखाकृतियुक्त खूटियाँ लगी हुई हैं । आराधना मण्डप के गर्भग्रह के सामने एक अष्टभुजी हौज लाल पत्थर का बना हुआ है । जिसमें फुब्बारा लगाया जाता था । इस हौज के

जल का स्रोत आराधना मण्डप के द्वार के पूर्वी दीवार में द्वार पर दक्षिणी ओर है । आराधना मण्डप
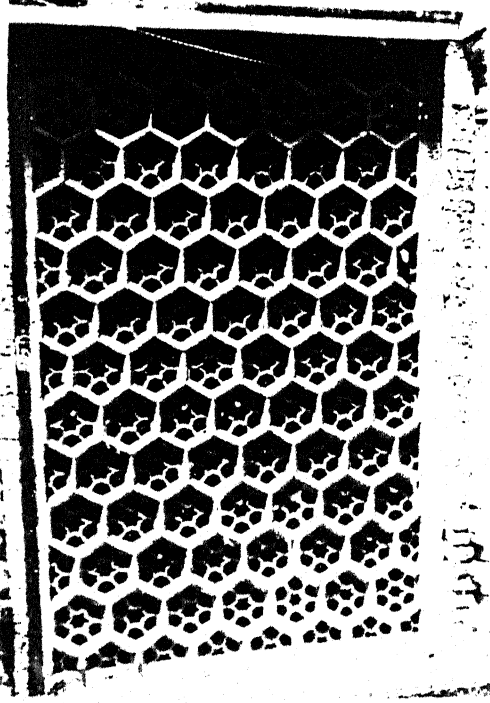
के पश्चात् कीर्तन मण्डप है जो कि मेहराबदार दरवाजे के उत्तरी ओर सभा कीर्तन मंडप में जुड़ता है । इस कीर्तन मण्डप के पूर्वी भुजा के मध्य एक अतिरिक्त स्थान बना हुआ है । सभा कीर्तन मण्डप में तीन स्तम्भ है जोकि २ फुट ६ इंच चौड़े है एवं यह भी लाल पत्थर द्वारा अलंकृत वेलबूटों से युक्त है । इसके नीचे एक तलघर बना हुआ है और इस तलघर का द्वार भी अलंकृत है । गर्भग्रह आराधना मण्डप आदि की चौखट भी लाल पत्थर द्वारा बनी हुई है । इस मन्दिर का प्रदक्षिणा पथ खुला हुआ है तथा यह ११ फुट १० इंच चौड़ा है । इस प्रदक्षिणा पथ से लगा हुआ जो रहायशी सहन है उसमें भी लाल पत्थर द्वारा निर्मित सुन्दर पटकोणीय जालियाँ बनी हुई है । जालियाँ ४.८ लम्बी तथा ३.३ चौड़ी है । गर्भग्रह के मध्य एक सिंहासन बना हुआ है जिस पर भगवान लक्ष्मीनारयण की मूर्ति प्रतिष्ठापित है । गर्भग्रह की चौखट के ऊपर की ओर रामानुज सम्प्रदाय का चिन्ह अंकित है । जिसमें दक्षिणी ओर शंख तिलक मुकुट तथा चक्र उत्तरी ओर पद्म है और मेहराबदार द्वार है जिसपर योगिक क्रिया ओं का प्रतिनिधित्व करने वाले मोर तथा ईश्वर से साक्षात्कार के द्योतक शुकों का अलंकरण है । मन्दिर की छत के किनारे पर उत्तरी कोने तथा पूर्व दक्षिणी कोने पर ऊपर की ओर एक नभचारी स्त्री आकृति का अंकनहै जिसके २-२ पंख लगे हुए है । इस मंदिर के गर्भग्रह के बाहर चतुष्कोणीय ऊपर की ओर सलामी देता हुआ पतला आमलक बना हुआ है । इसके पूर्व की ओर खटोली बनी हुई है । मन्दिर में सुन्दर चूने का प्लास्टर है और इसमें सुन्दर अलंकरण भी है । मन्दिर में दक्षिण की ओर से भी प्रवेश द्वार है । इस मन्दिर की छत पर पश्चिमी दक्षिणी कोने में भी एक कक्ष बना हुआ है जिसकी छत गोलाकार है । और इसके ऊपर पूर्ण विकसित कमल कलश स्थापना हेतु अंकित है । मन्दिर की छत के दक्षिणी ओर एक प्रवेश द्वार के बाहर एक व्यास पीठिका भी बनी हुई है जो कि सुन्दर लाल पत्थर , पतली जाली द्वारा अलंकृत है ।

मूर्तिशिल्प :-

इस मन्दिर में श्वेत संगमरमर द्वारा निर्मित भगवान लक्ष्मीनारायण की मूर्ति प्रतिष्ठित है जो कि २७ इंच ऊँची व १२ इंच चौड़ी है । भगवान नारायण की चतुर्भुजी

स्वरूप में यह प्रतिमा है (३)भगवान नारायण के ऊपरी वाये हाथ मेचक्र तथा ऊपरी दाये हाथ में गदा, स्वभाविक वाये हाथ में शंख साथ ही श्री धारित जो कि कमल धारण किये हुए वरद मुद्रा में है । माँ लक्ष्मी द्विभुजी तथा चक्र कुण्डल धारण किये हैं । भगवान नारायण स्वयं गरूण के ऊपर आसनारूढ़ है । गरूण के वक्ष में नागमाला कान में नाग कुण्डल हाथ में नाग कंगन पैरों में तथा जंघा में भी नाग अलंकरण सुशोभित है । नाग अलंकरण की गरूण की यह वर्तमान प्रतिमा दर्शनीय एवं विशेष आकर्षणीय है । गरूण की यह मूर्ति धावक मुद्रा में है । मन्दिर के गर्भग्रह और प्रदक्षिणा पथ के उत्तरी पश्चिमी कोने में एक मनोरंजन कक्ष है जिसमें एक ऐसा पत्थर लगा हुआ है जिसे बजाते ही तबले की धवनि निकलती है ।

संदर्भ सूची

१- लोकसंगम - स० राजाराम पाण्डे पृ ष्ठ सं ० -

२- व्यक्तिगत सम्पर्क पं० राम अवतार द्विवेदी दिनांक १५-५-६८

३- प्रतिमा विज्ञान - डा० इन्दुमती शर्मा पृ ष्ठ सं ० - १२६

करनखेड़ा

यह स्थान वर्तमान में नवगठित माधौगढ़ तहसील के ग्राम जगम्मनपुर के उत्तर में लगभग ३ किलोमीटर दूर २६°२५° उत्तर और ७६°-१५° पूर्व में स्थित है (1)इस करनखेड़ा के उत्तर में लगभग २ किलोमीटर दूर यमुना की कल कल करती जलधारा बहती है । इस क्षेत्र के राजा को राजाकर्ण के नाम से जाना जाता था । यह करनखेड़ा उरई से पश्चिम की ओर ६७ किलोमीटर दूर स्थित है ।

इतिहास -

जनश्रुति के अनुसार इस क्षेत्र का राजा कर्ण था जो स्वयं बहुत बड़ा दानी था तथा इसी कारण उसे दानवीर की उपाधि से सम्बोधित किया जाता था तथा उसकी कुल देवी कर्णी देवी थी और शायद इसी कारण इस क्षेत्र का नाम उसके नाम पर कर्णखेरा पड़ा । यह राजा कर्ण महाभारत के दानी कुन्तीपुत्र कर्ण नहीं थे अपितु सेंगर वंश के थे जिनको चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समकालीन कहा जाता है । करनखेड़ा एक बहुत विशाल टीला है जहाँ से यमुना का विहंगम दृश्य दिखाई पड़ता है तथा साथ ही साथ किसी बड़े किले की प्राचीर भी दृष्टिगोचर होती है जो कि उसके अतीत की कहानी कह रही है । राजा कर्ण बहुत बड़े दानी थे और उनके दान की कथायें यहाँ के जन मानष में बहुत लोकप्रिय है लोग उन्हें बड़े गर्व के साथ सुनतेऔर सुनाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि राजा कर्ण प्रतिवर्ष विन्ध्याचल (मिर्जापुर) जाकर सवा मन स्वर्ण का दान करते थे और इसी कारण उसे दानवीर की उपाधि से विभूषित किया गया थाऔर उसे दानवीर कहा जाता था । प्रतिवर्ष सवामन स्वर्ण प्राप्त करने हेतु राजा कर्ण अपनी कुल देवी कर्णी की उपासना किया करता था तथा निश्चित तिथि पर अनुष्ठान करके पूजन में अपना स्वयं का शीर्ष कुलदेवी कर्णी को समर्पित कर देता था जिससे कर्णी देवी प्रसन्न होकर उसे जीवन दान देती थी और स्वर्ण भी देती थीं । राजा कर्ण विन्ध्याचल में जाकर इस स्वर्ण का दान किया करता था । राजा कर्ण का वास्तविक नाम राजा सिंहभूमि था तथा वह प्रतिदिन भी स्वर्ण मुद्रायें दान किया करता था । उसके इसी दानी स्वभाव के कारण उसकी तुलना कुन्तीपुत्र कर्ण से करके यहाँ लोग उसे राजा कर्ण कहने लगे (२)

ऐसी भी लोकोपत्ति है कि मालव नरेश विक्रमादित्य ने जब राजा सिंहभूमि अर्थात् कर्ण की दानवीरता की बात सुनी तो उन्हें भी आश्चर्य हुआ कि दान करने के लिए इतना स्वर्ण राजा सिंह भूमि के पास कहाँ से आता है और इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए राजा विक्रमादित्य ने रामदास का वेश बनाकर राजा कर्ण के यहाँ सेवक का कार्य करके कर्ण के पूजा अनुष्ठान आदि का भेद लेकर देवी कर्णी से स्वर्ण का अक्षय पात्र प्राप्त कर , उसे राजा कर्ण को सौंप कर स्वयं वापिस चले आये थे (३)इस कथा की पुष्टि इस बात से की जा सकती है कि विक्रमादित्य का समय काल ईसापूर्व ५७ था तथा इस स्थान से प्राप्त उत्तरीय श्याम पालिस युक्त मिट्टी के वर्तनों के अवशेषों को भी पुरातत्ववेतागण ईसा से ६०० वर्ष पूर्व का मानते हैं छत्रसाल कालीन लाल कवि ने अपने ग्रन्थ छत्र प्रकाश में इस क्षेत्र में महाराज छत्रसाल की विजय यात्रा का उल्लेख करते हुए कोंच तथा कनार- की ओर कूच करने का वर्णन किया है ।

वर्तमान में इस स्थान पर राजा राजेन्द्र शाह ने श्री १०८स्वामी महाराज बजरंग दास जी को पूजा हेतु अधिकृत किया है। श्री बजरंग दास ने बतलाया कि इस स्थान में पहले अन्य कोई रुकने में असमर्थ था क्योंकि इस स्थान में केवल सेंगर वंशियों का ही निवास हो सकता है। श्री महाराज बजरंग दास जी की माता सेंगर एवं पिता तोमर थे। इस कारण से यह यहाँ पर रूके, यह स्थान राम भक्त तुलसीदास जी के समय में शान्त हो गया। इसके पूर्व में यह स्थान काफी विकसित था। यहाँ के प्रचलित लोक गीतों के अनुसार यह तथ्य सामने आया है कि जब रामचरित मानस के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास जी यमुना नदी में जलमार्ग से जा रहे थे तब इस कर्ण खेड़ा के स्थान पर आवाज लगाई कि कोई है जो मुझे पानी पिलाये। गोस्वामी तुलसी दास जी की आवाज का कोई प्रतिउत्तर न होने से गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस स्थान को खेड़ा हो जायेगा कहा अर्थात् यह स्थान शान्त हो जाये। तबसे ये स्थान शान्त हो गया। अभी महाराज बजरंग दास जी ने इसे पुनः आबाद किया। गोस्वामी तुलसीदास जी की उपर्युक्त कथा विषयक लोकगीत इस प्रकार है।

कब तुलसी कहत पुकार जमुन विच ,प्यास की त्रास बुझाये देना।
भादौं में जब बाढ़ी धार , तुलसी लई आसनी डार ॥
बैठ गये वे पल्थी मार, चले आ रहे माँझी धार।
फिर मन में सुमिरन राम आधार, ग्रन्थ रचो उनमुक्त द्वार ॥
पढ़े हो जाये बेड़ा पार, कोई जानत होय सुनाय देय।
मेरी प्यास की त्रास बुझाये देना। (४)

इस स्थान के राजा कर्ण सेंगर वंशीय थे और उनका यहाँ पर किला भी था। इस वंश की कुलदेवी कर्णी थी। उज्जैन में स्थित हरसिद्ध मन्दिर में माँ कर्णी देवी का धड़ आज भी विराजित है। जिसको राजा विक्रमादित्य वरदान स्वरूप ले गये थे और राजा कर्ण ने देवी के चरण पकड़ लिये थे अस्तु यहाँ पर सिर्फ कर्णी देवी के चरण रह गये जिनकी पूजा की जाती है। इस करन खेड़ा टीले पर एक मन्दिर स्थित है एवं इसके पश्चिम में प्राचीन किले के भग्नावशेष है। इस करनखेड़ा के राजा के वंश के विषय में निम्नवत् जानकारी मिलती है।

"वाहन नृप से छटी साखा, भये नृप करन महावार साखा।
तिन सोलंखी दानव मारो उनहि करनगढ़ जाय संभारो ॥
दसा पंसोरी सोनो दाना, दिना प्रति करत रहे परधाना। (५)

अर्थात् वाहन नृप की छटवीं शाखा में कर्ण नाम के राजा हुए जिन्होंने सोलंखी दानव को मारकर 'करनगढ़' को सम्भाला ।

एक तथ्य यह भी है कि महराज कर्णदेव ने सन ६३६ में यमुना के दक्षिण तट पर कर्णावती राजधानी बसाई और कर्ण गढ़ दुर्ग बनवाया । इसी को फिर कनार कहा जाने लगा (६) यह कनार सूबै कनार यमुना तट का प्रान्त इटावे से लेकर बाँदे तक कहाता था और सूबे राजधानी कालपी थी । (७) सन १५२८ ई० में फतेहपुर सीकरी के मैदान पर मेवाड़ के राणा सांगा के नेतृत्व में राजपूतों ने बादशाह बाबर से भारी लड़ाई ली तब राणा की सहायता में 'कनार' से भी फौज गयी थी । बाबर विजयी होकर पहले चन्देरी तथा बाद में कनार पर चढ़ आया और कनार के प्राचीन गढ़ को उड़वा दिया (८)

मन्दिर एवं उसका स्थापत्य :-

इस करनखेड़ा टीले पर एक मन्दिर है जो कि मठिया के आकार में वर्गाकार स्वरूप का है जिसकी प्रत्येक भुजा १५ फीट लम्बी है । यह मन्दिर बड़ा साधारण सा है ।
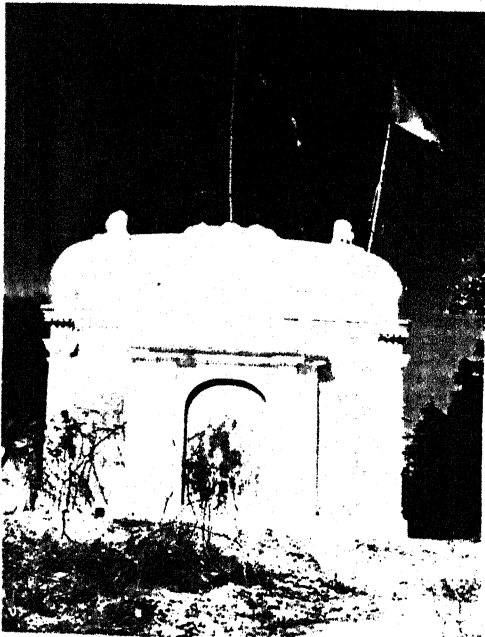
इसमें एक गर्भग्रह है तथा गर्भग्रह के सामने उसी से संलग्न पूजा मण्डप है । इस मन्दिर के गर्भग्रह व पूजा मण्डप पर सम्मिलित गोल डाट की छत है जिसके ऊपर कलश स्थापित है । इस मन्दिर के विषय में अनुमान है कि यह मन्दिर लगभग १३ वीं १४ वीं शताब्दी का होगा । इस मंदिर के अन्दर संगमरमर की सिंह वाहिनी की मूर्ति तथा इस मन्दिर में सिंह वाहिनी की मूर्त्ति से आगे पहले लाल बालू पत्थर के सिर्फ (चरण) विराज मान है । चरणों के ऊपर का भाग टूटा हुआ है । यहाँ के लोगों की मान्यता है कि यह चरण कर्णी देवी के हैं । परन्तु इन चरणों पर कोई भी चिन्ह स्त्री श्रंगार का नहीं है । इन चरणों के अगल-बगल में दो और छोटे - छोटे चरण है । अस्तु ये चरण विष्णु के प्रतीत होते हैं । मन्दिर के ऊपर छत के चारों कोनों पर महात्माओं की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित है । यह मठ उत्तराभिमुख है ।

इस मंदिर के बाहर दरवाजे पर एक २०इंच x२४ इंच का अंकित पाषाण खण्ड है । इस पाषाण खण्ड पर नग्न मुद्रा में एक पुरूष आकृति अंकित है । जिसके पैरों व हाथों पर

लतायें ... हुई (लिपटी हुई) हैं। इस पुरूष आकृति के केश ऊर्ध्वाकार जूड़ा के रूप में है तथा कानों में बड़े -२ कुण्डल है जो कि उसके राजघराने के परिचायक है। इस आकृति के दोनों ओर त्रिभंग मुद्रा में एक अप्सरा अंकित है तथाऊपरकीओरविद्याधरअंकित है। इसी शिलाखण्ड पर एक नतमस्तक मुद्रा में गज भी अंकित है। इस शिलाखण्ड के सम्पूर्ण अंकन को देखने से यह स्पष्ट होता है कि यह अंकन वाहुवली का है जो कि भगवान ऋषभदेव के द्वितीय पुत्र थे। इस अंकित शिलाखण्ड के इस क्षेत्र में
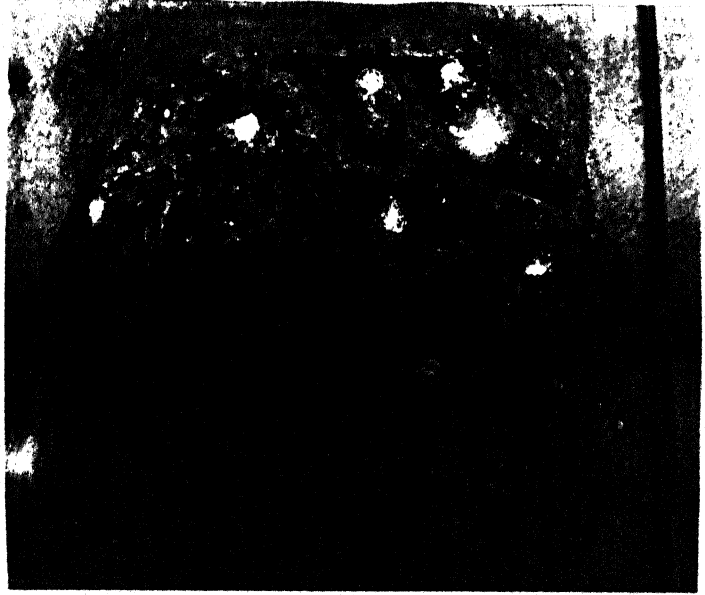
होने से यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि इस क्षेत्र में जैन प्रभाव था तथा बाहुवली का पूजन अर्चन होता था। यमुना के साथ जैन धर्म का प्रचार प्रसार था इस आशय की पुष्टि होती है (९)

किले का वर्णन -

यहाँ पर एक किला भी है जो कि सम्वत् ११०७ में बीरान हो गया था। यह किला यमुना की ऊँची कगार पर दक्षिण पूर्व में बना हुआ था। जिसका क्षेत्रफल काफी विस्तृत था। इसके भग्नावशेषों से जो ईटें प्राप्त हुई हैं वे विशिष्ट प्रकार कीहै जिनकी नाप १०x६ इंच १७.५ **x** ६.५ इंच, १८.५ **x** १३इंच, ६.५ **x**१२.५ इंच १०.५ **x** ८.५ इंच हैं एवं इन सभी ईटों की चौड़ाई लगभग ढाई इंच हैं। ईटों की नाप के मुतबिक ऐसा लगता है कि यह किला लगभग ६ वीं शताब्दी के आसपास आवाद रहा होगा (१०)

प्राप्त सामग्री के आधार पर मूल्यांकन -

इसी क्षेत्र में बालू पत्थर **(Sand stone)** का एक सिर भी प्राप्त हुआ है जो कि त्रिनेत्री भगवान शंकर का है। यह शंकरशीर्ष अद्भुत है। जटामुकुट धारण कियेहुए भगवान शिव का पार्श्वांकन है जो कि चक्रकुण्डल पहने हुए है। यह शीर्ष चन्देल कला का द्योतक है जो कि १२ वीं १३ वी शताब्दी में काफी उन्नत थी। यही पर एक सिंह मुख भी प्राप्त हुआ है जो कि मुख खोले हैं तथा उसपर केशों का विन्यास लटा स्वरूप में अंकित है।यह सिंह

मुख बैठी मुद्रा मे है । इस स्थान से उत्तरीय श्याम पालिश युक्त कुछ टुकड़े भी मिले (**Northen Black polish pottery**) है । इन उत्तरीय श्याम पालिस युक्त ठीकरों का चलन ६०० वर्ष ईषा पूर्व से २०० वर्षपूर्व ईसा तक मिलता है तथा गंगा यमुना सोन नदी की घाटी में हरियाणा से उत्तर प्रदेश होते हुए इस प्रकार की एन०वी०सी० पात्रों का चलन उस समय था । इन एन०बी०सी० का करन खेड़ा क्षेत्र में प्राप्त होना इस बात का प्रतीक है कि करनखेड़ा में ६०० वर्ष ईषापूर्व से २०० वर्ष ईसापूर्व के काल की सभ्यता
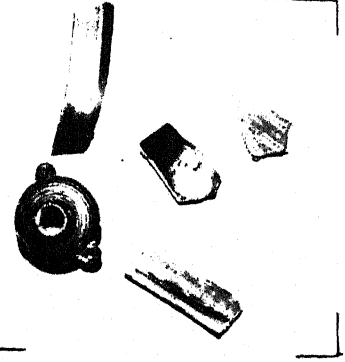
रही होगी । इसके अलावा इसी क्षेत्र से सहायक वर्तनों (**Associate wares**) के रूप में एक मिट्टी के घड़े का ऊपरी भाग (टूटा हुआ) भी प्राप्त हुआ है । जिसका मुँह बाहर कीओर निकला हुआ है तथा गर्दन पर दो धारियों अन्दर की ओर धँसी हुई एवं इन दोनों धारियों के नीचे उठे भाग पर कुछ त्रिशंकु के आकार की धँसी डिजाइन है । मिट्टी के पात्रों पर कुछ गड़ाकर डिजाईन बनाने की कला तीसरी चौथी शताब्दी का संकेत देती है। एक और मिट्टी के किसी पात्र का टुकड़ा प्राप्त हुआ है जिस पर खोद कर वृत्ताकार डिजाईन अंकित की गयी है । किसी धारदार वस्तु द्वारा ऊपर से खोदकर बनी हुई डिजाईन को इनसाईज्ड डिजाईन (**Incised Design**) कहते हैं । इस प्रकार की कला गुप्तकाल में देखने को मिलती है। अस्तु ये मृण पात्र हमें गुप्त काल का संकेत देते हैं । किसी गडुआ अथवा लोटे की एक टोंटी भी प्राप्त हुई है जो कि उस समय की कला एवं जन जीवन की अभिरूचि को प्रदर्शित करती है । हो सकता है कि यह टोंटी दार (**Spouted**) पात्र किसी पूजन जैसे करवा चौथ आदि में अथवा घी तेल जैसी वस्तु रखने के काम में आता हो । यह १२ वीं १३ वीं शताब्दी का संकेत देता है । एक मिट्टी का गोल पहिया भी प्राप्त हुआ है जो कि सम्भवतः किसी खिलौना गाड़ी का होगा (११)

इसी क्षेत्र से एक ताँबे का सिक्का भी प्राप्त हुआ है जो कि मोइज्जुद्दीन वहरम शाह का है जिसका कार्यकाल सन् १२४० से १२४२ तक था तथा रजिया सुल्ताना (१२३६से १२४०) के बाद दिल्ली के तख्त पर बैठा था । इससे यह बात प्रमाणित होती है कि सन् १२४० में इस क्षेत्र पर दिल्ली तख्त का प्रभाव था । उपर्युक्त सभी प्राप्त वस्तुयें बुन्देलखण्ड संग्रहालय, भरत चौक , उरई में संग्रहीत है ।

संदर्भ

१- जालौन गजेटियर पृष्ठ संख्या [illegible]
२- साप्ताहिक व्यास भूमि ४ जनवरी १९९३ - हरीमोहन पुरवार पृष्ठ संख्या ३
३- महाकाली की स्वर्ण मुद्रायें --चित्रकथा पुस्तक
४- साक्षात्कार - बाबा सुन्दर दास दिनांक ८-६-९२
५- लोकेन्द्राख्यान - शिवनाथसिंह सेंगर - पृष्ठ संख्या २
६- लोकेन्द्राख्यान- शिवनाथसिंह सेंगर - पृष्ठ संख्या ६८
७- छत्र प्रकाश - बाबू श्याम सुन्दर दास व कृष्ण बल्देव वर्मा - पृष्ठ संख्या ४८
८- लोकेन्द्राख्यान - शिवपाल सिंह सेंगर - पृष्ठ संख्या ७१
९- साप्ताहिक व्यास भूमि (४ जनवरी १९९३) - - हरी मोहन पुरवार पृष्ठ संख्या ३
१०- गंगा पुरातत्वांक - कालनिर्णय में ईटें और गहराई - राहुल सांस्कृत्यायन - पृष्ठ संख्या २०७
११- दैनिक सोचसमझ प्रवेशांक - हरीमोहन पुरवार

कन्जौसा

यह स्थान जगम्मनपुर में उत्तर पश्चिम की ओर लगभग २ मील की दूरी पर २६°-२५° उत्तर एवं ७९° १४° पूर्वी अक्षांस पर स्थित है (१) यहाँ पर ५ नदियाँ यमुना चम्बल, कुआँरी, पहूज व कालीसिन्धु का संगम स्थल है। इस स्थान को बाबा साहब का स्थान भी कहा जाता है।

इतिहास -

इस स्थान में कंज (कटीला) नामक वृक्ष बहुतायत में पाये जाने के कारण यह स्थान कन्ज कहलाता है। इस स्थान पर प्राचीन समय में लगभग २००० साधु रहते थे और यहाँ पर जितने भग्नावशेष इस समय दृष्टव्य है यह सब इन साधु महात्माओं के स्थान थे। यहाँ पर अन्य कोई बस्ती नहीं थी। कंज वृक्ष की अधिकता के कारण जहाँ पर यह स्थान कंज कहलाता वहीं इस स्थान पर रहने वाले लोग कन्जड़े कहलाते थे। इस स्थान को बाबा साहब का स्थान इसलिए कहते है कि यहाँ प्राचीन समय में मुकुन्दबन नामक बाबा रहते थे जो कि पूर्व से चले थे और चनावली में प्रथम विश्राम किया वहाँ पर उन्होंने देखा

कि गायें प्यास के मारे बेहाल है यथा उन्होंने अपनी तूमी से पानी की धारा प्रवाहित कर गायों की प्यास बुझाई । बाबा मुकुन्दवन जब इस कन्जौसा स्थान पर आये उन्हें यह स्थान अत्यधिक शांत एवं प्रिय लगा जिससे वह यहाँ पर रुक गये और इसके पश्चात् यहाँ पर कुछ दिन रहे तथा बाद में वह उज्जैन गये जहाँ महामाया काली से उनका साक्षात्कार हुआ और वहीं से माँ काली सशरीर बाबा साहब के साथ चली । जिस गाड़ी पर यह लोग आ रहे थे उस गाड़ी का एक पहिया रथकुँआ नाम के स्थान पर रेत में फँस गया । तत्पश्चात् वहीं पर बकरे की बलि दी गयी । रथ निकलकर चला आया और वहीं पर माँ काली, मूर्ति रूप में प्रतिष्ठित हो गयी । यह घटना जब अकबर के दरबार में पहुँची तब अकबर इससे हतप्रभ हो गये और उन्हें बाबा मुकुन्द वन की परीक्षा लेने की दृष्टि से उन्हें जेल में बन्द करा दिया । बाबा जब जेल में बंद हो गये तब बाबा ने जेल में चलने वाली सभी चक्कियों को जाम कर दिया और अपने अध्यात्मिक प्रताप से सारा आटा पिसवाकर अपना परिचय दिया । इससे भी अकबर संतुष्ट न हुए तब उन्होंने घड़े में यमुना का पानी एक कटील की लकड़ी तथा मिट्‌टी का लोटा मगाया और बाबा ने उसे अपनी अलौकिक शक्ति के प्रताप से यमुना जल को दूध , कटील की लकड़ा को चन्दन में तथा मिट्टी के लोटे को स्वर्ण में परिवर्तित कर दिया । इससे बाबा की महानता दरबार में स्थापित हुई और बाबा को ससम्मान छोड़ दिया गया । बाबा मुकुन्दबन के चेले थे मन्जुवन जिसके विषय में यह कहा जाता था कि इन्होंने जीवित ,समाधि ली थी । वह एक मठ में नौ दिनों के लिए बंद हो गये थे परन्तु उनके चेले ने डर के कारण आठवें दिन मठ खोल दिया देखा कि बाबा साहब का ऊपरी शरीर अदृष्य हो गया है सिर्फ चरण मात्र शेष रह गये उनके शिष्य ने तुरन्त मन्जुवन बाबा के चरण पकड़कर कहा कि गुरूदेव मुझे भी साथ ले चलो और फिर वे चरण ही पत्थर के रूप में यहाँ परिवर्तित हो गये और यहाँ पर प्रतिष्ठित है । इस कंजौसा के विषय में तथा मन्जुवन बाबा के विषय में यह भी बताया जाता है कि जब रामचरित मानस के रचयिता गोस्वामी तुलसीदासजी यमुना जलमार्ग से जा रहे थे तब उन्होंने कंजौसा के पास आकर पानी के लिए पुकार लगायी । मन्जुबन बाबा ने पुकार सुनी और अपने गुरू मुकुन्दबन से पुकार बताई । गुरू मुकुन्दवन ने अपनी खड़ाऊँ मन्जूवन को देकर कहा कि इसे पहनकर तूमी लेकर जाओ और मुनि की प्यास बुझाओ । उस खड़ाऊँ को पहनकर मन्जुवन यमुना नदी पर चलते हुए गोस्वामी तुलसीदास के पास पहुँचे और उनकी प्यास बुझाई यह खबर जगम्मनपुर के राजा को मिली तब वह तुरन्त वहाँ से आये और गोस्वामी तुलसीदास को नमस्कार कर अपने किले में ले गये (२)इस क्षेत्र का यह लोकगीत इस घटना की पुष्टि करता है -।

कन्जौसा की सृष्टि अपार, लख तुलसी ने कही पुकार

है कोई भक्त मढ़ी के द्वार, मन मुख पानी देवे डार ,
सो पावै हरि के दरवार फिर मन्जुवन ने सुनी पुकार ।
गुरू के शरण में दीन्हीं डार ,गुरू कैसा होय बताए देना
मेरी प्यास की त्रास बुझाय देना ।
गुरू ने हँसकर कही सुनाय , मेरी पायन खड़ाऊ डार ।
वा में तुमी ले ओ सम्हार , फिर जल्दी जावौ जमुना मझार
मन्जुवन के खुशी अपार, श्री सती सहारा लगाय देना ।
मुनि पहुँचे जहाँ पर्वत धार, तुलसी को कर नमस्कार ।
पियो नीर तुम बारम्बार , टूटी नही मुनि धर की धार ।
तुलसी चितवत हिओ निहार, धन धनवरा तुम्हारो गुरू द्वार ।
मोये गुरू के दरस कराय देना, मेरी प्यास की त्रास बुझाये देना
फिर आये मन्दिर को धाम , गुरू ने हृदय से लये लगाय
खातिर तन मन दई कराय , ऐसा हुकुम दिया फरमाय ।
अब मेला जू जारी हुए जाय इतमनि दूत भिजवाय ।
सन्तन मुनि भरमाय लेना, मेरी प्यास की त्रास बुझाये देना
पहुँची खबर जगम्मनशाह राजा जी तुरन्त चले सिधाय ।
फिर तुलसी को कर नमस्कार, तुलसी का लै संग लिवाय
अतिरिक्त भूमि दई बतलाय, निज कर देहरी दई रूपाय ।
प्रभु की मूरत दई हरषाय, ज्यों-ज्यों उत्सव होय तुम्हार ।
त्यों त्यों महक लक्ष्मी आय, दीनन की सुधि ले लेना ।
मेरी प्यास की त्रास बुझाये देना ।

जगम्मनपुर के राजा के विषय में यह भी कहा जाता है कि कन्जौसा और उज्ञयिनी के बीच में राजा जगम्मनपुर विख्यात नाम था और वह सोने मढ़े सीगों की गायों का दान करते थे। इस संदर्भ में लोकगीत की पक्तियाँ उक्त प्रकरण को सिद्ध करती हैं –

धोरा परवारह धरौ जमुना निकट भये कालेशवर
इत कंजौसा उत कालेश्वर , बीच में रहस रचो
राजा गऊअन को दान देत सोने सींग मढ़ायो (३)

उपर्युक्त प्रकरण से प्रतीत होता है कि यह स्थान मुगल काल में अकबर के समय में भी आबाद था ।

मूर्तिकला -

यहां के मन्दिर में काली एवं भैरव की अद्वितीय मूर्ति है।

माँ काली मूर्ति -- माँ काली की मूर्ति काले पत्थर द्वारा बनी हुयी है जो चतुर्भुजी है तथा जिसकी लम्बाई २४इंच व चौड़ाई १२इंच है माँ काली के दोनों बाये हाथ में खप्पर तथा दाहिने हाथ में शंखे हैं ।

भैरव मूर्ति यह मूर्ति भी काले पत्थर का बनी हुयी है , जो २१ इंच लम्बी व ६ इंच चौड़ी है ।

स्थापत्य -

कन्जौसा स्थान ५ मठियों का बना हुआ है , जो पश्चिमाभिमुख है । इन मठियों की छत गोल गुम्बदाकार है व आधार चौकौर है । ५ मठियों की कुल लम्बाई ७५ फुट तथा चौड़ाई १५ फुट है । जबकि ५ वी मठिया १५ फुट लम्बी व १५ फुट चौड़ी है इन मठियों की दीवार ३ फुट चौड़ी है तथा दरवाजा ढाई फुट चौड़ा है । मठिया के ऊपर कमलदल अंकित है जिसके ऊपर शिखर स्थापित है तथा मठिया में शंकर पार्वती जी की श्वेत संगमरमर की मूर्ति स्थापित है जो १५ इंच ऊँची है और जिसके बराबर में माँ सिंहवाहिनी की १३ इंच ऊँची मूर्ति भी स्थापित है । द्वितीय मठिया में विघ्न विनायक गणपति सहित शंकर परिवार प्रतिष्ठित है । चौथी मठिया में विष्णु की मूर्ति पूर्वी दरवाजे में उत्तरी दरवाजे में काली माँ और पश्चिमी दरवाजे में सिंहवासिनी की मूर्ति प्रतिष्ठापित है और ५ वी मठियों में समाधिस्थ बाबा साहब के चरण अंकितहै।

इस कन्जौसा स्थान से लगभग २ फर्लांग दूर दक्षिण पश्चिम में सती स्थान है । सर्वप्रथम यहाँ पर सुमनदेवी नाम की एक सती हुई थी । तत्पश्चात् रामबेटी फिर १०१ स्त्रियाँ यहाँ पर सती हुई इसलिए यह स्थान सती स्थान कहलाता है और उसकी ही याद में यहाँ मठियां बनी हुई है । वर्तमान में १६ मठियों के भग्नावशेष यहाँ पर दृष्टव्य है ।

मठियों का स्थापत्य :- यह मठिया नीचे से चौकार तथा ऊपर गोल गुम्बदाकार बनी हैं । मठिया की दीवार के ऊपर एक ओर आला बना हुआ हैं । सभी मठियां उत्तराभिमुख हैं ।

विशिष्ट मठियाँ -- यह मठिया अष्ट भुजी हैं जिसके ऊपर छज्जा निकला हुआ हैं । छज्जा तोड़े के ऊपर आधारित हैं । छज्जा और तोड़े के मध्य में जो स्थान बचता हैं वहाँअति सुन्दर चित्रकारी हैं सभी मठियाँ कौड़ी व चूने के प्लास्टर से युक्त हैं । दरवाजा मेहाराबयुक्ततथा

दीवार २ फुट चौड़ी हैं । इसकी चित्रकारी से सिद्ध हैं कि यह मठिया लगभग ३०० वर्ष प्राचीन हैं और यह सती मठ न होकर कभी शिव मन्दिर रहा होगा ।

मठिया की चित्रकारी -- इस मठिया में तोड़े के स्थान पर जो चित्रकारी है वह अत्यन्त सुन्दर हैं और इसमें हरवल रंगों द्वारा चित्रों का निर्माण किया गया हैं । यहाँ के चित्र में पुरुष , स्त्री आखेट, अश्वरोही , पुरुष, गणपति, कल्कि अवतार, देवी स्वरुप आदि इस चित्र में श्रंखला में अंकित है

संदर्भ -

१- जालौन गजेटियर पृष्ट सं० १७०

२- व्यक्तिगत साक्षात्कार - राजा राजेन्द्र शाह जगम्मनपुर दिनांक ६-६-६२

३- व्यक्तिगत साक्षात्कार - बाबा सुन्दरदास दिनांक ८-६-६२

रामेश्वरम् मन्दिर माधौगढ़ -

यह मन्दिर माधौगढ़ कस्बे के रामस्वरूप लाला के बाग में स्थित है। पहले यह स्थान नजर बाग के नाम से जाना जाता था जो कि माधौगढ़ के राजा माधौसिंह की सम्पत्ति था।

इतिहास-

इस मन्दिर का निर्माण राजा माधौसिंह द्वारा लगभग ७००-८०० वर्ष पूर्व अर्थात् १२वीं १३वीं शताब्दी में कराया गया था। इसी मन्दिर के उत्तर पश्चिम में एक तालाव भी बनवाया गया था जो कि ८० फुट **X**८० फुट की वर्गाकार आकृति में बना हुआ था। इस मन्दिर के साथ लगभग १ एकड़ भूमि संलग्न है जिसके द्वारा इस मन्दिर का रखरखाव व पूजन वंदन नियमित रूप से सम्पन्न होता है। यह मन्दिर जनमानस की आस्थाओं का प्रतीक है एवं इसी कारण जन मानस को समर्पित भी है। इस मन्दिर के पास खुदाई में ईसा से १८०० वर्ष पूर्व की तमाम मूर्तियाँ जिनमें बुद्ध एवं देवी देवताओं की विशिष्ट शैली में अप्राप्त मूर्तियाँ निकली बताई जाती हैं (१) औरंगजेब के शासन काल में उसके आदेशानुसार इन मूर्तियों को तुड़वा दिया गया। (२)

इस स्थान की खुदाई के दौरान तालाब के चारों ओर पक्की दीवार मिली है जो आज भी दृष्टव्य है। इसी तालाब के चारों ओर काफी गहराई की पक्की सुरंगें मिलीं हैं जो कि कहाँ को जाती हैं यह ज्ञात नहीं हो सका है। इसकी पूर्ण खुदाई कराये जाने से प्राचीन सभ्यता के अवशेष एवं नगर स्थापत्य के चिन्ह प्राप्त हो सकते हैं (३) इस रामेश्वरम् मन्दिर में स्थापित शिवलिंग प्रसिद्ध तीर्थ रामेश्वरम् (तमिलनाडु) से मिलता जुलता है जो कि भारत में अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। (४) इस स्थल पर १६७० तक रामेश्वरम् धाम के नाम से एक बड़ा भारी मेला लगता रहा है। (५)

स्थापत्य -

मन्दिर का स्थापत्य वेसर शैली का रहा होगा। आज जिस स्थान पर यह शिवलिंग प्रतिष्ठित है वह पृथ्वी से लगभग १० फुट ऊँचा स्थान है तथा उस पर कोई छाया इत्यादि नहीं है।

शिवलिंग -

यह रामेश्वरम् शिवलिंग लाल पत्थर द्वारा निर्मित है जो कि आधार से १७ इंच ऊँचा एवं १५ इंच चौड़ा है। यह शिवलिंग एक मुखी है जिसमें लिंग ८ इंच चौड़ा है तथा

उसके बाद मुखाकृति बनी हुई है । शिवमुख के ऊपर शेषनाग की आकृति अंकित है । मुख के कर्ण लम्बे लटकन दार कुण्डलों से युक्त हैं तथा मुख के ऊपर जटा मुकुट सुशोभित है । शिवलिंग पर ऊर्ध्वाकार धारियाँ दिखलायीं पड़ती है ।

यह बात असत्य कि इस प्रकार का शिवलिंग केवल तीर्थ धाम रामेश्वरम् में है । इसी प्रकार का एक मुखी शिवलिंग कन्नौज उत्तर प्रदेश के राम लक्ष्मण मंदिर में भी स्थापित है जिसका काल ९वीं शताब्दी है ।(६)

इस स्थान से प्राचीन टैराकोटा की एक ईट प्राप्त हुई है जिस पर मौर्य ब्राह्मी लिपि का **"प"** अक्षर बना हुआ है परन्तु इससे यह बात प्रमाणित नहीं होती है कि यह ईट मौर्यकाल का प्रतिनिधित्व करती है । इस ईट का आकार ९ इंच **x** ९इंच है तथा मोटाई ३ इंच है । इस आकार की ईटों का प्रचलन नवीं शताब्दी में हुआ करता था ।(७)मौर्य कालीन ईटों का आकार एवं मोटाई इससे बिल्कुल भिन्न थ।

मूल्यांकन -

माधौगढ़ रामेश्वरम् मन्दिर के शिवलिंग एवं वहाँ से प्राप्त उपर्युक्त ईट इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि इनका काल नवीं शताब्दी है । अस्तु यह कहना उचित ही होगा कि इस मन्दिर का निर्माण नवीं शताब्दी में हुआ होगा । इस मन्दिर के आस पास की खुदाई से जो अन्य मूर्तियाँ निकली हैं उनका अवलोकन करने से भी यह स्पष्ट होता है कि इनका कार्यकाल नवीं शताब्दी के लगभग होगा । यहीं से प्राप्त द्विभुजी गणेश की प्रतिमा जो कि इस समय बुन्देलखण्ड सग्रहालय उरई में है, नवीं दसवीं शताब्दी का संकेत देती है ।

सन्दर्भ -

१- समाचार पत्र दैनिक आज - दिनांक १७जनवरी १९९५ - पृष्ठ संख्या ५

२- " " " "

३- " " " "

४- " " " "

५- " "

६- कन्नौज का पुरातत्व - डा० गोपाल कृष्ण अवस्थी - पृष्ठ संख्या १५६ प्लेट संख्या ८-

७- गंगा पुरातत्वांक - राहुल सांस्कृत्यायन - पृष्ठ संख्या -२०७

पंचमुखी महादेव मन्दिर - चुर्खी

यह मन्दिर जालौन तहसील के अन्तर्गत चुर्खी ग्राम में स्थापित हैं ।

इतिहास -

मन्दिर के ऊपर कोई भी शिलालेख इत्यादि उपलब्ध न होने के कारण इसके निर्माण की तिथि वास्तुशिल्प एंव मूर्तिशिल्प पर ही आधारित होगी । यह मन्दिर ४०० वर्ष प्राचीन हैं । और इसका निर्माण जनसाधारण के सहयोग एंव जन आकांक्षाओं की पूर्ति तथा उनके विश्वास हेतु किया गया था (१)

स्थापत्य -

यह मन्दिर वर्गाकार एवं पूर्वाभिमुख हैं । मन्दिर के पूर्वीद्वार के ऊपर कोविल बनी हुयी हैं । गर्भग्रह भी वर्गाकार हैं । गर्भग्रह के पूर्व में अर्चनामण्डप हैं और यह पूराआकार एक चबूतरे पर स्थित हैं । इसके बाद खुला प्रदक्षिणा पथ हैं तथा प्रदक्षिणा पथ के दूसरे ओर सेहनं हैं । इस मन्दिर की उत्तरी बाह्प भुजा के मध्य एक द्वार भी है और उसके उपर भी एक कोविल बनी हुयी हैं । गर्भग्रह के मध्य एक शिवलिंग स्थापित हैं और इस मन्दिर के उत्तर में शिवलिंगाभिमुख नन्दी प्रतिष्ठापित हैं । गर्भग्रह के ऊपर षटभुजी आकार हैं जिसके ऊपर गोल गुम्बद बना हैं और इस गोल गुम्बद के उपर पुनः एक छोटा सा गुम्बदाकार अंकित हैं जिसकेऊपर ध्वजदण्ड लगा हैं । इस गोल गुम्बद के तल पर मन्दिर के चारों ओर कोनों में एक-एक चतुष्कोणीय प्रकोष्ठ बना हुआ हैं । गोल गुम्बद के षटभुजी आधार पर कमलदल अलंकरण हैं।

मूर्तिशिल्प -

इस मन्दिर के गर्भग्रह में तीन मूर्तिया हैं ।

१- **शिवलिंग** -- यह शिवलिंग पंचमुखी है जो काले पत्थर से वना हुआ हैं और यह शिवलिंग तथा घरुआ दोनों एक ही पत्थर से बने हुए हैं । इसमें भगवान शंकर के चार मुख चारों दिशाओं की ओर बने हुये है जिसके ऊपर जटामुकुट सुशोभित हैं तथा कुण्डल धारण किये हैं । द्विनेत्र के मध्य ललाट में चक्र चिन्हित हैं । इन चारों मुखों के
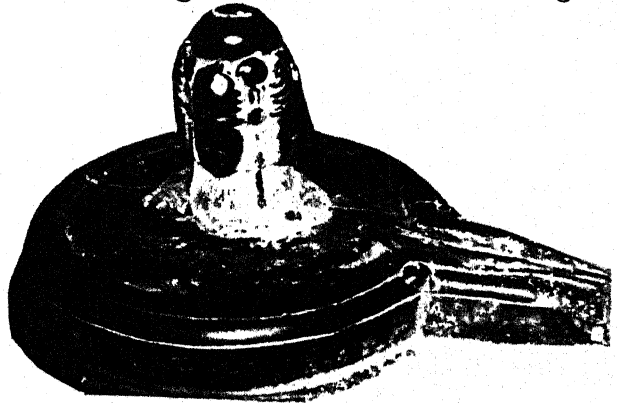
ऊपर पंचमुखी लिंग स्वरुप भी अंकित हैं ।

२- पार्वती मूर्ति - यह मूर्ति भी काले पत्थर द्वारा निर्मित हैं । माँ पार्वती भी केश मुकुट धारण किये हैं तथा हाथ धारण मुद्रा में हैं । विशिष्ट मुद्रा की यह मूर्ति भक्तों को अनायास ही अपनी ओर आकर्षित करती हैं ।

३- नन्दी मूर्ति - भगवान आशुतोष का वाहन नन्दी यहाँ पर शिवलिंग के उत्तरी ओर प्रतिष्ठित हैं जो कि बालूपत्थर द्वारा निर्मित हैं । इसके गले एवं सीगों पर कौड़ी अंलकरण स्पष्ट दृष्टिगोचर होता हैं । इसकी पीठिका पर झोलक वस्त्र अंकित हैं इसके दोनों ओर दो - दो घन्टियाँ लटकन के रुप में सुशोभित हो रही हैं। इसके मुख में अद्वितीय विशिष्ट कौड़ी अंलकरण सुशोभित हैं । नन्दी नमन मुद्रा में बैठा हुआ हैं ।
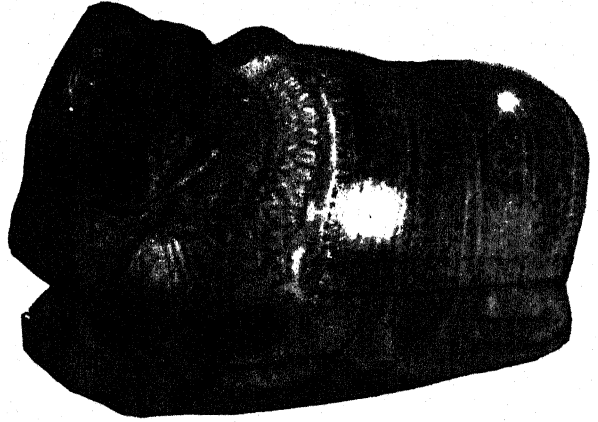
मूल्यांकन -

मन्दिर का वास्तुशिल्प विशुद्ध रुप से बेसर शैली का हैं। इसके स्थापत्य को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह मन्दिर मराठा काल का होना चाहिये । मन्दिर में प्रतिष्ठित पंचमुखी शिवलिंग इस बात का प्रतीक हैं कि इसका काल राजपूत काल होना चाहिये क्योकि राजपूत काल में पंचमुखी शिवलिंग का प्रचलन एंव इसके प्राणप्रतिष्ठा का इतिहास मिलता हैं । विशिष्ट प्रकार के इस शिवलिंग को देखते हुये एंव माँ पार्वती की मुद्रा देखने से भी इस बात का आभास होता हैं कि उनका काल भी राजपूत काल अर्थात ८ वी शता० से १२वी शता० के मध्य रहा होगा क्योकि इस काल में ही काले पत्थर काप्रयोग बहुतायत में हुआ है । मेरा अनुमान यह कि मन्दिर के अन्दर स्थापित शिवलिंग माँ पार्वती की मूर्ति का समय ९वी , १०वी शताब्दी होगा तथा उस समय मन्दिर का क्षय होजाने के पश्चात मराठाकाल में इसका पुनः जीर्ण उद्धार हुआ होगा -

संन्दर्भ -

(१) व्यक्तिगत सम्पर्क -- श्री रामप्रकाश गुप्त (अध्यापक) दिनांक २७-१२-९४

भैरवजी मन्दिर - रामपुरा

रामपुरा से ३ कि०मी० दूर दक्षिण पश्चिम दिशा में स्थित है यह मन्दिर। मन्दिर के अवशेषों के साथ इसके आस-पास अन्य भी अवशेष हैं जो यहाँ पर पुराने भवनों के होने का संकेत देते हैं। इसी भैरव मन्दिर के उत्तर पूर्व की ओर एक विशाल समाधि भी बनी है जो कि गूदड़ बाबा की समाधि के नाम से जानी जाती है। इस स्थान के पूर्व दक्षिण में पहूँज नदी बहती है।

इतिहास -

रामपुरा राज्य के कुल देवता है भैरव जी। उनके राज्य चिन्ह में भी भैरव जी सुशोभित है। राजपूत काल में अर्थात् पृथ्वीराज चौहान के समय यहाँ पर एक किला था और किले के मध्य में भैरव जीकी मूर्ति प्रतिष्ठित थी जिसके अर्चन पूजन आदि की सम्पूर्ण व्यवस्था तत्कालीन किले द्वारा ही सम्पन्न होती थी। इस स्थान पर नारायणी चिड़िया एव उल्लू दोनों की ही ध्वनि श्रृव्य हैं। नारायणी चिड़िया की ध्वनि जहाँ सकारात्मक मानी जाती है वहीं उलूक ध्वनि विध्वंशकारी समझी जाती है। दोनों प्रकार की सकारात्मक एवं विध्वंशकारी ध्वनियों का संयोग इस बात को दर्शाता है कि इस सकल विश्व में ईश्वर साक्षात्कार ही केवल सकारात्मक है शेष सब कुछ विनाश को प्राप्त होने वाला है (1)पहिले इस स्थान पर कई मूर्तियाँ थी परन्तु श्रीपाल गड़रिया ने वे सभी मूर्तियाँ एक कुयें में इस कारण फेंक दी क्योंकि उसकी मनोकामनानुसार उसे इच्छित सम्पत्ति की प्राप्ति नहीं हुई। पहिले इस स्थान पर बालू पत्थर की लगभग २ फुट ऊँची भैरव जी की मूर्ति प्रतिष्ठित थी जब वह कुयें में फेंक दी गयी तब श्रृद्धालुओं द्वारा काले पत्थर की एक अन्य मूर्ति बनवाकर यहाँ प्रतिष्ठित की गई जो कि आज भी श्रद्धा का केन्द्र है।

गूदड़ बाबा समाधि --

गूदड़ बाबा एक दसनामी महात्मा थे। वे प्राणायाम के सिद्धयोगी थे तथा आकाश मार्ग से चलकर ही अपना रास्ता तय करते थे। यह भी सुना जाता है कि वे इस भैरव मन्दिर से अदृष्य होते थे तथा रामपुरा में प्रगट होते थे। यहाँ पर गूदड़ बाबा की जीवित समाधि है। जिन लोगों में पंच तत्वों को अपने अन्दर विलीन करने की शक्ति होती है वे ही जीवित समाधि लेने में सक्षम होते हैं। गूदड़ बाबा का कुत्तों के साथ विशेष सम्पर्क था। यहाँ पर यह भी मान्यता प्रचलित है कि भैरव जी का ही अवतार गूदड़ बाबा थे क्योंकि भैरव का वाहन भी कुत्ता है और गूदड़ बाबा का भी कुत्तों के साथ विशेष सम्पर्क रहता था।

यह स्थान सिद्ध व चमत्कारी है। प्रत्यक्षदर्शी प्रागु केवट के अनुसार पहूँज नदी के किनारे पर उसने स्वयं, सिर हाथों व पैरों की पंजो सहित अंगुलिया देखी है। शेष शरीर अदृष्य रहा है। उसके अनुसार यह महाराज मनसापुरी का शरीर था जो कि दिव्य अलौकिक शक्तियों से सम्पूरित था (२)

वास्तुशिल्प -

भैरव जी की मूर्ति के चारों ओर एक मठिया नुमा मन्दिर है जिसे अभी २०-२५ वर्षों के अन्तराल में निर्मित किया गया है। यह वर्गाकार है एवं पश्चिमाभिमुख है। इससे पूर्व यहाँ पर एक मठिया थी जो कि लगभग ३०० वर्ष प्राचीन रही होगी।

वर्तमान मठिया की प्रत्येक भुजा २० फुट लम्बी है। इसकी तीनों दीवारों पर खिड़कियाँ है। इस मठिया की दीवार ३ फुट चौड़ी है। इसके ऊपर त्रिशूलाकृति लिये हुए गुम्बदाकार अंकित है। मन्दिर के वर्ग के ऊपर चारों कोनों पर एक-एक छोटी मठिया बनी हुई है।

इस भैरव जी की मठिया के पूर्व की ओर गूदड़ बाबा की समाधि हैं। यह समाधि २५ फुट लम्बी व १५ फुट चौड़ी तथा १५ फुट ऊँची हैं। यह समाधि आगे से त्रिभुजा कार एवं पीछे से लम्बाई लेते हुये अण्डाकार हैं।

मूर्ति शिल्प -

यहाँ की भैरव मूर्ति काले पत्थर की बनी हैं जो कि एक फुट ६इंच ऊँची व ६इंच चौड़ी है। इसके दोनों ओर स्वान अंकित हैं। इस मूर्ति के वक्ष पर सर्पाकार जनेऊ हैं। हाथ में दण्ड सुशोभित हैं। कटि प्रदेश पर करधनी सहित कोपिन धारण किये हैं। कानों में चक्रकुण्डल व सिर पर जटामणि सहित जटामुकुट धारण किये हैं

संदर्भ-सूची -

(१) व्यक्तिगत सम्पर्क श्री मंहत बाबा विश्म्भरानन्द सरस्वती दिनांक २३। [illegible]
(२) व्यक्तिगत सम्पर्क — डा० कैलाश पुरवार दिनांक २३ । ५ । ६४
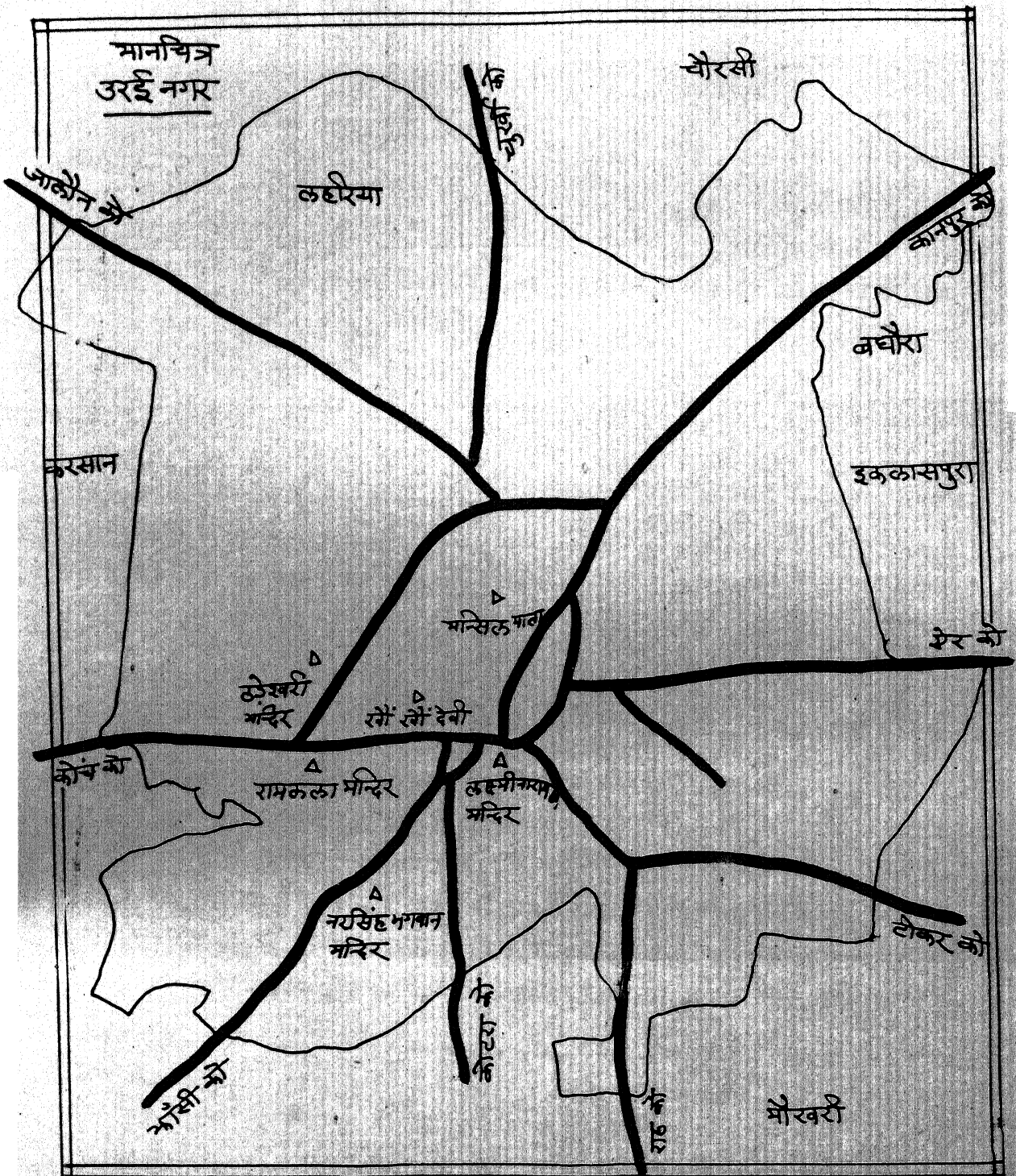
भवनों की स्थिति दर्शाता मानचित्र - उरई नगर

लक्ष्मीनारायण मंदिर उरई

यह मंदिर उरई के केन्द्र में माहिल तालाब के नाम से विख्यात ताल के उत्तर पूर्व में स्थित है तथा अपने प्राचीन वैभव को याद कर रहा है।

इतिहास-

महाराज छत्रसाल के राज्य के अधीन थी यह उरई नगरी। जब महाराज छत्रसाल मुगलों से अपने राज्य की सुरक्षा हेतु लड़ रहे थे , उस समय रणभूमि में उन्हें सहायता की आवश्यकता हुई जिसके लिए उन्होंने मराठा राज्य के राजा पेशवा बाजीराव को पत्र भेजकर सहायता मांगी तथा उसी पत्र में यह भी लिखा कि यदि मुगलों से युद्ध जीत लिया गया तो अपने राज्य का एक तिहाई भाग पेशवा जी के एक पुत्र को अपना पुत्र मानकर दे देंगे। इस पत्र प्राप्ति पर पेशवा बाजीराव ने अपने सेनापति गोविन्द पन्त खेर के नेतृत्व में एक फौज रवाना की, जिसके आते ही मुगलों के हौसले पस्त हो गये और महराज छत्रसाल विजयी हुये। महराज छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात् उनके बड़े पुत्र महराज जगजीतसिंह द्वारा पेशवा बाजीराव के पुत्र गोविन्दराव को अपने राज्य का एक तिहाई भाग यमुना के किनारे किनारे भिण्ड से बाँदा तक सौंप दिया गया। यहीं से इस क्षेत्र में मराठों का शासन प्रारम्भ हुआ। पेशवा बाजीराव के इष्ट देवता भगवान लक्ष्मीनारायण थे अतः गोविन्दराव ने भी जालौन तथा उरई में भगवान लक्ष्मीनारायण के मंदिरों को बनवाया। जनश्रुति के अनुसार उरई का लक्ष्मीनारायण मंदिर लगभग ३००-४०० वर्ष प्राचीन है यह समय भी उपर्युक्त वर्णित समयानुसार ठीक बैठता है। (१)

भगवान लक्ष्मीनारायण के इस मंदिर की पूजा अर्चना हेतु पेशवा बाजीराव के पुत्र गोविन्दराव बुन्देला ने वर्तमान पुजारी श्री जी०आर०आठले के परबाबा पं० शिवराम राव के पिता को नियुक्त किया था। आठले जी ने एक साक्षात्कार में बतलाया कि जब निवाड़कर वंश झाँसी की बहूरानी लक्ष्मीबाई झाँसी के किले से कूदकर कालपी की ओर जा रहीं थी तब उन्होंने भगवान श्री लक्ष्मीनारायण के मंदिर पर आकर पूजन किया था और फिर कालपी के लिए प्रस्थान किया था।

मंदिर का वास्तुशिल्प -

९ वीं तथा १२ वीं शती के मध्य चन्देलों द्वारा निर्मित मंदिरों की भाँति जमीन से लगभग १० फीट ऊँची जगत पर निर्मित यह भगवान लक्ष्मीनारायण का मंदिर अपनी प्राचीनता का इतिहास स्वयं कह रहा है। इस मंदिर के चारों ओर किले की दीवार की तरह

परकोटा बना हुआ है जिसमें कमरेनुमा बराण्डे हैं जिनके दरवाजे मंदिर की ओर है । मंदिर की ऊँची जगत एवं परकोटे के बीच काफी चौड़ा खुला हुआ स्थान है तथा उत्तर की ओर विशाल दरवाजा है । यह मन्दिर अपने समय में धार्मिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का अनूठा केन्द्र रहा होगा । यह मन्दिर दूर से देखने पर एक धर्मरथ का आभास देता है जिसमें गर्भगृह रथ का बैठने का स्थान गर्भग्रह की प्रदक्षिणा , रथ का रक्षक क्षेत्र, ऊँची जगत की सीढ़ियाँ रथ के सारथी के बैठने का स्थान एवं आगे का खुला स्थान रथ के घोड़ों के स्थान को दर्शाता है । वास्तुशिल्प

की दृष्टि से प्रत्येक मन्दिर में केवल एक प्रदक्षिणा पथ होता है परन्तु इस मन्दिर में एक आन्तरिक प्रदक्षिणा पथ कई स्तम्भों पर आधारित है । प्रत्येक स्तम्भ में छैः छैः आठ आठ छोटे खम्भे परस्पर मिले हुए हैं । गर्भगृह का दरवाजा आन्तरिक प्रदक्षिणा पथ में पूर्व की ओर खुलता है । इस द्वार की चौखट लाल पत्थर की बनी है जिस पर फूल पत्तियों की उत्तम कारीगरी की हुई है । इस द्वार पर लकड़ी के कब्जेरहित दरवाजे लगे हैं जोकि कलात्मक पीतल की चादर से मढ़े हैं । मन्दिर के गर्भगृह के ऊपर एक उच्च गुम्बदाकार विमान बना है जो ईश्वर की सार्वभौमिकता की स्मृति कराता है । इस विशाल विमान की चोटी पर एक पीतल का कलश स्थापित था । इस विमान की चारों दिशाओं में चार छोटे छोटे गुम्बदाकार अन्य गृह बने हैं मन्दिर के गर्भगृह के वाह्य प्रदक्षिणा से लगभग १०-१५ फुट की दूरी पर पूर्व की ओर विशुद्ध मराठी शैली का एक भवन निर्मित है जिसके मध्य में एक बड़ा सा सभा ग्रह है तथा आस पास छोटे कक्ष हैं । ऐसा अनुमान है कि सभाग्रह का उपयोग भगवत् भजन एवं उत्सवों तथा भगवान के झूले झांकी आदि के लिए किया जाता रहा होगा । इस भवन की जगत मन्दिर की जगत से लगभग ५-७ फुट नीची है फिर भी इस भवन के भीतरी भाग से भगवान लक्ष्मीनारायण की मूर्ति का दर्शन होता ह जोकि कुशल वास्तुशिल्प का परिचायक है । इस मन्दिर पर चूने का सुन्दर संगमरमर की भाँति सफेद एवं चिकना (कौड़ी , गोंद, सरेस, सन आदि के मिश्रण से तैयार) प्लास्टर है तथा मन्दिर के प्रदक्षिणा द्वारों पर कमल दल से सुसज्जित फूल पत्तियाँ बनी हैं । मन्दिर के पूर्व परिसर में एक कुआं है । महाराष्ट्रियन परिवारों में आमतौर पर घर के प्रयोग हेतु एवं भगवान के उपयोग हेतु प्रथक प्रथक कुऐं होते हैं परन्तु इस परिसर में केवल एक कुयें का होना इस बात का परिचायक है कि मन्दिर का पूर्ण परिसर केवल भगवान के निमित्त ही बनाया गया होगा ।(२)
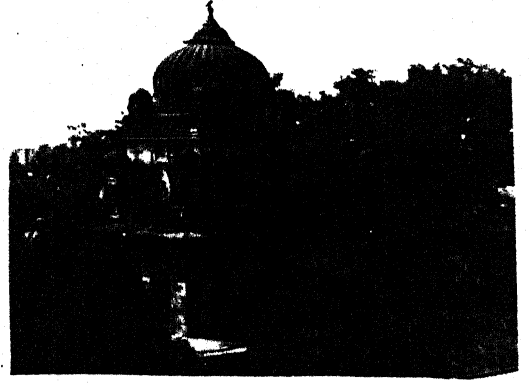
मन्दिर का मूर्ति शिल्प -

इस मन्दिर की मूर्ति शिल्प की अपनी विशेपता है । मूर्ति शिल्प के देखने से लगता है कि अध्यात्म में सगुण उपासना से निर्गुण उपासना तक पहुँचना कितना सरल है। सगुण एवं निर्गुण उपासना का अनौखा समिश्रण इस मन्दिर के मूर्ति शिल्प में दर्शनीय है।

भगवान लक्ष्मी नारायण की मूर्ति - यह मूर्ति काले पत्थर द्वारा निर्मित चतुर्भुजी मूर्ति है । इस मूर्ति को मूर्ति विज्ञान के अनुसार **नारायण** नाम से सम्बोधित किया जाता है (३) इसी मूर्ति के बगल में काले पत्थर द्वारा निर्मित द्विभुजी लक्ष्मी जी की मूर्ति है
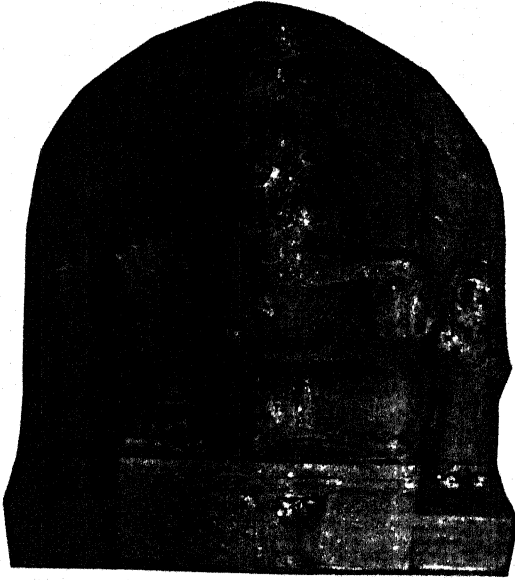
जिसका परिधान वाहय रूप से मराठी शैली का है । इस मन्दिर की छत गर्भ ग्रह की छत से नीची है तथा आन्तरिक प्रदक्षिणा के ऊपर की छत पर छज्जा बना है जिस पर तोड़ो का सहारा दिया गया है छज्जे के चारों कोनों पर पत्थर के तोड़े लगे हैं जो छज्जा तथा छत को अधिक मजबूती प्रदान करते हैं परन्तु शेष अन्य तोड़े चूना तथा ईट के बने हैं । उत्तर पश्चिम एवं दक्षिण के तोड़ो पर पक्षियों के विभिन्न रूप मूर्ति रूप में अंकित हैं। एक तोड़े पर एक तोता दूसरे तोड़े पर तोतों का युगल एवं एक अन्य तोड़े पर एक मोर की मूर्ति बनी है जो मनुष्य की तीनो अवस्थाओं बाल्यकाल यौवनावस्था वृद्धावस्था की ओर इंगित करती है ।

पक्षियों को प्रकृति को द्योतक कहा जाता है और शायद इसी कारण पक्षियों के माध्यम से शाश्वत प्रकृति की उपासना के लिए एक अपूर्व उद्यम हैं । मन्दिर के पूर्व में तोड़ो के विभिन्न सुन्दर चित्र हैं जिनमें भगवान भास्कर , गणेश, शंकर, कृष्ण आदि के रंगीन चित्र है जो आज भी सजीवता का परिचय देते हैं । आज लगभग ३५० वर्षों के बाद भी मन्दिर में प्रयुक्त रंग अपना रंग जमाने से नहीं छोड़ते । मन्दिर के गर्भ ग्रह में कसौटी के काले पत्थर द्वारा निर्मित भगवान श्री लक्ष्मीनारायण जगत व जननी माँ लक्ष्मी के साथ विराजमान है । मन्दिर के गर्भग्रह के बाहर आन्तरिक प्रदक्षिणा में गर्भग्रह की पूर्वी दीवाल

पर गर्भद्वार के दोनों ओर दो बड़े बड़े आले है जिनमें उत्तरी आले में भगवान लक्ष्मीनारायण के वाहन पक्षियों के राजा एवं ज्ञान के पुंज गरूण जी की मूर्ति रखी है । यह मूर्ति पत्थर की बनी है एवं इसमें गरूण जी हाथ जोड़े स्थानक मुद्रा में हैं जिनके दोनों बाजुओं पर मनमोहक सुन्दर पंख लगे हैं । इस भव्य मूर्ति के चेहरे पर भगवान के श्री चरणों के लिए सौम्य मुद्रा में जो समर्पित सेवा का भाव दिखलाई पड़ता है वह वास्तव में अपने "स्व " को भूलने की प्रेरणा देता है । दक्षिणी आले में मराठा समाज के आराध्य देव , विध्न निवारक, देवों में अग्रणी गणपति वप्पा की विशाल मूर्ति स्थापित हैं जिसके दोनों ओर ऋद्धी, सिद्धी की अनुपम मूर्तियाँ गजानन की सेवारत बनी हुई है तथा नीचे छोटा सा मूषक भी है । यह मूर्ति भी काले पत्थर द्वारा निर्मित है ।

संदर्भ -

१- दैनिक आज - दिनांक १८ जुलाई १९९५ पृष्ठ संख्या ५

२- नव अंकुर - दिनांक ५ अप्रैल १९८६ - हरीमोहन पुरवार - पृष्ठ संख्या १६,१७,१८

३- मूर्ति विज्ञान - डा० इन्दुमती शर्मा पृष्ठ सं० १२६

नरसिंहभगवान मन्दिर

यह मन्दिर रामनगर , डी०वी०कालेज पुस्तकालय के सामने स्थित है ।

इतिहास -

इस मन्दिर का जीर्णोधार श्री पूरनलाल धन्ना सेठ भट्ट द्वारा १०० वर्ष पूर्व कराया गया था । इस मन्दिर का निर्माण आज से लगभग ३०० वर्ष पूर्व हुआ था औरउस समय इस स्थान में एक छोटी सी मठिया का स्वरूप था (१)

स्थापत्य -

यह मन्दिर पूर्वाभिमुख है । गर्भग्रह वर्गाकार है । उसके बगल में एक कुआँ स्थापित है । गर्भग्रह के सामने अर्चनामण्डप बना हुआ है और उसके आगे टीनशेड का वराण्डा बना हुआ है । इस वराण्डे के उत्तरी ओर हनुमान जी की विशाल मूर्ति स्थापित है । अर्चनामण्डप के दक्षिणी ओर भगवान शिवशंकर की शिवलिंग स्थापित है । पीछे एक पूर्वाभिमुख खुला

आंगन है और उसके आगे एक दरवाजा बना है । गर्भगह में मुख्य मूर्ति भगवान नरसिंह की है जो कि पूर्वाभिमुख है । इस गर्भग्रह के दक्षिणी ओर भगवान गणपति एवं उत्तरी ओर महालक्ष्मी की मूर्ति स्थापित है । गर्भग्रह के ऊपर गुम्बदाकार विमान बना हुआ है और उसके ऊपर कलश स्थापित है।

इस मंदिर में वसन्त पंचमी के दिन विशेष आयोजन होता है तथा एक बड़ा सा मेला लगता है .और इसके पीछे स्थित राम तलैया मन्दिर में विशेष दंगल का आयोजन किया जाता है ।
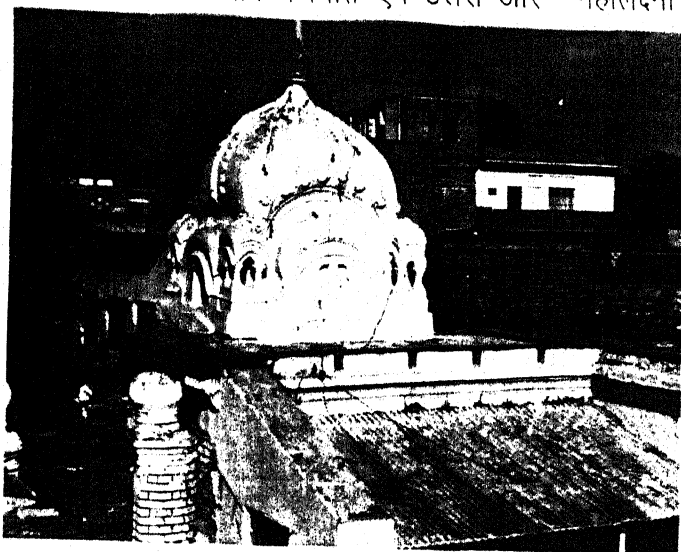
मूर्तिशिल्प -

भगवान नरसिंह की मूर्ति सफेद संगमरमर की बनी हुई है जिसमें वे खम्बे पर आरूढ़ हैं और उनकी टाँगों पर हिरण्याकश्यप पड़ा हुआ है जिसका वक्ष भगवान नरसिंह के दोनों हाथों द्वारा भेदित किया जा रहा है । यह मूर्ति ५५ इंच ऊँची है एवं २७ इंच चौड़ी है । भगवान नरसिंह का मुख घोर गर्जन मुद्रा में है । इस मूर्ति के वायीं ओर भक्त प्रहलाद की मूर्ति स्थित है जो कि ३४ इंच ऊँची है व १४.५ चौड़ी है । भगवान नरसिंह के दूसरी ओर प्रहलाद की माँ की मूर्ति है जो कि ३७ इंच ऊँची तथा १६ इंच चौड़ी है । ये सभी मूर्तियाँ भी सफेद संगमरमर की बनी हैं ।
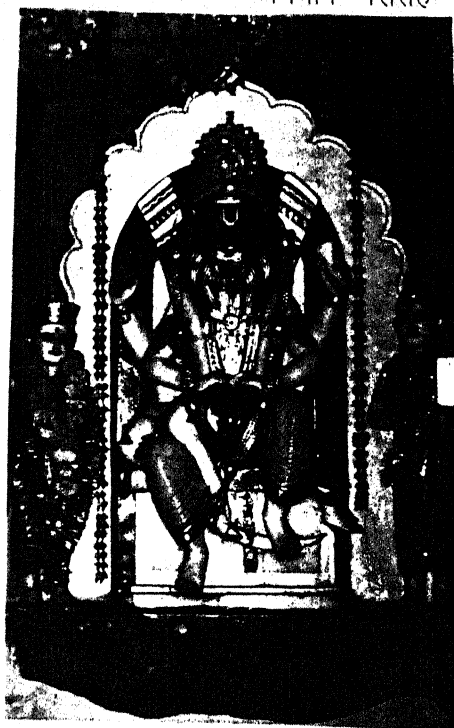
संदर्भ -

१- व्यक्तिगत साक्षात्कार - श्री ब्रजेश चन्द्र शर्मा व डा० वीरेन्द्र शर्मा

अक्षरा सिद्ध पीठ - सैदनगर

उरई में २५°.४८° उत्तर और ६७° पूर्व अक्षांश में स्थित २६ कि०मी० की दूरी पर एक गाँव है , सिद्ध नगर , जिसे अब सैदनगर के नाम से जाना जाता है (1) उरई झाँसी राजमार्ग पर एट कस्बे से इस सिद्ध पीठ तक पहुँचने के लिए रास्ता जाता है । सिद्धपीठ की त्रिगुणात्मक शक्ति से भरपूर यह सिद्ध नगर अपने अतीत की कहानी कहता हुआ दृढ़ता के साथ स्थिर है ।

इतिहास -

वेतवा के किनारे स्थित सैदनगर कभी मुर्जदी कपड़े व नील का एक बहुत बड़ा जाना माना व्यापारिक केन्द्र था । समूचे भारतवर्ष में रंगों की आपूर्ति का श्रेय भी इसको प्राप्त था । शाहजहाँ के शासन काल में उसके साले सलावत खाँ ने जब इस क्षेत्र का आधिपत्य सम्भाला , तभी सैय्यद नाम के एक फकीर सूफी का इस क्षेत्र में प्रवेश हुआ । उसका इतना प्रभाव बढ़ा कि लोग इस क्षेत्र को उसके नाम से सैय्यद नगर कह कर पुकारने लगे और तब ८०० - ६०० वर्ष पूर्व सिद्ध बाबा द्वारा बसाया गया यह सिद्ध नगर, सैय्यद नगर बन गया। बाद में यही सैय्यद नगर ग्रामीण भाषा में बदलाव के कारण सैदनगर हो गया।

गजेटियर के अनुसार सन १७०० ई० में स्थानीय गर्वनर सैय्यद लतीफ था जिसने बुन्देलों को एक लाख रूपया देकर वहाँ से हटाया था । यहाँ के लोगों की यह मान्यता है कि ८००-६०० वर्ष पूर्व सिद्ध बाबा द्वारा यहाँ पर "श्री यन्त्र" की स्थापना करके इसे अक्षरा तीर्थ का नाम दिया गया ।

शास्त्रों में कहा गया है कि " **शरीरम् मानसम् भौमं साधु सम्मेलनं तथा आत्मशोधि करादीनि तरणं तीर्थं मुच्यते** ।" अर्थात् शारीरिक,मानसिक, भौम तथा साधु सम्मेलन जैसे आत्मा के शोध करने या पार करने को तीर्थ कहते हैं । तीर्थ शब्द का "ती" और "र्थ "से अर्थ निकलता है कि तीन अर्थों की सिद्धि जहाँ को वह तीर्थ होता है । संसार में अर्थ धर्म काम और मोक्ष ये चार अर्थ हैं । इनमें से धन तो तीर्थ यात्रा में खर्च होता है तथा शेष तीन धर्म , काम और मोक्ष इन तीनों के प्राप्ति स्थान को तीर्थ कहते हैं । "अक्षरा" तीर्थ में माँ छिन्नमस्ता द्वारा धर्म, माँ रक्तदन्तिका द्वारा काम और माँ अक्षरा द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है (2)

वराह पुराण में एक प्रसंग आता है कि वेत्रवती जो कि आज वेतवा नदी के नाम से जानी जाती है के वेतव्रत नाम का एक पुत्र था । यह वेतव्रत अत्यन्त शक्तिशाली तथा आसुरी प्रवृत्ति का था जो कि सदैव ही सज्जन वृन्दों एवं देवताओं का अपकार्य किया करता था।

इससे क्षुब्ध होकर देवगणों ने माँ जगदम्बा की स्तुति की और माँ जगदम्बा ने स्तुति से प्रसन्न होकर स्वयं उपस्थित हो देवगणों को भय मुक्त होने का वरदान दिया तथा स्वयं रक्तदन्तिका के रूप में अवतरित होकर उस आतातायी वेतव्रत का संहार किया । तत्पश्चात् देवताओं ने उनकी स्तुति की । यह स्तुति दुर्गा सप्तशती में इस प्रकार है -

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि षटकारः स्वरात्मिका ।
सुधा त्वमक्षरे नित्य त्रेधाना त्रात्मिका स्थिता ॥
अर्ध मात्रा स्थिता नित्या आनुच्चार्या विशेषतः ॥

अर्थात् हे देवी ! तुम्ही स्वाहा , तुम्ही स्वधा और तुम्ही षट्कार हो । स्वर भी तुम्हारे स्वरूप हैं । तुम्हीं जीवनदायनी सुधा हो । नित्य अक्षर प्रणव में अकार , उकार और मकार इन तीनों मात्राओं के अतिरिक्त जो बिन्दु रूपा अर्द्धमात्रा है , जिसका विशेष रूप से उच्चारण नहीं किया जा सकता है वह भी तुम्ही हो ।(३)

वराह पुराण की कथा का भौगोलिक स्तर पर जब हम विश्लेषण करते हैं तो पाते हैं कि वेतवा भोपाल के ऊपर से अपने आदि श्रोत से प्रारम्भ होकर हमीरपुर में यमुना में मिल जाती है । उसकी इस सम्पूर्ण यात्रा में सैदनगर को छोड़कर अन्य कोई माँ का ऐसा स्थान नहीं है । फलस्वरूप इस क्षेत्र के विषय में वराहपुराण की उक्तकथा से बहुत अधिक सानिध्यता प्रतीत होती है ।
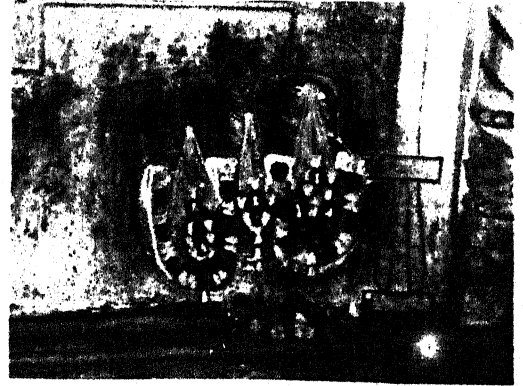
वास्तव में अक्षरा तीर्थ सिद्धपीठ श्रेणी की एक कड़ी यूं बन जाती है क्योंकि यह सृष्टि के आदि क्रम से जुड़ा हुआ है । भारतीय साहित्य में गुरू ब्रह्मा, गुरू विष्णु, गुरू देवौ महेश्वरः कहा गया है किन्तु यह बात उतनी सहज नहीं है । जब हम ब्रह्मा , विष्णु और महेश को उनके कार्य के अनुसार अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि गुरू अपने शिष्य के अज्ञान का जब निवारण करता है तब वह महेश का कार्य करता है । मिथ्या अहं को काटते हुए जब गुरू अपने शिष्य के मन के यथार्थ ज्ञान की रक्षा करता है तब वह विष्णु का कार्य करता है और जब अज्ञान हटाते हुए व ज्ञान की रक्षा कते हुए वह जब नयी बातों का शिक्षण करता है तब वह ब्रह्मा का कार्य करता है । आदि जगतगुरू शंकराचार्य ने कहा है कि -

" शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शकः प्रभावितुम् ।" अर्थात् भगवान अपनी शक्ति से शबलित होकर ही अपना कार्य करने में समर्थ होते हैं अन्यथा नहीं । फिर ब्रह्मा , विष्णु

व महेश की भी अपनी शक्तियाँ हैं जो महासरस्वती , महालक्ष्मी तथा महाकाली के नाम से जानी जाती है । ये तीनों शक्तियाँ ही सतोगुण , रजोगुण और तमोगुण की सूचक हैं । इन शक्तियां के अभाव में कोई भी नहीं रह सकता है -

" न शिवेन विना देवी न देव्याश्च बिना शिवः ।
नानयोन्तरमं किच्मिद्यन्द्र चन्द्रिकयोरिव ।"

यही तीनों महाशक्तियाँ महात्रिकोण में त्रय रूप में स्थित हैं ।

" इच्छादि शक्तित्रितयं पशोः सत्वादिसंज्ञकम् ।
महत् व्यस्त्रं चिन्तयानि गुरूवक्त्रा दनुत्तरात ।।"

और इन्हीं तीनों महाशक्तियों के महात्रिकोण से " **श्री यन्त्र** " का पूजन का विधान है जिसमें इनकी स्थिति को भी स्पष्ट किया गया है -

" महालक्ष्मी पूर्व भागे , महाकाली च दक्षिणे ।
महासरस्वती पश्च कोणे यंत्रस्य संस्थिता ।।"

अर्थात् महालक्ष्मी त्रिकोण के पूर्व भाग में , महाकाली त्रिकोण के दक्षिणी भाग में तथा महासरस्वती त्रिकोण के पश्चिमी भाग में स्थित होती हैं ।

अस्तु सिद्धपीठ के लिए महात्रिकोण में शक्तियों की प्राण प्रतिष्ठा परमावश्यक है । अक्षरा सिद्धपीठ का अवलोकन करने से महात्रिकोणीय स्थिति स्पष्ट हो जाती है । इस सिद्धपीठ पर भी पूर्व भाग में महालक्ष्मी स्वरूपा अक्षरांचल पर्वत पर माँ अक्षरा का स्थान है , दक्षिण में सिद्धावली पर्वत श्रंखला पर महाकाली स्वरूपा माँ रक्त दन्तिका का स्थान है और पश्चिमी भाग में डीकांचल पर्वत श्रंखला पर वेतवा के उस पार डिकौली ग्राम में माँ सरस्वती का स्थान है । इसी डीकांचल पर्वत श्रंखला पर ६४ योगनियों के भी स्थान हैं जो कि अत्यन्त दुर्लभ हैं । इसी सारी स्थिति में अक्षरा तीर्थ मात्र एक तीर्थ ही नहीं वरन एक सिद्धपीठ प्रमाणित होता है।

(४)

वास्तुशिल्प -

माँ अक्षरा का यह स्थान पश्चिमाभिमुख है । इसका गर्भग्रह चौकोर है जिसके ऊपर विमान तथा कलश स्थापित है । माँ अक्षरा का स्वरूप त्रिशूल के अग्र भाग की भाँति पिण्डीय स्वरूप में है । इस गर्भग्रह के पश्चिम में अराधना मण्डप तथा उत्तर में भगवान शंकर का स्थान है । इस गर्भग्रह के दक्षिण में वरान्डिका है जिसकी दक्षिणी भुजा से संलग्न चबूतरे पर नरसिंहावतार की विशाल मूर्ति प्रतिष्ठित है । इस मंदिर के पश्चिम में शंखाकार स्वरूप में प्रकृति द्वारा निर्मित एक कुण्ड है जिसकी गहराई के विषय में कोई वास्तविक ज्ञान

नहीं है । कहा जाता है कि वर्ष में एक बार जीवन को अमरत्व प्रदान करने वाले आयुर्वेदिक शैलोदक का प्रादुर्भाव इस कुण्ड में होता है । इस मंदिर के उत्तर में एक विशाल तालाब है जिसके दक्षिणी सिरे पर सुन्दर मजबूत पक्के घाट बने हैं । इस तालाब के दक्षिणी किनारे पर कालपी के खत्रियों द्वारा निर्मित एक धर्मशाला थी जो कि अब रखरखाव के अभाव में धूल धूसरित हो रही है ।

संदर्भ -

१- जालौन गजेटियर - पृष्ठ संख्या १६०

२- दैनिक आज - २६ मार्च १६६३- हरीमोहन पुरवार - पृष्ठ संख्या ४

३- श्री दुर्गा सप्तसती - प्रथम अध्याय श्लोक ७२ - पृष्ठ संख्या ७० .

४- दैनिक आज - २६ मार्च १६६३ - हरीमोहन पुरवार - पृष्ठ संख्या ४

रामसीता मन्दिर - सैदनगर

यह मन्दिर बेतवा नदी के उत्तरी किनारे पर स्थित सैदनगर नामक ग्राम में बसा हैं । यह मन्दिर नरसिंह मन्दिर के नाम से भी विख्यात हैं । यद्दपि इस मन्दिर में विष्णु भगवान के अवतार नरसिंह भगवान की कोई मूर्ति नही हैं । फिर भी ऐसी मान्यता हैं कि मन्दिर में प्रतिष्ठित शालिगराम की एक बटैयूया में भगवान नरसिंह का रुप प्रतिष्ठित हैं। इसके कारण इसे नरसिंह मन्दिर भी कहा जाता हैं । वस्तुतः इस मन्दिर में भगवान राम सीता एंव लक्ष्मण की मूर्तियाँ एंव भगवान विष्णु की मूर्ति प्रतिष्ठित हैं ।

इतिहास -

राम सीता मन्दिर का निर्माण मराठा काल में अर्थात ई०वि० सन १७५० के लगभग हुआ था । जिसको पिण्डारी वंशज श्री किशोरी लाल पालीवाल के पिता द्वारा बनवाया गया था । श्री किशोरी लाल के पिता की कोई संतान नही थी । उसी समय उनके निवास पर एक नरसिंह दास नाम के एक सन्त का आगमन हुआ और उनके आर्शीवाद से ही किशोरी लाल का जन्म हुआ । अतः श्री नरसिंह दास महाराज की प्रेरणा से ही श्री किशोरीलाल के पिता द्वारा इस मन्दिर का भव्य निर्माण कार्य सम्पन्न हुआ । (१) इस मन्दिर को नरसिंह मन्दिर संत

नरसिंहदास के नाम के कारण भी कहते है । (२) श्री किशोरीलाल पालीवाल जोकि एक बहुत बड़े धनाड्य व्यक्ति थे उनके पुत्र सरजूप्रसाद पालीवाल के बाद उनके पुत्र श्री रामनारायण पालीवाल हुये । वर्तमान में रामनारायन के पुत्र चन्द्रशेखर पालीवाल द्वारा मन्दिर के मालिक हैं । मन्दिर में आरती भोग, पूजन इत्यादि महन्त ग्यासीप्रसाद (आयु ८० वर्ष) के द्वारा आज भी नियमानुसार किया जाता हैं ।

वास्तु शिल्प -

मन्दिर पूर्वाभिमुख हैं । जिसके सामने का एक सुन्दर फलदार वृक्षों का बाग हैं । मन्दिर का गर्भगृह भी पूर्वाभिमुख तथा वर्गाकार हैं । इसकी प्रत्येक भुजा अन्दर से १५ फुट ४इंच लम्बी हैं व गर्भगृह की दीवार ४ फुट चौड़ी हैं । गर्भगृह निरन्धार तथा पूर्व की ओर एक आरतीमण्डप बना हैं । आरती मण्डप के पश्चात् एक चौकोर आँगन हैं जोकि भक्त जनों के लिए कीर्तन मण्डप का कार्य करता हैं । इस कीर्तन मण्डप के ऊपर भी छत पड़ी हैं । कीर्तन मण्डप के चारों ओर वरन्डिका हैं । यह वरन्डिका चारों तरफ से कीर्तन मण्डप के तीन तीन मेहराब दार दरवाजों से जुड़ता हैं । गर्भगृह के ऊपर दोहरा आमलक स्थापित हैं । सम्पूर्ण मन्दिर एक ऊँचे अधिष्ठान पर स्थापित हैं । मन्दिर नागर शैली का हैं । शिखर के आधे भाग पर उरुश्रंग हैं । इस मन्दिर के अर्चना मण्डप के चारों ओर खूटियाँ लगी हुई हैं । उन सबका मुख तोते की आकृति का बना हुआ हैं गर्भगृह के अन्दर बालू - पत्थर का एक ऊँचा सिंहासन हैं । जिस पर सभी मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं । सिंहासन मेहराब दार त्रिद्वार युक्त हैं । द्वारों में पत्थर की ही कमल कली लटकती हुई भी अंकित हैं । सिंहासन के दोनों पूर्वी खम्भों पर एक - एक रक्षक , अंकित हैं । जोकि अभंग मुद्रा में हैं तथा अपने हाथ में दण्ड धारण किये हुए हैं । सिर पर विशेष प्रकार की मराठा पगड़ी धारण किये हुए हैं । इस बालू पत्थर द्वारा निर्मित सिंहासन को देखने से स्पष्ट होता हैं । कि इसके
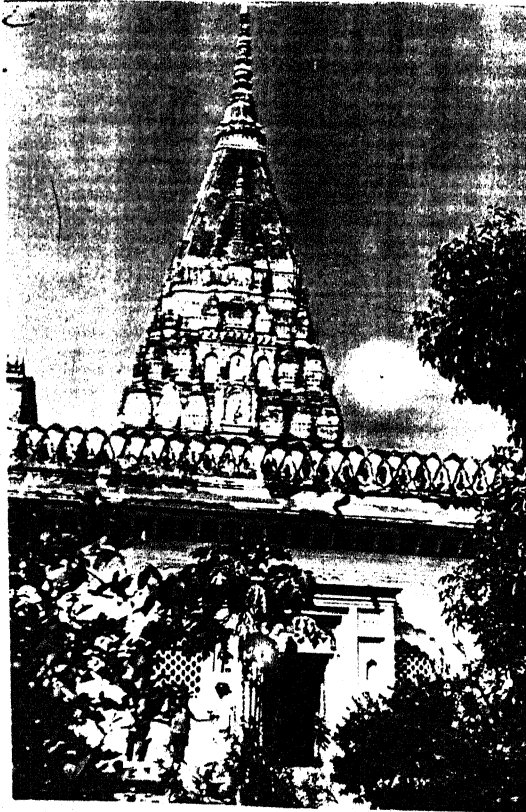
निर्माण का समय मराठा काल रहा होगा । क्योंकि मराठा काल की शिल्पगत विशेषतायें इस सिंहासन को देखने से परिलक्षित होती हैं ।

मूर्ति शिल्प -

इस मन्दिर में पीतल तथा पाषाण मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं । यहा पर एक पीतल की चर्तुरभुजी भगवान विष्णु की मूर्ति हैं जोकि स्थानिक मुद्रा में हैं । यह चर्तुरभुजी मूर्ति गरुण की पीठिका पर आधारित और गरुण स्वयं एक पीठिका पर आसीन हैं । गरुण पुरुष रुप हैं। द्विभुजी व पंख युक्त हैं । जिसके सिर पर मुकुट हैं कमर में कमर बंध हैं । उदर बंध हैं । चतुर्भुजी विष्णु के ऊपर के दाहिने हाथ में चक्र, ऊपरी बायें हाथ में शंख , दाहिना स्वाभाविक हाथ वर मुद्रा में व बाँया स्वाभाविक कटिलम्बित हैं । सिंर पर शंख आकार का किरीट मुकुट धारण किया हैं । मूर्तियों पर दक्षिणी भारतीय शैली का प्रभाव स्पष्ट हैं । परिकर के ललाट में कीर्तिमुख का अंकन हैं । बाल गोपाल की मूर्ति भी यहां पर हैं जोकि कान में मयूर कुन्डल तथा हाथ में लड्डू लिए हैं और एक छोटी सी गणेश प्रतिमा हैं जोकि पीठिका पर आसीन हैं तथा ललितासन मुद्रा में हैं । बायें पैर के नीचे एक आकृति अस्पष्ट हैं दाँया स्वाभाविक हाथ में लड्डू सूड़ से स्पर्ष करते हुए तथा दाये ऊपरी हाथ में फरसा एंव पुस्तक हैं ।
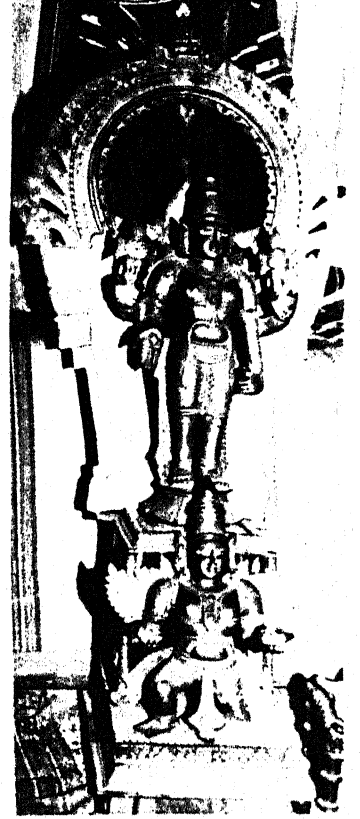
पत्थर द्वारा निर्मित भगवान राम सीता तथा लक्ष्मण की मूर्ति भी इस मन्दिर में प्रतिष्ठित हैं । इन्ही के साथ - साथ एक हनुमान जी की मूर्ति भी हैं । जिसमें अपनी छाती के भीतर भगवान राम का दर्शन कराते हुये अंकन किया हैं । इन सब मूर्तियों के अलावा कई अन्य मूर्तियाँ भी इस मन्दिर में प्रतिष्ठित हैं ।

चित्रकला की दृष्टि से इस मन्दिर के दरवाजों पर मेहराब पर सुन्दर बेल बूटों का अंकन हैं । जिसे पक्की नील के रंग तथा पक्के गेरु के रंग से रंगा गया हैं । कुछ डिजायने ज्यामितीय प्रकार की हैं ।

संदर्भ सूची --

१- व्यक्तिगत सम्पर्क - श्री ग्यासी प्रसाद (८०वर्ष) पुजारी दिनांक ११- ५ - ९४

२- व्यक्तिगत सम्पर्क -- श्री भगवती प्रसाद पन्डा दिनांक ११- ५- ९४ -

जामा मस्जिद - सैदनगर

यह मस्जिद सैदनगर के कब्रिस्तान में बनी हैं । इस मस्जिद के बगल में दक्षिणी ओर कब्रिस्तान हैं जिसमें तमाम कब्रें बनी हैं तथा इस मस्जिद के पश्चिमी ओर एक और मजार बनी हैं जो कि धोरसावली की मजार कहलाती हैं । धोरसावली जामा मस्जिद का निर्माण कराने वाले बसोरे मोती के पूर्वज थे तथा एक सिद्ध व्यक्ति थे और इसी नाते आज भी इसकी मान्यता हैं ।

इतिहास -

इस मस्जिद को तत्कालीन जागीरदार द्वारा मन्दिर निर्माण की देखा - देखी के कारण बनवाया गया । इस मस्जिद का निर्माण हिजरी १२७० अर्थात १८५० में बसोरे मोती द्वारा अपने निजी नमाज पढ़ने के लिए निजी सम्पत्ति से बनवाया गया था ।

वास्तु शिल्प -

यह मस्जिद ५५ फुट लम्बी तथा ४० फुट चौड़ी हैं । यह एक अठ खम्बा इमारत हैं । मस्जिद के भीतरी कक्ष में जहां पर मौलवी खड़े होकर नमाज पढ़ाते हैं । उस स्थान पर द्वार आकृति के ऊपर फारसी में निम्न तहरीर अंकित हैं।
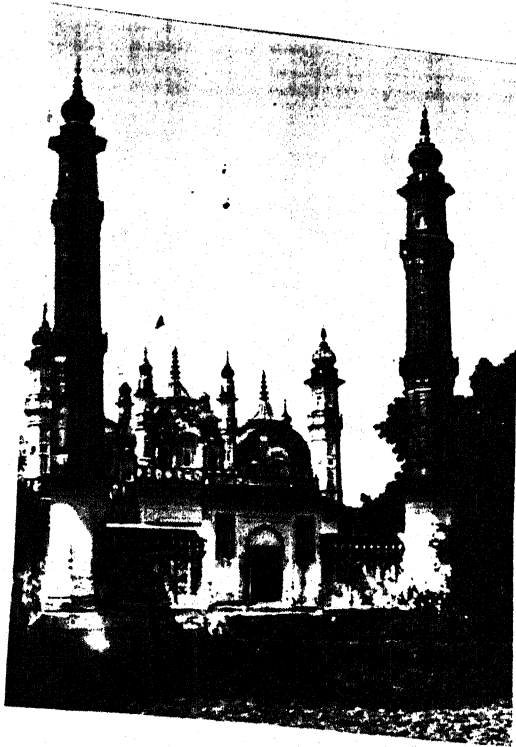
" **बिस्मिल्ला उंं रहमा नुंरहीम बलागुउला बेकमाल ही कसवद जावा जम्माल हे हसान्त जम्मीओ खिसाल्ही सल्लूवलैहहिरवहालमीन मारफे रुज जमीनहू जमीआ इनहू होवल गफूर्रुरहीम इल्ललाहा या रफे रुज्न जम्नू ने ब्मआ रसल्नाकाइ रहमतल्लिलालमीन बसोरे मोती** - नमाजगाह का मुख्य कक्ष वर्गाकार आकृति का हैं। जिसके प्रथम तल पर आठ मेहराब युक्त आले बने हैं । इसके ऊपर गोल गुम्बदाकार छत हैं । जिसके मध्य में एक हुक लगा हैं । प्रत्येक मेहराबदार आले के सन्धि स्थल पर पत्ती युक्त त्रिशूल अंकित हैं। इस मुख्य कक्ष के बाँयी तथा दाँयी ओर बने कक्षों की भी यही स्थिति हैं । तीनों कक्ष अन्दर

से एक साथ जुड़े हुए हैं। परन्तु प्रत्येक के ऊपर बाहर एक गुम्बद बना हुआ हैं । आज इस मस्जिद को देखने से यह बिल्कुल स्पष्ट हैं । कि इसमें अंकित त्रिसूल आकृति एवं छत के मध्य में लगा कुण्डा -- यह संकेत देता है । कि इसके निर्माण के समय इस पर हिन्दू स्थापत्य शैली का प्रभाव रहा हैं ।

संदर्भ -

(१) व्यक्तिगत सम्पर्क -- श्री फैजमुहम्मद (६६ वर्ष) दिनांक २६-- ६-- ६४

खौंखौं देवी

यह स्थान पाठक पुरा उरई में स्थित हैं ।

इतिहास -

इस मन्दिर की स्थापना कब और किसके द्वारा की गई अज्ञात हैं। इस सन्दर्भ में कोई भी शिलालेख इत्यादि उपलब्ध नही हैं । परन्तु जन मान्यताओं के अनुसार यह खौं खौं देवी उरई के संस्थापक उद्दालक ऋषि की पत्नी थी । उद्दालक ऋषि को आरुणि के नाम से भी जाना जाता था । महार्षि आयोद धौम्य के तीन शिष्य थे । १- उपमन्यु २- आरुणि - ३- वेद

आरुणि पांचाल निवासी था । जिनकों गुरु आयोद धौम्य ने खेत पर मेड़ से पानी रोकने को कहा था । ऋषि धौम्य ने आरुणि की कठिन परीक्षा से प्रसन्न होकर यह आर्शीवाद दिया था कि "वत्स, चूंकि तुम, केदार खण्ड को विदीर्ण कर उठे हो , इसलिए तुम्हारा नाम उद्दालक प्रसिद्ध होगा । (१) उद्दालक ऋषि के नाम का उल्लेख जनमेजय के सर्प सत्र के समय उपस्थित सदस्यों में से एक ये भी थे । यह श्वेतकेतु के पिता थे । शुक्र की सभा में इनकी उपस्थित का उल्लेख मिलता हैं । यह उन मूर्तियों में से एक थे जो कि युधिष्ठिर की प्रतीक्षा कर रहे थे इनके शिष्य कहोड़ ने इनकी पुत्री सुजाता के साथ विवाह किया था इनके यज्ञ के समय सरस्वती नदी के रुप में प्रगट हुयी थी (२) खौं खौं देवी को दलिद्रा देवी , अलक्ष्मी

देवी के नाम से भी जाना जाता हैं । यह भगवान विष्णु की पत्नी लक्ष्मी जी की बहन थी। श्री सूक्त में वर्णन मिलता हैं ।

''**चन्द्रामा प्रभांसा यशंसा ज्वलन्ती । श्रियं लोके देवं जुष्टामुदाराम । तां पद्मनीमी शरणं प्रमद्दे अलक्ष्मीम्मे नश्यंता खां वृणे ।** जो चन्द्रमा के समान ज्याजल्यमान तेजोमय हैं । कीर्ति से प्रकाश वानरुप वाली हैं । देवता जिनकी उपासना करते हैं । ऐसी कमल पर निवास करने वाली लक्ष्मी देवी की मैं शरण में हूँ । वे अत्यन्त उदार हैं । हे देवि मेरी अलक्ष्मी (दरिद्रता) नष्ट होमैं तुम्हारा वरण करता हूँ । इस श्लोक से भी स्पष्ट हैं कि अलक्ष्मी देवी भी लक्ष्मी देवी की भाँति थी । (३) श्री सूक्तम के मंत्र संख्या - ८ में भी अलक्ष्मी का वर्णन इस प्रकार हैं ।

'क्षुत्पिपासामंला ज्येष्ठाम अलक्ष्मी नास्याम्यहम्
अ**ूतिसमृद्धि च सर्वा निणुदं में गृहात् ।**

क्षुधा (भूख) प्यास से सम्बन्धी अलक्ष्मी (दरिद्रता) नष्ट हो और मेरे ग्रह से अभूति (अनैश्वर्य) तथा असमृद्धि सम्पूर्ण दूर रहे ।(४)

मूर्त्ति शिल्प -

यह मूर्ति ४०इंच ऊँची और २१.५ इंच चौड़ी है तथा यह श्वेत पत्थर की बनी है । यह मूर्ति चतुर्भुजी मूर्त्ति है । इसके ऊपर तीन सर्पो का छत्र सुसज्जित है तथा एक बालक भी अंकित है जिसका एक हाथ देवी के वक्ष का स्पर्श करता दृष्टिगोचर होता है । यह खोंखों देवी की मूर्त्ति मातृ देवी मूर्त्ति की भाँति स्थानक मुद्रा में है ।

किंवदन्ती -

उरई ही नहीं वरन् आसपास के समूचे क्षेत्र में यह विश्वास पल्लवित है कि खाँसी से पीड़ित बच्चों को माँ खौं खौं देवी के ऊपर से चढ़ाया हुआ दूध का सेवनन कराया जाये, तो खाँसी दूर हो जाती है ।

संदर्भ-सूची -

१- भारतीय ऋषि कोष - डा० जगत नारायण दुबे - पृष्ठ संख्या ३५-३६
२- महाभारत कोष - डा० रामकुमार राय सम्पादक पृष्ठ संख्या १४२
३- श्रीसूक्त - पंचमसूक्त श्लोक संख्या ५
४- श्रीसूक्त - पंचमसूक्त श्लोक संख्या ८

मन्सिलमाता - मंदिर

यह मंदिर मुहल्ला तिलक नगर में स्थित है ।

इतिहास -

इस मंदिर का निर्माण कब और किसने कराया इस आशय का कोई शिलालेख इस मंदिर में उपलब्ध नहीं है । व्यक्तिगत सम्पर्क के आधार पर यह निष्कर्ष निकला कि इस मन्दिर का निर्माण लगभग ३०० वर्ष पूर्व क्षत्रिय परिवार द्वारा कराया गया था । इस मन्दिर में मन्सिल माता की मूर्ति स्थापित है । यह लोकोक्ति भी प्रचलित है कि माँ का स्वरूप प्रातः मध्यान्ह एवं सांय में बदल जाता है । मन की इच्छा पूर्ति करने के कारण इस देवी स्वरूप का नाम मन्सिल माता पड़ा ।(१)

वास्तुशिल्प -

यह मन्दिर १३X१३ फुट चबूतरे पर स्थित है और यह चबूतरा फर्श से २० इंच ऊँचा है । यह चौकोर मठिया वर्गाकार है । इस वर्गाकार मठिया के ऊपर अष्टभुजी स्ट्रकचर बने हैं जिसके ऊपर गुम्बदमय कलश , स्थापित है । इसकी दीवार ३४ इंच चौड़ी है । यह मठिया पूर्वाभिमुख है । इसके मध्य में एक दरवाजा है जो ५ फुट २ इंच ऊँचा एवं ३ फुट २ इंच चौड़ा है। दरवाजे के दोनों ओर बाहर की ओर एक-एक आला बना हुआ है । दक्षिण के आले में हनुमान जी की मूर्ति स्थापित है जो २० इंच ऊँची एवं १५ इंच चौड़ी है इसके उत्तरी दीवार में स्थित आले में गणेश जी की मूर्ति स्थापित है ।

मूर्त्ति शिल्प -

१- **गणेश मूर्ति** - यह मंदिर मठिया की दीवार के उत्तरी ओर स्थापित है । भगवान गणेश की चबूतरे में बनी यह मूर्ति २६ इंच ऊँची एवं १३ इंच चौड़ी है जो कि बालू पत्थर की बनी है । यह गणपति की चतुर्भुजी मूर्ति नृत्य मुद्रा में है ।

२- **मन्सिल माता मूर्ति** - माँ मन्सिल की मूर्ति २१ इंच ऊँची है । यह द्विभुजी एवं सिंहारूढ़ मूर्ति है । सिंह एवं माँ दोनों का मुख पूर्व की ओर है । इस मन्दिर में वर्ष

की दोनों नवरात्रि में पूजन का विशेष आयोजन होता है । यहाँ श्रद्धालुओं की भारी भीड़ रहती है ।

संदर्भ -

व्यक्तिगत सम्पर्क माँजी- दिनांक २८-१-६४

रामलला मंदिर

यह मन्दिर १८५ पाठकपुरा उरई में स्थित है जो कि भवानी प्रसाद मुहाल के अन्तर्गत आता है ।

इतिहास -

इस मन्दिर का निर्माण पं० रामदासजी की प्रेरणा से लगभग ४००-५०० वर्ष पूर्व हुआ था । भक्ति भावना के प्रचार एवं प्रसार हेतु इस मन्दिर का निर्माण किया गया था । इस मन्दिर के अन्दर भगवान राम के बाल रूप की मूर्ति जो रामलला के नाम से जानी जाती है , प्रतिष्ठित हैं । यह भी कथन है कि पहले यह मन्दिर प्रयाग दास के शिवालय के नाम से विख्यात था । श्री प्रयाग दास एवं आत्माराम गुरू भाई थे और दोनों छबीले दास के शिष्य थे । श्री प्रयाग दास के पश्चात् इस मन्दिर की गद्दी का दायित्व मथुरा प्रसाद को प्राप्त हुआ उसके पश्चात् यह दायित्व देवादास को मिला । श्री देवादास के पश्चात् इस मन्दिर के महन्त श्रीजानकी दास फिर उनके पश्चात् इस मन्दिर के मङन्त श्रीरघुनाथ दास एवं उनके पश्चात् रामनारायण दास हुये और वर्तमान में उनके पुत्र श्री महेश चन्द्र दुबे इस मन्दिर का दायित्व सम्भाले हैं ।(१)

स्थापत्य

यह मन्दिर पूर्वाभिमुख है । इसकी ऊँचाई शिखर तक लगभग ५० फुट है । इस मन्दिर का गर्भग्रह वर्गाकार है । इसकी प्रत्येक भुजा ऊपर से २६.५ फुट लम्बी है । यह गर्भग्रह फुट चौड़े प्रदक्षिणा पथ से घिरा हुआ है । इस गर्भग्रह से लगा हुआ आराधना मण्डप है जो कि ६.५ फुट वर्गाकार में स्थित है । परिक्रमा मण्डप के पीछे मन्दिर में तमाम खाली जगह पड़ी हुई है । आराधना मण्डप एवं परिक्रमा पथ के पीछे मेहराव युक्त दरवाजे के मध्य में एक वर्गाकार

आँगन है इस आँगन में तीन ओर उत्तर पूर्व दक्षिण में वराण्डा बना हुआ है । उत्तरी भुजा , पूर्वी

भुजा तथा दक्षिणी भुजा ५-५ मेहराबी दरवाजों द्वारा वर्गाकार आँगन से जुड़ती है । मन्दिर का मुख्य द्वार ४.५ फुट चौड़ा तथा ५.५ ऊँचा है । ऊ पर एक विशाल मेहराब बना हुआ है औरर इस मेहराव में ऊपर विघ्न विनायक गणपति की मूर्ति उसके ऊपर एक अस्पष्ट शिलालेख जड़ा हुआ हैं । मन्दिर के दक्षिण में मन्दिर के लिए एक कुआँ भी स्थित है । मन्दिर का निर्माण गारा एवं पतली ईटों से हुआ है । गर्भग्रह एवं आराधना मण्डप में चूने का प्लास्टर है । गर्भग्रह के ऊपर एक वर्गाकार कक्ष बना हुआ है । प्रत्येक बाहरी भुजा १३ .५ फुटलम्बी है । इस वर्गाकार कक्ष के ऊपर गुम्बदीय विमान अंकित है । इसके ऊपर अंकित कमल दल के मध्य शिखर स्थापित है । इस कक्ष में एक दरवाजा २.५ फुट चौड़ा है एवं इस कक्ष के चारों कोनों में एक एक छोटी मठिया नुमा अंकन है । गर्भग्रह की दीवारकेऊपरी सिरे पर कमल दल अंकन है । इस मन्दिर की विशिष्ट बात यह है कि गर्भग्रह २ मंजिला है । मंदिर के कोनों में दक्षिणी दीवार पर मत्स्यावतार व कश्यप अवतार की मूर्ति स्थापित है । मन्दिर की उत्तरी दीवार पर वामनावतार एवं कृष्णावतार की मूर्ति अंकित है । मन्दिर की पूर्वी दीवार पर हनुमान जी एवं कल्कि अवतार की मूर्ति प्रतिष्ठापित है ।

मूर्ति शिल्प -

मन्दिर के गर्भग्रह में विशाल भगवान रामलला की ३ धात्विक प्रतिमायें स्थापित है । इस सिंहासन की सबसे ऊपर की पीठिका पर दाहिनी ओर भगवान कामेश्वर वांयी ओर भगवान कामतानाथ एवं उत्तरी ओर महारानी जी की मूर्तियाँ हैं । मध्य पीठिका के केन्द्र में भगवान रामचन्द्र जीकी, दक्षिण में लक्ष्मण जी व उत्तरी ओर सीता माता की मूर्ति प्रतिष्ठापित है । इस मन्दिर के आँगन में प्रतिष्ठित लाल पत्थर की जो मूर्तियाँ हैं उनका विवरण निम्नानुसार है ।-

१- **मत्स्यावतार** :- यह मूर्ति १२ इंच ऊँची एवं ६ इंच चौड़ी है । इसमें भगवान विष्णु के मत्स्यावतार स्वरूप का अंकन किया गया है । इसका अर्द्ध अधो भाग मत्स्यावतार एवं अर्द्ध ऊर्ध्व भागविष्णु का चतुर्भुज स्वरूप लिये हैं ।

२- कश्यपअवतार - यह मूर्ति लाल बलुआ पत्थर की बनी है जो कि १२ इंच ऊँची एवं ७ इंच चौड़ी है । मूर्ति का अर्द्ध अधो भाग कछप की पीठिका दर्शाता हुआ एवं अधो भाग विष्णु चतुर्भुज स्वरूप में है ।

३- वामनावतार :- यह मूर्ति लाल बलुआ पत्थर द्वारा बनी है इसकी ऊँचाई एक फुट एवं चौड़ाई ७ इंच है । इसमें भगवान विष्णु के छाताधारी वामनावतार का अंकन है ।

४- कृष्णावतार - यह मूर्ति भी लाल बलुआ पत्थर द्वारा बनी है जो कि एक फुट ऊँची एवं १० इंच चौड़ी है इसमें भगवान श्री कृष्ण वंशी बजाते हुए त्रिभंग मुद्रा में खड़े है । एवं उनके पास में गऊ का अंकन है ।

५- कल्कि अवतार - यह मूर्ति लाल बलुआ पत्थर द्वारा निर्मित है जो कि ६.५ इंच ऊँची एवं १४.५ इंच चौड़ी बनी हुई है इसमें भगवान विष्णु दशावतार में बविष्य के अन्तिम दसवें अवतार कल्कि के रूप में अंकित है । मूर्ति में अश्व का अंकन है जिसके ऊपर छतरी भी अंकित है ।

६- हनुमान - यह मूर्ति १८ इंच ऊँची एवं ६ इंच चौड़ी है । यह मन्दिर जन-जन की आस्थाओं का केन्द्र है । एवं बावन द्वादशी भाद्र शुक्ल बिहार का कार्यक्रम बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है ।

संदर्भ -

१- व्यक्तिगत सम्पर्क - श्री महेश चन्द्र दुबे दिनांक १०-६-९४

रोपण गुरू बाबा मन्दिर - कुकरगाँव

यह मन्दिर उरई से पश्चिम की ओर ६.५ किलोमीटर की दूरी पर स्थित कुकरगाँव ग्राम में है । सड़क से लगभग एक फलांग की दूरी पर उत्तर की ओर यह मन्दिर स्थित है । यह रोपण गुरू बाबा का मन्दिर चित्रकला की दृष्टि से इस जालौन जनपद में बुन्देली चित्रकला का उत्कृष्ट नमूना है ।

इतिहास -

जनपद जालौन में देवताओं के गुरू बृहस्पति ने इटौरा ग्राम में जोकि उरई से २८ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है , में १०० वर्षों तक सघन तपस्या की थी । इसलिये इस गाँव को गुरू का इटौरा भी कहा जाता है । यहाँपर अकबर के समय रोपण नाम के एक साधक ने अपनी तपस्या के प्रभाव से गुरू की उपाधि प्राप्त की थी । उसी परम्परा के अन्तर्गत इटौरा को सम्मिलित कर दूसरे अन्य दो स्थानों सिकरी राजा तथा कुकरगाँव में भी मन्दिरों का निर्माण हुआ । परन्तु कुकरगाँव में स्थित यह मन्दिर इस गुरू परम्परा के निर्वाह के साथ साथ अपनी विशिष्टता रखता है । यह कहा जाता है कि यह मन्दिर लगभग ५०० वर्ष प्राचीन है । जिसका निर्माण महन्त वाणी विलास ने कराया था । महन्त वाणी विलास के पश्चात् इस मन्दिर के महन्त श्री परीक्षित महाराज तथा उनके बाद रामदयाल महाराज उनके पुत्र महन्त काशी प्रसाद तत्पश्चात् उनके पुत्र महन्त विशम्भर दास जी ने इस कुकरगाँव के मन्दिर में महन्त का कार्य भार सम्हाला । वर्तमान में महन्त विशम्भर जी के पुत्र भानुप्रताप जी जिनकी आयु ३२ वर्ष है महन्त की गद्दी पर आसीन हैं [1] महन्त की इस परम्परा से यह प्रतीत होता है कि इस मन्दिर का निर्माण काल ५०० वर्ष उचित प्रतीत नहीं होता । प्रत्येक महन्त का कार्यकाल यदि लगभग ६० वर्ष ही समझा जाये तो यह मन्दिर २५०-३०० वर्ष पुराना होगा । जिनका नाम श्री वाणी विलास नाम के एक निरंजनी महात्मा हुए हैं जो पिया निरंजन पुर गांव में रहते थे और वह यमुना नदी में प्रतिदिन स्नान के लिए ब्रहम मूहूर्त में पैदल जाया करते थे । एक दिवस यमुना मैया के दर्शन हुए और उन्होंने श्री वाणी विलास जी महात्मा से यह कहा कि तुम्हें प्रातः यहाँ तक आने की आवश्यकता नहीं है और हम तुम्हें तुम्हारे स्थान पर ही मिलेंगे। इस पर उन महात्मा ने माँ यमुना से पूँछा कि वह किस स्थान पर प्रकट होगी । तो माँ यमुना ने जबाब दिया कि जहाँ पर तुम्हे खड़ाऊ तूमा और सोटा एक साथ मिल जाये वहीं पर मैं भी तुम्हें मिलूँगी और महात्मा जी जब गांव लौटे तो पिया निरंजनपुर स्थान पर एक स्थान में खड़ाऊँ , तूमा और सोटा मिले और एक गड्डे में जल मिला उनके नाम पर इस गाँव का नाम

पिया निरंजनपुर पड़ा उन्हीं महात्मा द्वारा कुकरगांव में इस अलंकृत मन्दिर का निर्माण कराया गया ।(२)

वास्तुशिल्प -

यह मन्दिर, इटौरा स्थित रोपण गुरू मन्दिर के आधार पर, ३ मंजिला बना हुआ है इसका आधार तल वर्गाकार है । इसकी प्रत्येक भुजा २८ फुट लम्बी है । यह मन्दिर वर्गाकार चबूतरे पर स्थित है जिसकी प्रत्येक भुजा में ५-५ अर्द्ध चक्र आकृति की भाँति मेहराब नुमा दरवाजें स्थित है जिसके ऊपर तोड़े निकले हुए हैं और इन तोड़ों के मध्य एक एक सुन्दर चित्र अंकित है । इस दरवाजे के बाद नीचे गर्भग्रह है । जोकि १८ फुट वर्गाकार में है जिसकी प्रत्येक भुजा १४ फुट है । यह मन्दिर पूर्वाभिमुख है । इस गर्भग्रह में दो दरवाजे है । दक्षिणी दरवाजा खिड़की नुमा है जो सीढ़ियों से होकर तलघर की ओर जाता है जिसमें रोपण गुरू बाबा की खड़ाऊं रखी है । दीवाल २२ इंच चौड़ी है ।
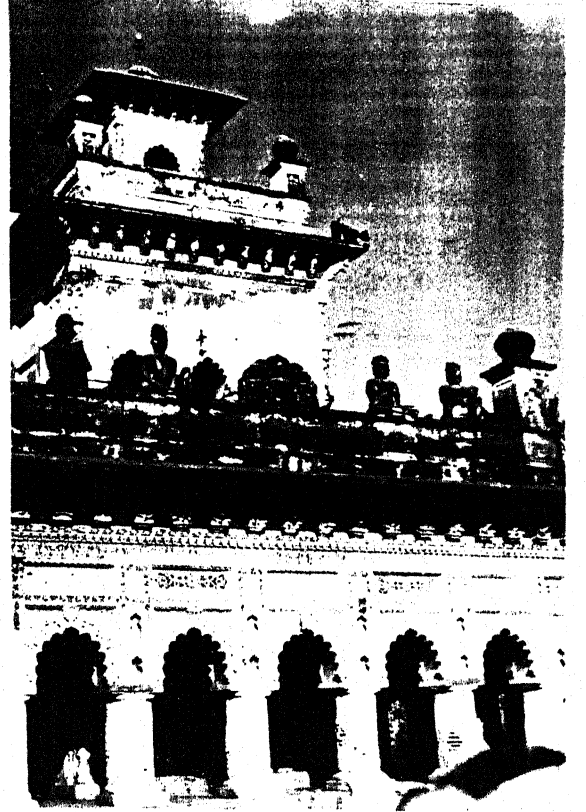
दूसरा दरवाजा एक गर्भग्रह में है । जिसमें चूने तथा पक्की ईटों के द्वारा विभिन्न प्रतिमायें बनी है । इस कक्ष की पश्चिमी भुजा के दाहिनी ओर एक पैर पर खड़े हुए साधु बने है तथा पूर्व की ओर मृदंग सहित साधु अंकित है तथा गर्भग्रह की दक्षिणी भुजा में सितार बजाता हुआ साधु अंकित है तथा एक अन्य साधु पदमासन्न मुद्रा में व एक दोनों पैरों मे खड़े हुए साधु के दोनों ओर अलग अलग प्रतिमायें भी अंकित है । आधार तक में जो मेहराबयुक्त दरवाजे बने हैं । उसमें बहुत सुन्दर मेहराब पर बेलबूटे युक्त कलाकारी, पच्चीकारी अंकित है । जोकि चूने के प्लास्टर पर उकेरी गई है । दूसरी मंजिल भी वर्गाकार है । उसकी प्रत्येक भुजा ३-३ मेहराबी दरवाजों से युक्त है । तीसरी मंजिल साधारण है । प्रत्येक भुजा में एक-एक दरवाजा से बना हुआ है ।

मन्दिर की चित्रकला -

इस मन्दिर को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि मानों यह मन्दिर न होकर एक भित्ति चित्रों का अनुपम संग्रहालय है। जिसमें कि विभिन्न प्रकार के पौराणिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक चित्रों का चित्रांकन किया गया है। ये सभी चित्र गहरे, चटकदार रंगों से बने हुए हैं जोकि आजतक अनवरत रूप से २५० वर्षों से भगवान भास्कर तथा वरूण के जल एवं वायु के थपेड़ों को झेलते हुए अपनी कला की छाप बनाये हुए है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह सारे चित्र उस समय हर्बल रंगों द्वारा रंगे गये होंगे। प्रथम मंजिल की प्रत्येक भुजा में २०-२० तोड़े बने हुए है। जिसके अन्दर विभिन्न प्रकार के चित्र अंकित है। पश्चिम की ओर २० तोड़े के अन्तर्गत जो चित्रांकन है वह निम्नानुसार है।

१- हुक्का पान करता जमीदार

२- चरखी खेलती स्त्री

३- मुग्दर घुमाता पहलवान

४- तंत्र साधना में लीन साधक

५- परिब्रजिका -मयूर व हिरण सहित

६- पानदान, तोप के साथ तलवारयुक्त जमीदार

७- अस्पष्ट

८- अश्व पर आरूढ़ खड़ग सहित योद्धा

९- जमींदार बैठा हुआ

१०- हाथी मय सवार

११- कृष्ण गोपी सहित

१२-शंकर जी दाढ़ी युक्त तथा विशिष्ट आकृति का सर्प धारण किये हुए जिनकी जटाओं से गंगा उद्‌गम दर्शनीय है।

१३- बन्दूक सहित सिपाही

१४- जमीदार के समक्ष ४ सिपाही

१५- अपने अधिकारी के समक्ष चार सिपाही

१६- सवार युक्त अंग्रेज अधिकारी

१७- कामक्रीड़ा में रत पुरूष स्त्री

दक्षिण की ओर जो २० तोड़े हैं उनके अन्तर्गत जो चित्रांकन है वह गरूण पुराण में वर्णित नर्क में मनुष्यों को उनके कर्मों के अनुरूप दिये जाने वाले दण्ड विधान का अंकन है।

१- पुरूषों को आग में जलाना

२- पुरूष का खम्बे में बांधकर प्रताड़ित करना

३- पुरूष का खून की दरिया में तैरना

४- पुरूष को सर्पों से कटवाना

५-अस्पष्ट

६- पुरूष के सिर पर यमदूतों द्वारा आरा चलाना

७- यमदूत दो

८- यमदूत एक

९- त्रिमुखी यमराज

१०- राजा रानी

११- दो आदिवासी

१२- काकभुषुण्ड जी

१३- यमदूत संवाद करते हुए

१४- तलवार लिए राजपुरूष

१५- अस्पष्ट

१६- अस्पष्ट

१७- स्त्री चरखी खेलते हुए

१८- अस्पष्ट

१९- अस्पष्ट

२०- अस्पष्ट

उत्तर की ओर २० तोड़े हैं उनके चित्रांकन का विवरण निम्नानुसार है।

१- जमींदार

२- सिंह द्वारा हिरण का शिकार

३- हुक्का पीता सेविका सहित जमींदार

४- साधु

५- अस्पष्ट

६- समर्थ गुरू रामदास विचरण करते हुए

७- स्त्री चरखी खेलते हुए

८- नृत्यांगना के साथ नृत्य रत दो पुरूष

९- शिवलिंग में ध्यानस्थित साधु

१०- डोली पर जाता जमींदार तथा सेवकगण

११- योग मे रत साधु । धनुषाशन मुद्रा ।

१२- अस्पष्ट

१३- अस्पष्ट

१४- अस्पष्ट

१५- दो मोरों के बीच सर्प उल्टा लटका तथा दोनों की चोंच में फंसा

१६- पहाड़ ले जाते हनुमान

१७- नमस्कार मुद्रा में साधु

१८- अस्पष्ट

१९- अस्पष्ट

२०- अस्पष्ट

तोड़ो की इस चित्रावली के साथ गर्भग्रह के प्रदिक्षणा पथ के दोनों ओर की भित्ति पर शंकर भगवान , मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान राम व श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं के अंकन के साथ विभिन्न यौगिक आसनों का पूर्ण चित्रण भी है जो कि अत्यन्त सुन्दर व मौलिक है ।

संदर्भ --

१- व्यक्तिगत सम्पर्क - श्री भानुप्रताप मंहत कुकरगाँव दिनांक ३-८-९४

२- व्यक्तिगत सम्पर्क - श्री सूर्यप्रसाद दुबे कुकरगाँव दिनांक ३-८-९४

षष्ठ अध्याय

पुरालेख

जनपद जालौन का पुरातात्विक व ऐतिहासिक विश्लेषण हेतु 'पुरालेख' भी एक आधार है जिनके माध्यम से हमें इस जनपद की विभिन्न ऐतिहासिक घटनाओं एवं तत्कालीन समाज व सभ्यता तथा पुरातत्व का ज्ञान प्राप्त होता है । इन पुरालेखों में प्राचीन पुराण, प्राचीन हस्तलिखित विभिन्न पाण्डुलिपियां, शिलालेख एवं भ्रमणकारियों की आख्यायें सम्मिलित हैं । यहाँ पर हम केवल उन पुरालेखों का वर्णन कर रहे हैं जिनके माध्यम से हमें जनपद जालौन की ऐतिहासिक जानकारी एवं महत्व आदि ज्ञात होता है ।

पुराण -

सभी पुराणों के विषय में यह सर्वविदित एवं सर्वग्राह्य तथ्य है कि ये पुराण अत्यन्त प्राचीन हैं तथा इनका लेखन ईसापूर्व ६०० वर्ष में हुआ था ।

देवी भागवत पुराण - इस पुराण के द्वितीय सकन्द में हमें महर्षि वेदव्यास के जन्म का कथानक एवं स्थान का वर्णन मिलता हैं । इसमें कहा गया है -

एकदा तीर्थ यात्रायां ब्रजन्पाराशरो मुनिः ।
आजगाम महातेजः कालिघारत्तट मुतमम् ॥
सुषुवे यमुना द्वीपे पुत्रं काम मिवापरम् ।
लासभामस्तु तेजस्वी तामुवाच स्वमातरम् ॥

अर्थात् इससे यह ज्ञान प्राप्त होता है कि पराशर पुत्र वेदव्यास का जन्म कालिन्द्री (यमुना) तट जो कि काल नामक ऊखल क्षेत्र है, वहाँ पर हुआ है और वह स्थान काल, कालप, कालपी है ।

शिवपुराण के ४४ वें अध्याय तथा महाभारत में भी हमें महर्षि वेदव्यास श्रीकृष्ण द्वैपायन के जन्म कालपी में होने का पूर्ण वृतान्त मिलता है ।

ब्रह्माण्ड पुराण - जालौन जनपद एवं विशेषकर कालपी क्षेत्र के विभिन्न पुरातात्विक स्थलों की दृष्टि से यह पुराण अत्यन्त महत्वपूर्ण है । इस पुराण में नारद व्यास सम्वाद के अन्तर्गत महर्षि वेदव्यास के जन्म की कथा का तो विस्तृत विवरण मिलता ही है साथ ही साथ अन्य स्थानों की धार्मिक महत्ता का भी वर्णन मिलता है । इसी पुराण में कालपी को सम्पूर्ण कामनाओं का देनेवाला कहा गया है ।

"देवदेव ! महादेव ! जगद्वेतो ! जगन्मय ।
कालपी महिमानं में ब्रूहि सवार्थदायकम् ॥ ५ ॥"

इसी क्रम में कालपी की महिमा का वर्णन इस प्रकार मिलता है

" कालाद्धि पाति कालेशो यत्र स्वेन महौजसा ।

तस्मात्सम्प्रोच्यते सद्भिः कालपीति शुभस्थली ॥१६॥

अस्तु जहाँ मृत्यु के स्वामी श्री विष्णु भगवान निज तेज द्वारा काल से मनुष्यों की रक्षा करते हैं , वहाँ इसी हेतु सज्जन पुरूष इस पुण्य भूमि को कालपी कहते हैं । इसी पुराण के प्रथम अध्याय में वर्णन मिलता है -

"अत्र कश्चिन्मुनि श्रेष्ठः क्षेमौकोन्यवसत्पुरा ।

तदाश्रमप दं रम्यं नानाश्चर्य मनोहरम् ॥६१॥

अर्थात् यहाँ पर (वर्तमान छौंक) प्राचीनकाल में मुनियों में श्रेष्ठ एक क्षेमौक ऋषि रहते थे उनका सुन्दर आश्रम अनेकों आश्चर्यों से मन को लुभाने वाला था । इससे यह बात सिद्ध होती है कि कालपी के पास स्थित छौंक ग्राम में क्षेमौक ऋषि का आश्रम था ।

इसी संवाद के अन्तर्गत द्वितीय अध्याय में पराशर ऋषि के आश्रम की जानकारी निम्नानुसार मिलती है -

"ततोदक्षिण दिग्भागे शक्ति सूनु : पराशर : ।

तपश्चरित लोकानां क्षेमाय नियतव्रतः ॥२॥

अर्थात् वहाँ से (कालपी) दक्षिण की ओर दृढ़व्रती श्री पाराशर जी शक्ति के पुत्र हैं, मनुष्यों के कल्याण के लिए तप करते हैं ।

इसी भाँति कालपी के निकट एक ग्राम के विषय में हमें निम्नानुसार वर्णन मिलता है -

"रायः सत्सम्पदः स्थान राय स्थानम् विदुर्बुधा : ।

कुवेरस्य समाख्यातं कालप्यां वासमिच्छतः ॥७८॥

अस्तु बुद्धिमान पुरूष 'राय' को सर्वश्रेष्ठ सम्पत्तियों का स्थान बतलाते हैं। यह कालपी में निवास करने की इच्छा वाले श्रीकुबेरजी का स्थान कहा गया है ।

इस राय पुरवा के दक्षिण में जलालपुर नामक ग्राम है जिसका उल्लेख इस पुराण में निम्नानुसार है -

" ततो दक्षिण दिग्भागे शाण्डिलय क्षेत्र मा स्थितम् ।

जलाल संज्ञकं लोके विख्यातं योगिभीः श्रितम् ॥६८॥

अर्थात् उससे दक्षिण की ओर जलालपुर नाम से प्रसिद्ध एक क्षेत्र है जहाँ पर श्री शाण्डल्य ऋषि का आश्रम है । उसमें बहुत से योगीजन निवास करते हैं ।

इस ब्रहमाण्ड पुराण के तृतीय अध्याय में हमें बड़ी हरदोई का विवरण इस प्रकार मिलता है -

" ततो विदूरे महती हरदोई समीरिता ।
पुण्यस्थली महाविष्णु पार्षदानां निकेतना ॥६॥

अस्तु उसके (कालपी) निकट ही एक ग्राम बड़ी हरदोई कहलाता है । वह पुण्य स्थली है तथा वहाँ विष्णु भगवान के श्रेष्ठ पार्षदों के घर हैं ।

इसी बड़ी हरदोई के निकट एक अन्य स्थान है जिसका उल्लेख इस प्रकार मिलता है -

" ततो विदूरे सुमहत्क्षेत्रं परमपावनम् ।
अनन्त रामस्य देवस्य घनश्यामस्य सुव्रता ॥
केशवस्य मुनिश्रेष्ठ माधवस्य मधु द्विषः ।
कुसुमार्हाख्यनाम्नांत सुगोप्यं लोकवेदयो : ॥

अर्थात् उसके (कालपी) समीप ही एक बहुत बड़ा पवित्र तीर्थ है । हे श्रेष्ठेव्रत वाले ! हे मुनिश्रेष्ठे नारद जी वह क्षेत्र मधु के नाशक अनन्तराम घनश्याम केशवश्री माधव जी का है । परम गोपनीय वह आश्रम लोक तथा वेद में कुसुमाही (कुसमरा) नाम से प्रसिद्ध है ।

इसी के बाद वर्तमान में आटा तथा इटौरा के मध्य बसे पुखरतमी से प्रसिद्ध ग्राम का वर्णन इस पुराण में निम्नानुसार है -

वाय देषादि सिद्धे शैरधिष्ठितम कल्मषम् ।
तत्र पुष्कारणी चास्ते ह्ननन्त शयनस्म वै ॥३५॥

अर्थात् उस पापरहित आश्रम में वाम देवादि सिद्धेश्वर निवास करते हैं । वहाँ अनन्तशायी भगवान की पुष्करिणी (तलैया) भी है । जिसके विषय में कहा गया है कि -

" तत्र संचरतां मुक्ति : ज्ञानसिद्धिः पदे पदे ।
प्रेम वैराग्य सिद्धिश्च भक्ति सिद्धि विशेषतः ॥५०॥

इसी पुराण के ८६ वें श्लोक में कौशल शर्मा के क्षेत्र का वर्णन इस प्रकार मिलता है -

" सन्निधानं प्रकुर्वन्ति क्षेत्रे कौशल शर्मण : ।

अत्र सर्वाणि तीर्थानि अरण्यानि सरांसिच ॥८६॥

इस कौशल शर्मा क्षेत्र के विषय में आगे वर्णन मिलता है -

सर्व देवाः सपितरौ गन्धर्वाप्सरसोगणा : ।

सानिध्यं कुर्वते नित्यं क्षेत्रे आस्मिच्छेषशायिनः ॥८८॥

अर्थात् पितरो समेत सभी देवता गन्धर्व तथा अप्सरायें इस अनन्तशायी भगवान के क्षेत्र में रहती हैं ।

इसी ब्रहमाण्ड पुराण में श्री बालेन्दुशेखर श्री गंगाधर गोविन्दात्मज श्री शंकर नारद संवादे कालपी महात्म के अन्तर्गत चतुर्थ अध्याय में भी इस जालौन जनपद के कुछ स्थानों का वर्णन मिलता है । " **कालिन्दया दक्षिणे भागे वामदेवाश्रंम विदुः ।**

आटा मिधं समाख्यातं मुक्ति भुक्ति प्रदायकम् ॥२॥

अर्थात् यमुना नदी की दक्षिण दिशा में श्री वामदेव ऋषि का आश्रम 'आटा' नाम से विख्यात है जो मुक्ति तथा भोग का देनेवाला है ।

इसी क्रम में आटा से पूर्व की ओर इटौरा नामक ग्राम है जिसका वर्णन इस प्रकार मिलता है -

"इटौराख्यं महापुण्यं मुक्ति भुक्ति प्रदायकम् ॥२७॥

भवेदत्र न सन्देहो मुने । सत्यं ब्रवीमिते ।

ब्रहस्पति स्तपस्ते ब्रहमणः शरदां शतम् ॥३०॥

अर्थात् वह महा पवित्र क्षेत्र इटौरा नाम से प्रसिद्ध भोग तथा मुक्ति का देनेवाला है । हे मुने । इसमें तुम्हें सन्देह न हो , मैं तुमसे सत्य ही कहता हूँ । यहाँ पर (देवताओं के गुरू) ब्रहस्पति ने ब्रहमा की १०० वर्ष तपस्या की ।

इस इटौरा के समीप ही एक अन्य ग्राम सन्दी है जो कि सिद्ध क्षेत्र है तथा पुत्र पौत्र व ऐश्वर्य की वृद्धि करनेवाला तथा परम पवित्र क्षेत्र है ।

" पुत्र पौत्र समृद्वीनां वर्द्धनं पावनं महत् ।

ततो विदूरे सुमहत्सिद्धि क्षेत्रं समीरितम् ॥३७॥

इस सन्दी क्षेत्र के आगे वायुदेव का क्षेत्र है जिसके समीप मार्कण्डेय ऋषि का आश्रम है । इस आश्रम का वर्णन इस प्रकार मिलता है -

" ततो विदूरे सुमहान मुक्ति भुक्ति प्रदायकः ।

मार्कण्डेयास्याश्रमस्तत्र योगिनां हृदयङ्गय : ॥५३॥

चतुर्णामाश्रमाणाश्च मन्दिरै : समलंकृत : ।

वर्णाना ब्राहमणादीनां सदभि परिशोभितः ॥५६॥

अर्थात् उसके समीप ही मुक्ति तथा भुक्ति का देनेवाला और योगियों को अच्छा लगने वाला श्री मार्कण्डेय ऋषि का एक बहुत बड़ा आश्रम है । वह आश्रम चारों ओर आश्रमों (ब्रह्मचर्य , ग्रहस्थ, वाणप्रस्थ , सन्यास) वाले ब्राहमणादि वर्णों के मनुष्यों के घरों से सुशोभित है ।

इस ब्रहमाण्ड पुराण के द्वारा कालपी क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति तथा उसके आस पास बसे ग्रामों का व उनके महत्व का ज्ञान प्राप्त होता है ।

पुरालेखों की इस श्रंखला में बहुत कम पाण्डुलिपियाँ देखने को मिलती हैं जिनसे इस जनपद के इतिहास पर एक किरण सी पड़ती है । इनका सूक्ष्म वर्णन इस प्रकार से है-

रामपुरा रियासत की पाण्डुलिपि -

रामपुरा रियासत में वर्तमान राजा समरसिंह के पास लगभग १५० वर्ष प्राचीन हस्तलिखित एक पाण्डुलिपि में रामपुरा के आसपास के क्षेत्र का भी राजपरिवार के साथ सम्बन्धों का विवरण लिखा है तथा यह भी वर्णित है कि रामपुरा किले का निर्माण किसने किया ।

गोपालपुरा राजवंश की पाण्डुलिपि -

इस पाण्डुलिपि में गोपालपुरा राजवंश का वर्णन है । इस वर्णन के साथ ही साथ इस जालौन जनपद के विभिन्न ग्रामों जैसे सुढ़ार , सिरसारूरा , रूपसाहि, लहचूरा, कोटरा गिधौसा, हथेरी, मऊमेहोनी, रूधपुरा, रामपुरा आदि का वर्णन मिलता है । इस पाण्डुलिपि में दोहा चौपाइयों के माध्यम से वर्णन किया गया है । उदाहरणार्थ इसके पृष्ठ ४७ पर लिखा है-

" वासदेव जेठे भये गादी थपे अजीत ।
रौरा मानपुरा लहयो लहुरे आसा जीत ॥"

प्रणामी पंथ पाण्डुलिपि -

यह पाण्डुलिपि संवत १६४७ - ४८ में दोहा चौपाइयों के माध्यम से नागरी लिपि में लिखी गई है । ग्राम इटौरा में स्थित रोपण गुरू मंदिर के विषय में तथा रोपण गुरू का जीवन परिचय एवं उनके बाद कौन कौन से गुरू इस गद्दी पर आसन्न हुए , लिखा है । इसमें मंदिर के निर्माण के विषय में भी पूर्ण जानकारी दी गई है ।

आईना कालपी -

कालपी के निवासी मुंशी इनायत उल्ला अपनी डायरी लिखा करते थे । उसी डायरी को आज आईना कालपी की मान्यता मिली है । इसको हिजरी १३०५ में उर्दू में लिखा गया था । इसमें कालपी का इतिहास , कालपी के पीर पैगम्बर तथा कालपी की प्राचीन इमारतों के विषय में अपने ढंग से जानकारी दी गई है । इसमें एक लगायत छियासी पृष्ठ हैं ।

आइने अकबरी -

अकबर के दरबारी इतिहासकार अबुल फजल ने इसे लिखा है। इस पुस्तक में अकबर के समय की राज्य व्यवस्था आदि का वर्णन है । इस पुस्तक में टकसाल, कालपी सरकार तथा कालपी के महेश दुबे (बीरबल) आदि का भी वर्णन है । उसके समय का जिक्र इसमें आया है।

सर्वे रिपोर्ट एलैक्जेन्डर कनिघंम -

सन १८८२ - ८३ में एलेक्जेन्डर कनिघंम ने इस क्षेत्र का स्थापत्य की दृष्टि से निरीक्षण किया था तब उसने यहाँ के प्राचीन भवनों का विवरण अपनी आख्या में दिया था । कालपी की चौरासी गुम्बद उनमें से एक है । कनिघंम की इस आख्या से जनपद जालौन के इतिहास एवं तत्कालीन भवनों के निर्माण तथा उनकी प्रांसगैकता के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है । पुरालेखों की इस कड़ी में शिलालेखों की अपनी विशिष्ट महत्ता है इस जनपद में जो भी भवन है चाहे वे धार्मिक हों अथवा सामाजिक उनमें से कुछ में पत्थरों पर खोदकर उनके निर्माण का काल , निर्माणकर्ता का नाम आदि अंकित देखने को मिलता है । इन शिलालेखों से भवनों के इतिहास का प्रामाणिक ज्ञान प्राप्त होता है । कुछ उपलब्ध शिलालेखों का वर्णन निम्नानुसार है -

रामपुरा गढ़ी शिलालेख -

रामपुरा गढ़ी के अन्दर स्थापित मंदिर के द्वार पर यह शिलालेख लगा हुआ है। इसमें इस गढ़ी के निर्माण की तिथि , निर्माण कर्ता का नाम आदि अंकित है । यह शिलालेख देवनागरी लिपि में है तथा लयबद्ध है । इसका विस्तृत विवरण रामपुरा गढ़ी के इतिहास में दिया गया है ।

पाहूलाल मंदिर शिलालेख -

यह शिलालेख कालपी स्थित पाहूलाल मंदिर में है जो कि देवनागरी लिपि में लिखा गया है ।

शिलालेख - रोपण गुरू मंदिर इटौरा -

यह शिलालेख रोपण गुरू मंदिर के अन्दर दक्षिणी द्वार के ऊपर है । यह पूरा शिलालेख संस्कृत भाषा में है । इसका विस्तृत विवरण रोपण गुरू मंदिर के इतिहास में दिया गया है ।

स्थापत्य

मनुष्य ने छेनी हथौड़ा , ईट गारा तथा भावनाओं के माध्यम से जब अपने खाली समय का सूनापन भरा तभी स्थापत्य कला का उद्भव हुआ और यह स्थापत्य कला , कला का एक महत्वपूर्ण अंग बन गई । इस स्थापत्य कला का अपना दृष्टिकोण है क्योंकि जैसे साहित्य समाज का दर्पण होता है उसी भाँति स्थापत्य कला से भी तत्कालीन समाज की मनोबृत्ति व स्थिति का पता चलता है । स्थापत्य कला समय के परिवर्तन के कारण नवीन नवीन साँचों में ढलकर हमारे सामने आती है इसका जिस व्यक्ति के हाथों संचालन होता है, उसी की समस्त भावनाओं के अन्तर्गत अपना रूप धारण करके उसकी रूचियों का दर्पण बन जाता है । प्रत्येक जाति की सभ्यता व संस्कृति के दृष्टिकोण से उसकी स्थापत्य कला अलग अलग होती है जिसकी उन्नति व अवनति उसके उत्थान व पतन के साथ हुआ करती है ।(१)

भारतीय कला जहाँ एक ओर धार्मिक संस्कारों से अनुप्राणित है वहीं दूसरी ओर सौन्दर्य तथा आनन्द के तत्वों से पूर्ण है । कलाकारों ने भारतीय शिल्प के विभिन्न अंगों को कल्पना द्वारा चारूत्व से मण्डित किया (२)श्री द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल ने अपनी पुस्तक भारतीय स्थापत्य में संदर्भ देते हुए यह लिखा है कि -

" देहो देवालयः प्रोक्तो जीवो देवः सनातनः।
त्यजेद ज्ञान निर्माल्यं सोऽहं भावेन् पूजयेत् ॥

अर्थात् देह ही देवालय है और जीव ही देव है । अज्ञान को ही निर्माल्य समझकर त्यागना चाहिये वह प्रभु (ईश्वर) ही हम हैं , इस भाव से उसका पूजन करना चाहिए (३)

यह भाव इस शरीर तथा आत्मा के सम्बन्ध को उजागर करता है । इस भारत देश में देवालय एवं प्रासाद (भवन) आदि का निर्माण भी इसी भाव के अन्तर्गत होता है क्योंकि श्रीशुक्ल ने आगे संदर्भ देते हुए लिखा है -

" देवादीनांनराणां च येषु रम्यतया चिरम् ।
मंनासि च प्रसीदति प्रसादास्तेन कीर्तिताः ॥"

अस्तु चूंकि भवन में रहने वाले मनुष्यों का (जो कि देवरूप है) बहुत समय तक सुख एवं प्रसन्नता से निवास होता है इसीलिये उस भवन को प्रासाद कहा जाता है ।(४)अतः इस देश की स्थापत्य कला भी अध्यात्म भाव पर ही आधारित है ।

वास्तु शिल्पी बी०एन०रेड्डी के अनुसार -" **Because of Vastu , the whole world gets health, happiness and all round prosperity . Human being attain divinity with this 'Shasstra-Vastu' and the existence of this world are interrelated . Because of Vastu man gets not only the worldly pleasures but can experience heavenly bliss also ,"** (५)

डा० शुक्ल ने तो यहां तक लिख डाला कि -

"प्रासादं पुरूषं मत्वा पूजयेद मंत्रवित्तम :
एवमेव हरिः साक्षात् प्रासादत्वेन संस्थित ॥"

अर्थात् जो नीति को जानने वाले हैं उन्हें भवन को ईश्वर मानकर ही सर्वदा पूजना चाहिये क्योंकि स्वयं हरि (भगवान) भवन के रूप में मनुष्य के पास स्थित रहते हैं। (६)

इस सबसे यह स्पष्ट है कि हिन्दू मान्यताओं में स्थापत्य अथवा वास्तुकला का कितना उच्च स्थान है । अतः जनपद जालौन के ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक विश्लेषण में भी स्थापत्य अथवा वास्तु का विशेष स्थान है । मध्यकाल से पूर्व गुलामवंश के शासन में आने से पूर्व यह समूचा क्षेत्र ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष हिन्दू मानदण्डों पर आधारित था और उसकी स्थापत्य कला पर हिन्दुत्व का ही पूर्ण प्रभाव था । परन्तु मध्यकाल में जव इस देश में इस्लाम का प्रवेश हुआ और केन्द्रीय सत्ता पर उनका अधिकार हुआ तब से इस्लाम का प्रभाव जन सामान्य पर तथा उसकी जीवन शैली पर भी पड़ा ।

इस जनपद के स्थापत्य को देखने से पूर्व हिन्दू स्थापत्य शैली तथा मुस्लिम (ईरानी) वास्तुकला शैली की विशेषताओं को अलग अलग समझ लेना आवश्यक होगा ।

हिन्दू स्थापत्य कला शैली -

हिन्दू स्थापत्य कला शैली का विस्तार विवेचन - सार्वभौमिक, दार्शनिक, खगोलीय , भौगोलिक, तथा स्वातान्त्रिक इन पाँच प्रमुख दृष्टकोणों से किया जा सकता है। (७) हिन्दू स्थापत्य में नगर वास्तु, जनभवन एवं प्रासाद वास्तु के क्रम में अध्ययन किया जा सकता है । हिन्दू स्थापत्य के अनुसार नगर निवेश हेतु निम्न विशेषतायें अपेक्षित हैं ।

१- यथोचित एवं उपयुक्त विन्यास योजना

२- नगर की अपनी वैयक्तिकता

३- विपुल वायु संचारार्थ खुली जगहें

४- आबादी की असंकीर्णता

५- विस्तृत मार्ग

६- अच्छी स्वच्छता

७- प्रचुर जल व्यवस्था

८- पूजा, शिक्षा , क्रीड़ा तथा मनोरंजन के उपयुक्त साधनों की यथोचित स्थिति

९- घृणित , असुन्दर एवं अदर्शनीय स्थलों का अभाव

१०- सुविधापूर्ण तथा सस्ते यातायात साधन

११- नागरिकों का उसमें अनुकूल सहयोग एवं संतोष

उपर्युक्त विशेषताओं से युक्त नगर सुन्दर माना गया है ।(८) जनपद के कालपी , कोंच, जालौन तथा उरई ये सभी तहसील केन्द्र उपर्युक्त विशेषताओं से संयुक्त हैं । इनमें सभी में यथोचित स्थान वायु संचारार्थ खुली जगहें , आबादी की असंकीर्णता, विस्तृत मार्ग, प्रचुर जलव्यवस्था , पूजा शिक्षा मनोरंजन हेतु खुली जगहें , घृणित स्थलों का अभाव सुविधापूर्ण सस्ते यातायात साधन आदि प्रत्यक्ष रूप से दिखलाई पड़ते हैं । अतः ये चारों ही तहसील केन्द्र नगर निवेश की विशेषताओं से सन्निहित हैं । इनके अलावा रामपुरा , इटौरा, माधौगढ़, सैदनगर आदि खेटक नगर की संज्ञा में आते हैं । **ग्रामयोः खेटकं मध्ये राष्ट्र मध्ये तु खर्वटम** " अर्थात् दो भागों अथवा ग्राम समूह के मध्य में एक समृद्ध लघुकाय नगर खेटक नाम से पुकारा जाता है (९)

हिन्दू स्थापत्य कला के अन्तर्गत हिन्दू स्थापत्य शैली , जैन स्थापत्य शैली , बौद्ध स्थापत्य शैली , राजपूत स्थापत्य शैली, पहाड़ी स्थापत्य शैली, आदि को सम्मिलित किया जाता है । इस प्रकार से हिन्दू स्थापत्य शैली की संयुक्त विशेषतायें कुछ इस प्रकार होंगी

१- भवनों की नींव गहरी तथा रोकथाम हेतु चबूतरे का प्रयोग ।

२- भवनों की कुर्सी ऊँची ।

३- लकड़ी का काम अधिक ।

४- पत्थर तथा ईटों का प्रयोग ।

५- चारों दिशाओं में द्वार बनवाने की प्रथा ।

६- पालिश चमकदार ।

७- सजावट के काम में बारीकी तथा मोटापन दोनों ।

८- नुकीली घण्टियों का प्रयोग ।

९- स्तम्भों की बनावट सुन्दर व सजीव । उसकी तली मोटी व चौड़ी तथा ऊपरी भाग नीचे की अपेक्षा पतला ।

१०- धार्मिक भवनों पर गुम्बदों का प्रयोग ।

११- भवनों के द्वार स्तम्भ जंगलों आदि पर सजावट के सुन्दर नमूने ।

१२- छज्जों तथा दीवाल में आलों का होना ।

१३-धार्मिक भवनों के गुम्बदों पर कमल का फूल तथा गुम्बद आधार के बाह्य क्षेत्र पर कमल दलों का अंकन ।

१४- द्वार मेहराबदार

१५- मंदिरों के शिखरों में कई खण्ड

१६-सजावट की इकाइयों में फूल पत्ते, चिड़ियाँ , जानवर, नर नारी आदि का अंकन।

१७-हिन्दू मंदिरों के शिखर पिरामिड़ाकार होते हैं । शिखर में कमल तथा कलश को उचित स्थान दिया जाता है । हिन्दू लोग पत्थरों को खोद कर उन पर भिन्न भिन्न प्रकार की अपने धर्म से सम्बन्धित मूर्तियाँ बनाया करते थे।

१८-हिन्दू कला अलंकरण युक्त व चमक दमक वाली थी (१०)

कालपी क्षेत्र में उपर्युक्त विशेषताओं से युक्त भवन अथवा मंदिर इस प्रकार हैं - पाहूलाल मंदिर , गणेश मंदिर , दिगम्बर जैन मंदिर , बटाऊलाल मंदिर , बड़ा स्थान , लक्ष्मी नारायण मंदिर, पातालेश्वर मंदिर, चौरासी गुम्बद , श्री दरबाजा आदि ।

कोंच क्षेत्र में उपर्युक्त हिन्दू स्थापत्य शैली की स्पष्ट छाप , लक्ष्मीनारायण मंदिर , रामलला मंदिर आदि में देखने को मिलती है इसके साथ ही साथ जालौन का द्वारिकाधीश मंदिर, लक्ष्मीनारायण मंदिर ,भैरव मंदिर रामपुरा, बम्बई वाला मंदिर आदि हिन्दू स्थापत्य कला के प्रतीक हैं । उरई में लक्ष्मीनारायण मंदिर , अक्षरा देवी सैदनगर, मन्सिलमाता मंदिर , रामलला मंदिर, ठड़ेश्वरी मंदिर , रोपण गुरू मंदिर कुकरगाँव आदि इस हिन्दूस्थापत्य शैली के प्रमुख उदाहरण हैं ।

जगम्मनपुर, रामपुरा तथा गोपालपुरा की गढ़ियाँ भी हिन्दू स्थापत्य शैली के अन्तर्गत निर्मित हैं । अब हम मुस्लिम स्थापत्य कला शैली की विशेषताओं पर दृष्टिपात करेंगे । ये निम्नवत् हैं -

१- इमारतों में मेहराबों का प्रयोग ।

२- दरवाजे मेहराबदार ।

३- मसजिदों में मीनारें व गुम्बद ।

४- गुम्बद की सजावट टाइलों से ।

५- ऊँची नीचीं सभी प्रकार की मीनारों का निर्माण तथा उन पर हल्की नक्काशी का काम ।

६- इमारत की छते धनुषकार तथा डाटदार ।

७- इमारतों में सजावट बहुत कम ।

८- विशाल आँगन ।

६- समरुपता के सिद्धान्त का पालन किया गया ।

१०- इमारतों में सरलता ।

११- दरवाजों पर कुरान पाक की आयते खुदी होती है ।

१२-अकबर के काल की इमारतों में लाल पत्थर का प्रयोग तथा सुन्दर जाली का प्रयोग (११)

मुस्लिम स्थापत्य कला शैली का प्रभाव कालपी में हमें काली हबेली, शाही मसजिद, मदरसा मदार साहब, पर दिखलाई पड़ता है वही उरई में जामा मसजिद सैदनगर, तथा कोंच में कलन्दर शाह की मजार पर भी यह प्रभाव स्पष्ट रुप से दृष्टि गोचर होता है ।

उपर्युक्त वर्णित हिन्दू स्थापत्य शैली एवं मुस्लिम स्थापत्य शैली का मिला जुला प्रभाव भी मध्यकाल की स्थापत्य शैली पर दिखलाई पड़ता है । क्योंकि इस देश में जब इस्लाम धर्म का प्रबेश हुआ तो उसके द्वारा यहाँ इस्लामी सभ्यता का जन्म हुआ और भारत वर्ष हिन्दू सभ्यता और इस्लामी सभ्यताओं के मिलाप का केन्द्र बन गया । (१२) जनपद जालौन की स्थापत्य कला भी इस हिन्दू मुस्लिम साँझी स्थापत्य कला से अछूती न रही । इस साँझी स्थापत्य कला के विषय में एक विद्वान का मत है कि " हिन्दुओं में मूर्ति पूजा थी, मुसलमान इसका विरोध करते थे । हिन्दू सजावट तथा श्रृगांर चाहते थे, इस्लाम सादगी को पसन्द करता

था । इन विरोधी आदर्शों ने मिलकर स्थापत्य कला की एक ऐसी शैली को जन्म दिया जिसे हम भारतीय मुस्लिम शैली कह सकते" (१३)

मुसलमान विजेता के रुप में भारत आये थे । उनके साथ उनकी अपनी सभ्यता , भाषा , संस्कृति, रीतिरिवाज सभी कुछ था । उन्होंने भारत को हिन्दुओं का कठिन विरोध होते हुये भी पदाक्रान्त किया तथा यहाँ की अनेकानेक कलाओं का विध्वंस कर दिया । जब दौनो ने ही यह समझ लिया कि मिलकर इसी भारत में रहना पड़ेगा तो दोनों ओर से मेल मिलाप बढ़ा जिसका प्रभाव स्थापत्य कला पर भी पड़ा । (१४) और हिन्दू मुस्लिम साँझी स्थापत्य कला के निम्न तत्व विशेष रुप से उभर कर आये -

१- इस शैली की इमारतो में मीनार है जो कि अनुपातिक रुप से नीचे से मोटी तथा चौड़ी और ऊपर की और पतली होती जाती है ।

२- इन इमारतो में गुम्बद हैं परन्तु उनमें सजावट हेतु टाईलों का प्रयोग नही हुआ है ।

३- मन्दिरों पर कलश बने

४- विशाल फाटक बने जिनपर कुरान शरीफ की आयते लिखी गई ।

५- कंकरीट तथा चूने का प्रयोग हुआ ।

६- इमारत की कुर्सी ऊँची रखी गई तथा तहखानों का निर्माण हुआ ।

७- छज्जों का भी प्रयोग हुआ ।

८- ताकों की बनावट ऊपर की ओर तथा सरल है ।

९- दरवाजे डाट दार हैं और डाटों को बनाने में पत्थर का प्रयोग किया गया ।

१०- दरवाजे मेहराबदार बनाये गये ।

११- सजावट का रुप कम परन्तु सुन्दर हुआ ।

१२- मसजिदों में हौज बने तथा कुछ में हम्माम भी बने (१५)

उपर्युक्त साँझी विशेषताओं से युक्त कोंच की तकिया खुर्रमशाह, बारह खम्बा, कुम्भज ऋषि आश्रम कुरहना (कालपी) , आदि है ।

यहाँ पर यह भी उल्लेख करना परम आवश्यक है कि मुस्लिम मसजिदें जितनी भी हैं इस जनपद जालौन में , सभी का मुख काबा शरीफ की ओर है जब कि हिन्दू

स्थापत्य शैली में द्वार का विशेष ध्यान रखा जाता है । भवन का द्वार किस दिशा में हो तो उसका कैसा प्रभाव पड़ेगा यह निम्न श्लोक से विदित है -

" पूर्व द्वारं तु माहेन्द्रं प्रशस्तं सर्वकामदाम ।
गृहक्षतं तु विहितं दक्षिणेना शुभावहम् ॥
गन्धर्वमथवा तत्र कर्तव्यं श्रेयसेसदा ॥
पश्चिमेन प्रशस्तं स्यात् पुष्पदंत जयावहम् ।
भल्लाट मुत्तरे द्वार प्रशस्तं स्याद् गृहे शितुः ॥

अर्थात् पूर्व के द्वार पर इन्द्र विराजते हैं जो कि सभी मनोरथों कामनाओं की पूर्ति करते हैं दक्षिण में स्थित द्वार अशुभकारक तथा गृह की हानि करने वाला होता है । पश्चिम में स्थित द्वार गन्धर्व या पुष्पदन्त से विराजित होता है और वह कल्याणकारी होता है । उत्तर दिशा में स्थित द्वार पर कुबेर भल्लाट विराजते है जो कि गृह को कुशल युक्त कल्याणकारी बनाते हैं । (१६) इसी भाँति हिन्दू स्थापत्य में घरेलू भवनों में विभिन्न कक्षों की दिशाओं को भी बतलाया गया है जैसे

" North east is the place for pooja, East is the place for bathroom . South east is the place for kitchen . North is the place for treasure. South for bedroom. West for Dining and South west for store house of Grains and north west for toilet etc."

अर्थात् उत्तरी पूर्व दिशा पूजा के लिये पूर्व दिशा स्नानागार के लिये , दक्षिण पूर्व दिशा रसोई हेतु , उत्तर दिशा घर के खजाने के लिये , दक्षिण दिशा शयनकक्ष हेतु, पश्चिम दिशा भोजन कक्ष हेतु , दक्षिण पश्चिम दिशा अनाज भण्डारण हेतु तथा उत्तरी पश्चिम दिशा मलमूत्र हेतु होनी चाहिये । इसी भाँति घर में कुओं की दिशा का भी उल्लेख मिलता है -

" A well in the south east is dangerous to sons. One in the south west spells death to the native. Some happines in the north . and a well in north east brings all round prosperity ."

अर्थात् दक्षिण दिशा में स्थित कुआँ पुत्रों के लिए घातक होता है । दक्षिण पश्चिम में स्थित कुआँ स्वजनों की मृत्यु का कारक होता है । उत्तर में स्थित कुआँ कुछ खुशी देता है और उत्तर पूर्व में स्थित कुआँ सभी प्रकार की समृद्धि का देने वाला होता है। (१७)

इस प्रकार से हम पाते हैं कि हिन्दू स्थापत्य कला में भवन संरचना का सूक्ष्म वैज्ञानिक आधार पर प्रभाव देखकर, उसका पूर्ण विवेचन किया गया है ।

जनपद जालौन में कुछ ऐसे भी भवन है जो कि हिन्दू स्थापत्य शैली के अनुसार बने थे परन्तु मुगलकाल में मुगलिया सल्तनत के अधीन उनमें मुस्लिम स्थापत्य के अनुसार बदलाव करके उन्हें हिन्दू मुस्लिम स्थापत्य का उदाहरण के रूप में देखा जाने लगा। कोंच का तकिया खुर्रम शाह, कालपी का श्रीदरवाजा, हवेली सुभानगुण्डा , काली हवेली , चौरासी गुम्बद आदि इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं । वैसे इस जनपद के भवनों पर मुगलशैली का विशेष प्रभाव नहीं है परन्तु जो भवन मुस्लिमों के अधिपत्य में हो गये वे पूरी तरह से हिन्दू मुस्लिम स्थापत्य शैली के उदाहरण बन गये ।जहाँ तक मीनारों के क्रमवार विकास का प्रश्न है इस जनपद में मुस्लिम स्थापत्य के बहुत कम उदाहरण है क्योंकि यहाँ का जनमानष सदैव से ही केन्द्रीय नेतृत्व का विरोधी रहा है अतः मुगल संस्कृति यहाँ के हिन्दूजन मानष पर प्रभावी नहीं हो पायी । इसी कारण मीनारों का विकास क्रम यहाँ पर दृष्टव्य नहीं है ।

संदर्भ

१- हिन्दू मुस्लिम स्थापत्य कला शैली - कादरी असगर अली एस० एम० पृष्ठ १
२- भारतीय वस्तु कला इतिहास - कृष्णदत्त बाजपेयी पृष्ठ२
३- भारतीय स्थापत्य - द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल पृष्ठ २१७
४- " " " पृष्ठ सं०२२०
५- ए ग्लिम्पसेज आफ प्रेक्टिकल वास्तु बी०एन०रेड्डी - पृष्ठ ३६
६- भारतीय स्थापत्य - द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल - पृष्ठ २१५
७- " " " " पृष्ठ १२
८- " " " " पृष्ठ ११२
९- " " " " पृष्ठ ५८
१०- हिन्दू मुस्लिम स्थापत्य कला शैली - कादरी असगर अली एस० एम०- पृष्ठ ६५-६७, १०१,१०३,१३[illegible]
११- " " " " पृष्ठ ११२
१२- " " " " पृष्ठ १२
१३- " " " " पृष्ठ १३५
१४- " " " " पृष्ठ १३६
१५- " " " " पृष्ठ १३८
१६- भारतीय स्थापत्य - द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल पृष्ठ १६६
१७- ए ग्लिम्पसेज आफ प्रेक्टिकल वास्तु - बी०एन० रेड्डी- पृष्ठ -३६-३६

मूर्ति कला

मानव मन में बसी काया को मूर्त रूप देना ही मूर्ति कला है । अर्थात् अमूर्त का मूर्त रूप ही मूर्ति है । पाषाण में, धातुओं में , प्राण प्रतिष्ठा का आवाह्न ही मूर्ति है । वैदिक काल के पूर्व भी मूर्तियों का स्पष्ट प्रमाण प्राप्त है । हड़प्पा और मोहनजोदड़ो से प्राप्त सीलों तथा मूर्तियों से स्पष्ट होता है कि उस समय मूर्ति की पूजा प्रचलित थी ।

पाश्चात्य विद्वान बल्सिन कहते हैं कि वैदिक कालीन उपासना काल्पनिक भावात्मक एवं प्रतीकात्मक थीं । यज्ञ का प्राधान्य था । उनकी उपासना का आधार प्रतिमा न होकर आहुति थी (१) मेकडानेल कहते हैं कि प्राकृतिक शक्तियों के कार्यो के आधार पर उन्हे मूर्त रुप दिया गया जैसे- सूर्य के हाथ उसकी किरणों के प्रतीक है, अग्नि की जिह्वा उनकी लपटो की प्रतीक है । इसके अतिरिक्त और किसी प्रतिमा का उदाहरण ऋग्वेद में प्राप्त नही है । (२)

मेकडानेल, विल्सन आदि जहाँ वैदिक काल में मूर्ति पूजा को स्वीकारते नही है डां० बोल्लेनसन का विचार है वैदिक कालीन व्यक्ति केवल प्रतिमाओं से परिचित ही नही थे बल्कि वे उनकी पूजा भी करते थे (३) वोल्लेनसन का यह विचार ऋग्वेद में उल्लेख प्रसंगों पर आधारित है । यथा ऋग्वेद में देवों के लिए प्रयोग **दिवोनरस्** (४) **नृपेशस्** (५) (मानव के आकार वाले)।" **नु भन्वान ः एषां देवान् अर्चा**" (६) मरूप्रेत की अर्चा का प्रसंग है तो **विभ्रदापि हिरण्यं वरूणों वस्त निर्णिजम् । पारिस्पश्शो निर्षेदिरे** (७) में वरूण एवं उनके अनुचरों का संकेत है । एक अन्य स्थान पर उल्लेखित **"तूर्मयं सुबिरामिव"** (८) इस प्रसंग का अर्थ एक लम्बी नालिका से है , किन्तु वैलेन्टाइन साहब ने इसका तात्पर्य एक सुन्दर लौह प्रतिमा से माना है (९) ब्राहमणकाल में तो यज्ञ की प्रधानता थी ही साथ ही कर्मकाण्ड का महत्व बढ़ता गया । देवों के चिन्ह प्रतीक रूप में चक्र प्रतीकों से पुष्ट लक्षणों का विकास हुआ । सूर्य का यही प्रतीक बाद में विष्णु का चक्र व बुद्ध का धर्मचक्र बना ।

कर्मकाण्डों से असंन्तुष्ट होकर समाज के लोगों का ध्यान दूसरी ओर खिंचा और अब वे रहस्यों की परिधि में सत्य तलाश करने आरण्यकों में गये और आरण्यक व उपनिषदों में अपनी खोजपूर्ण उद्देश्य के परिणाम लेकर आये । उपनिषदों में कहा गया है कि ब्रहमा की न कोई प्रतिमा है न कोई रूप और न कोई इसे देख पाता है ।

सम्भवतः इन्हीं करणों से गुण्डवेल महोदय ने कहा है कि ब्राहमण एवं उपनिषद काल की भूमि कला के लिए बंजर थी ।

सूत्रकाल में आते आते संस्कारों पर अधिक बल दिया गया। मुख्य देवों के साथगौण देव प्रतिमाओं की पूजा प्रारंभ हो गयी। कर्मकाण्ड, संस्कारों आदि से ऊब कर समाज सादा भक्ति को महत्व देने लगा और अनेक उपादानों से उपलब्ध मूर्त रूप में उपस्थित अपने देव समुदाय की उपासना करने लगे।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मूर्तियों के विषय में उल्लेख है कि लोग मूर्तियों का निर्माण बेचने के उद्देश्य से करते थे। मौर्यकाल से ही प्रथम मानव मूर्ति की प्राप्ति होती है। यक्ष प्रतिमा के रूप में परस्तम का यक्ष, दीदारगंज की यक्षी और इसके साथ ही शुरू हो जाती है मानव की पाषाण साधना, जिसके विभिन्न पड़ाव के रूप में है मथुरा कला, गांधर स्कूल, मालवा स्कूल आदि.।

मौर्य काल की मूर्तियों में जहाँ देवत्व का आरोपण था, शुंग काल तथा कुषाण काल में कला का लौकिक रूप अपने पूर्ण स्पुरण तथा स्पन्दन के साथ प्रगट हुयी। गुप्तकाल में आध्यात्मिकता सम्पूर्ण कला जगत पर छाई रही। दक्षिण में प्रतिमाओं को शास्त्रीय ढंग से तथा लौकिक मूर्तियों में भारीपन का प्रदर्शन किया गया। उत्तर भारत में नवीं शताब्दी में खजुराहों की कला एक शैली के रूप में प्रगट हुई जिसमें आध्यात्मिकता, लौकिक रूप तथा भौगिक रूप सम्वेत स्वर से स्पष्ट हुये।

समग्र में इकाई और ईकाई की समग्रता है प्रतिमा विज्ञान। प्रतिमा का निर्माण शास्त्रीय ढ़ग से उसके लक्षण गुण रुप आयुध आदि के आधार पर किया जाता है। शास्त्रों में प्रतिपादित नियमानुसार ही देव प्रतिमायें पूज्यनीय बनती है।

"प्रगाणं स्थापिता : देवाः पूर्जा पूजार्धश्च भवन्ति।" (१०)

और इन्ही प्रतिमाओं की प्राण प्रतिष्ठा मंदिरों में की जा सकती है क्योंकि यही पूजनीय है।

देवों की मानवकृति कल्पना में एक रहस्य है " देव - देव तभी बनते है। जब वे मानवरूप में आये (अवतारवाद) अन्यथा देव तो निर्गुण एवं निराकार हैं। इसी दार्शनिक दृष्टि के मर्म को समझने वाले प्राचीन आचार्यों ने देवों की मूर्ति रूप में कल्पना में उनको मानवों का रूप ही प्रदान नहीं किया वरन् मानवों की मनोभावनाओं और रागद्वेषों से भी उन्हें अक्रान्त दिखाया। (११)

मूर्ति कला को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं।

१- राजाश्रित

२- लोकाश्रित

राजाश्रित कला की विडम्बना है कि उस पर किसी विशेषाधिकार की छाप स्पष्ट रहती है । फलतः कई बार एक रसता की झलक मिलती है । लेकिन लोककला में व्यक्तिगत रूचि के फलस्वरूप विभिन्न दृष्टिकोणों का दिग्दर्शन होता है ।

जनपद जालौन की धार्मिक सहिष्णुता की झलक यहां से प्राप्त मूर्तियों में पूर्णतः प्रगट है । यहाँ लोककला से लेकर चिरसम्मत कला के दर्शन होते हैं । बुन्देलखण्डी भोजन की तरह चावल में कढ़ी के साथ घी भी, पापड़ , चटनी और अचार भी । जनपद जालौन में मूर्ति कला के समस्त रूप समन्वित रूप में प्राप्त है यद्यपि जनपद जालौन का अपना कोई स्कूल नहीं रहा है यथापि विभिन्न कलाकेन्द्रों के शिक्षक तथा शिक्षार्थियों ने यहाँ पर अपनी कला साधना के प्रमाण छोड़े हैं । समग्र भारत की भाँति यहाँ के कलाकरों ने भी अपने नाम की अपेक्षा अपने कार्य को अधिक महत्व देते हुए अनेकानेक सुन्दर प्रतिमायें गढ़ी है ।

यहाँ पर बौद्धधर्म एवं जैनधर्म की अपेक्षा शैव तथा वैष्णव धर्म की ही प्रधानता रही है ।

यहाँ जैन तथा बौद्ध प्रतिमायें भी प्राप्त हैं किन्तु संख्या में बहुत कम ।

विष्णु की विभिन्न मूर्तियाँ विभिन्न रूपों में यहाँ पर उपलब्ध है । विष्णु के द्विभुजी तथा चतुर्भुजी रूप की प्रचुरता है । चतुर्भुजी स्वरूप के कई रूप प्राप्त है अधोक्षज (१२) इनके हाथों में क्रमशः गदा शंख चक्र तथा पद्म है ।

त्रिविक्रम (१३) गदा चक्र, शंख, पदम् , केशव (१४)(१५) शंख चक्र, गदा, पध्म

विष्णु के अवतार रूपों में नृसिंह अवतार तथा वराह अवतारकी प्रतिमायें अन्य से बहुलता में प्राप्त है । विष्णु के वामनरूप सर्वाधिक प्रचुर रूप में उपलब्ध है । अवतारों के समन्वित रूप की मूर्तियाँ दृष्टव्य है । ये मूर्तियाँ यहाँ बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई में प्राप्त है।

शिव प्राचीनतम देव हैं । इसकी प्राचीनता के प्रमाण सिंधु सभ्यता से प्राप्त हैं । इस जनपद जालौन में शिव अपनी समग्रता के साथ विराजे हैं । यहाँ शिव के दोनों रूप १ लिंग विग्रह तथा

२- पुरूष विग्रह प्राप्त है । शिवलिंग पूजा उतनी ही प्राचीन है जितनी कि वृक्ष पूजा ।

अपराजित पृच्छा ग्रंथ में शिव तथा शक्ति दोनों को लिंग का प्रतीक माना गया है यह सृष्टि दोनों के संयोग से उत्पन्न हुई है ।

" सृष्ट्युदभवः सयोनिश्च शिवशक्त्या चराचरम् ।
शिवलिंगद्भवाशक्ति : शक्तिमाश्चं शिवस्तथा
उभयोरपि संयोगाच्छिवशक्त्मोश्चराचरम्। (१६)

जिसमें शिव को अर्द्ध निमीलित रूप में दिखाया है तथा स्मित सौम्य रूप की चरमता है । शिव के इन एकल रूपों में से कुछ में उन्हें त्रिनेत्रधारी भी दिखाया गया है।

इस जनपद में शक्ति पूजा भी परम्परागत रूप में विद्यमान है इसी कारण विभिन्न देवी प्रतिमायें भी यहाँ पर उपलब्ध है बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई में देवी सरस्वती की एक प्रतिमा है जिसमें उन्हें वीणा पाणिनी रूप में अंकित किया गया है । दुर्गा देवी की विभिन्न प्रतिमायें भी दर्शनीय व अलौकिक हैं । चूँकि मातृका प्रतिमायें देवताओं की शक्ति स्वरूपा हैं अतः उन्हें अपने देवताओं के अस्त्र शस्त्र व वाहन से सुसज्जित दिखाया जाता है । कई बार स्त्री मुख के स्थान पर वाहन मुखांकन भी दृष्टव्य है । कई बार उनके साथ शिशु का अंकन भी प्राप्त होता है जो कि उनके मातृत्व स्वरूप की पुष्टि करता है. इस प्रकार की प्रतिमा आम तौर पर जनपद के सभी बड़ी माता स्थानों पर दृष्टिगोचर है । इसी भाँति एक प्रतिमा बुन्देलखण्ड संग्रहालय में भी है।
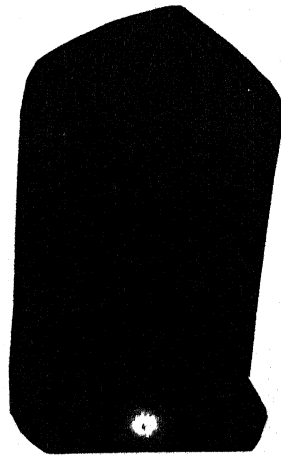
बुद्धि के देव गणेश की भी बड़ी महत्ता इस जनपद में है । परिणामस्वरूप यहाँ पर गणेश की -विभिन्न द्विभुजी , चतुर्भुजी तथा अष्टभुजी प्रतिमायें प्राप्त हैं जिनमें से कुछ शास्त्र सम्मत हैं तो कुछ मौलिक । एक प्रतिमा बुन्देलखण्ड संग्रहालय में है जिसमें गणेश का स्वभाविक अंकन दृष्टव्य है । वे एक हाथ से अपने मुख में लड्डु खा रहे हैं तथा एक हाथ उदरोवस्थित है । इस प्रतिमा में मानव तत्व का सफल आरोपण है । इसका काल नवीं शताब्दी के समकक्ष है तथा यह प्रतिमा रामेश्वरम् मन्दिर माधौगढ़ से आयी है । गणेश की अन्य प्रतिमाओं में मुख्य हैं शक्तिगणेश एवं नृत्य गणेश । कोंच तहसील के निकट गणेश मन्दिर में नृत्य गणेश की प्रतिमा प्रतिष्ठित है । बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई में एक नृत्य गणेश प्रतिमा उपलब्ध है जो कि [illegible]वीं शताब्दी की है । इस के साथ ही साथ मूँगा , पन्ना , मोती, मानिक, पुखराज, गोमेद, तथा हरे यशव , टाइगर स्टोन , तुर्मिलीन आदि की गणेश प्रतिमायें भी देखी जा सकती है ।

गतिमान देव सूर्य को यहाँ की लोककला में अच्छा खासा महत्व प्राप्त है बुन्देलखण्ड संग्रहालय में उपलब्ध सूर्य प्रतिमा इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है । यह मूर्ति चौदहवीं पन्द्रहवीं शताब्दी की है जिसमें सूर्य देव अपने चतुर्भुजी स्वरूप के साथ सात घोड़ों के रथ पर विराजमान हैं और उनके दायीं तथा वायीं ओर उनकी पत्नियों का अंकन है । सूर्यदेव का प्रभामण्डल अग्नि की लपटों से ज्योतित दिखलाया गया है ।

विभिन्न दिग्पाल , यम , कुबेर अग्नि आदि की भी मूर्तियाँ प्राप्त हैं । इनके अतिरिक्त विद्याधर , गण, यक्ष एवं नायिका मूर्तियाँ भी अलंकरण की दृष्टि से अपना विशिष्ट महत्व रखती हैं ।

व्याल आदि की मूर्तियों के प्रमाण भी उपलब्ध हैं जिनके गले पर रूढ़िगत आयलों का अंकन है । इस प्रकार की एक विशाल मूर्ति करनखेड़ा में है ।

भैरव देव की एक अत्यन्त सुन्दर प्रतिमा है जिसमें उनके केशों को गान्धार कला के प्रमाण स्वरूप गढ़ा गया है । यह द्विभुजीय आकृति है जिसके हाथ में खड्ग है व गले में मुण्डमाल है । यह प्रतिमा कंजौसा में देखी जा सकती है । एक अन्य भैरव प्रतिमा सरावन ग्राम में भी दृष्टव्य है जो कि अष्टभुजी होते हुए पद्मासन मुद्रा में है । गले में मुण्डमाल एवं शीष पर सुन्दर पगड़ी मुकुट सुशोभित है ।

एक सम्वाहक का अपाहिज होना भी कोंच में देखा जा सकता है । अग्नि जो कि वैदिक काल के प्रमुख देवताओं में से थे , मानव एवं मानवेत्तर के मध्य एक कड़ी थे । आज कोंच तहसील प्रांगण में वे हां अग्नि देव अपाहिज से खड़े हैं । स्वीकारणीय है कि प्रतिमा अपूर्ण होने के कारण प्राण प्रतिष्ठा योग्य नहीं है किन्तु अपूर्ण होते हुए भी यह प्रतिमा अपने में सम्पूर्णता समेटती एक चबूतरे के सहारे टिकी है । यह चतुर्भुजी प्रतिमा मुकुट धारी है । सम्पूर्ण आभूषणों से युक्त है । लम्बी स्मश्रु युक्त है और अंगद पर अग्नि प्रज्ञला का स्पष्ट अंकन है । प्रतिमा के दोनों ओर स्त्री अंकन भी है । इस प्रकार की एक प्रतिमा खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर की वाह्यभित्ती पर अंकित है।

जैन प्रतिमाये -

इस जनपद में जैन प्रतिमायें अल्प हैं परन्तु फिरभी यहाँ अत्यन्त प्राचीन जैन प्रतिमाओं की उपस्थिति है ।यह जैन ध-र्मावलम्बियों की प्राचीन काल से उपस्थिति का ध्यान हमें कराती हैं । वर्तमान में करनखेड़ा मन्दिर के बाहर आराधना मण्डप में एक शिलाखण्ड पर एक स्थानक एवं नग्न मुद्रा में अंकित पुरूष आकृति है जिसके हाथों पैरों पर वेल चढ़ती हुई अंकित है । इस प्रतिमा के ऊपर गजांकन तथा बाजू में स्त्रीअंकन भी दृष्टव्य है । अस्तु यह बाहुबली की प्रतिमा प्रतीत होती है जोकि जैन सम्प्रदाय के आदि प्रणेता थे । इस

प्रतिमा का काल पाँचवीं छटवीं शताब्दी होगा । इसके साथ ही रूराजत्ती ग्राम में एक अत्यन्त सुन्दर जैन मन्दिर है जो कि लगभग चारसौ पाँचसौ वर्ष प्राचीन है इस मन्दिर में महावीर स्वामी की काले पत्थर की एक प्रतिमा है जोकि लगभग ७० सेमी० ऊँची तथा ५५ सेमी० चौड़ी है और उसकी पीठिका में सम्वत् १६५० अंकित है । इसी भाँति यहाँ पर एक श्वेत संगमरमर की मूर्ति भी प्रतिष्ठित है जिसमें चिन्ह के स्थान पर सर्प बना है जो कि भगवान पार्श्वनाथ जी की मूर्ति को स्पष्ट करता है । इनकी पीठिका पर भी सम्वत १५४७ अंकित है । इसी के साथ साथ यहाँ पर एक पीतल की मूर्ति भी है जिस पर सम्वत १५२५ अंकित है यह मूर्ति गंगा जमुनी मूर्ति है जिसमें आँखें एवं छाती पर कमल का अलंकरण चाँदी से हुआ है । इस मूर्ति में शान्तिनाथ जी के दोनों ओर एक एक स्त्री मूर्ति व इस स्त्री मूर्ति के बगल में चँवर डुलाती सेविका मूर्ति का भी अंकन है ।

जैन देवी पद्मावती की मूर्ति भी रूरा जत्ती मन्दिर में प्रतिष्ठित है जो कि श्वेत संगमरमर द्वारा निर्मित है तथा जिसके ऊपर शेषनाग का छत्र अंकित है । यह मूति अत्यन्त सुन्दर है । यह मूर्ति ३० सेमी० ऊँची तथा २२ सेमी० चौड़ी है ।

कालपी स्थित दिगम्बर जैन मन्दिर मे भी कुछ विशिष्ट मूर्तियाँ उपलब्ध हैं इनमें मुख्य मूर्ति भगवान पार्श्वनाथ एवं शान्तिनाथ की हैं । इस मन्दिर में कुछ धात्विक प्रतिमायें भी हैं जिनमें से भगवान ऋषभ नाथ की ध्यानस्थ मुद्रा वाली मूर्ति अत्यन्त दुर्लभ एवं मनमोहक है । इसके पार्श्व में सम्वत १३४७ अंकित है ।

इन सभी मूर्तियों की उपस्थिति से यह स्पष्ट रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह जनपद मूर्तिकला के क्षेत्र मेंअपना अग्रणी स्थान रखता है । यहाँ पर मूर्तिकारों को पूरा पूरा सम्मान मिलता था । मूर्तिकला के लिए कालपी स्थित पाहूलाल का मन्दिर एक ऐसा उदाहरण है जिसके विषय में यह कहा जा सकता है यह मन्दिर मूर्तियों का एक अनुपम संग्रहालय है । इसमें दशावतार की दसों मूर्तियाँ अलग अलग हैं । इसके साथ साथ ग्रहों के स्वामियों की मूर्तियाँ जैसे सूर्य चन्द्र आदि भी पृथक पृथक स्थापित हैं ।

मूर्ति कला का शनै शनै आकर्षण बढ़ता गया और आज यही मूर्तियाँ भाव के भावों से अभिसिंचित होकर हमारी आस्था के आधारों पर दृढ़ रूप में स्थित हैं । ये मूर्तिया हमारे लिए केवल परम्परागत पूजा का माध्यम ही नहीं हैं वरन हमारी प्रेम एवं प्राचीन आर्य संस्कृति का द्योतक भी हैं ।

संदर्भ -

१- विष्णु पुराण की भूमिका - एच०एच०विल्सन - पृष्ठ संख्या २

२- वैदिक माईथोलोजी - मैकड़ानेल - पृष्ठ संख्या १७-१८

३- ओरिजिनल संस्कृत टैक्सट वाल्यूम

५ - डा० वोल्लेनसन मूर - पृष्ठ संख्या ४५३ -४५४

४- ऋग्वेद - ३/४/५

५- " - ३/४/५

६- " - ७/८/१६

७- " - १/२४/१३

८- " - ८/६६/१२

६- महाभाष्य अनुवाद - बैलेन्टाईन - पृष्ठ संख्या २७

१०- समरांगण सूत्र धार - ४०/१३

११- भारतीय स्थापत्य - डा० डी०एन० शुक्ल, पृष्ठ संख्या ४१५

१२- रूपमंडन - अ० ३६/२१-२८

१३- " "

१४- " "

१५- अग्नि पुराण - ॐ रूपः केशवः, पद्म शंख गदाधरः - ४६/१

१६- अपराजित पृच्छा - १६६/६१-६२

चित्रकला

मानव मन न कोई समझ पाया है और न ही कोई जान पाया है । अपने मन को समझने और जानने के लिए उसने अपने आपको कई तरीकों से अभिव्यक्त किया , औरउसकी यही अभिव्यक्ति कला कहलाई । मानव मन की यह अभिव्यक्ति जब स्वरों से सजी तो संगीत बन गयी । शारीरिक भावभंगिमाओं से सजी तो नृत्य बन गयी । छेनी हथौड़ा व कल्पनाओं के मिश्रण से वास्तुकला बनी एवं तूलिका व रंगों के संयोजन से सजी अभिव्यक्ति चित्रकला बन गयी और शनै शनै यह चित्रकला सभी कलाओं में सर्वोच्च हो गयी ।

"यथा सुमेरूः प्रवरो नगानां यथाण्ड जानां गरूणः प्रधानः
यथा नराणां प्रवरः क्षितीशस्तथा कलानामिह चित्रकल्पः ॥"

अर्थात् जिस प्रकार से सुमेरू पर्वत पर्वतों में श्रेष्ठ है, जिस प्रकार गरूण सभी पक्षियों में श्रेष्ठ है, जिस प्रकार नारायण सभी राजाओं में श्रेष्ठ है उसी प्रकार चित्रकला भी सभी कलाओं में श्रेष्ठ है (1)

श्रेष्ठ चित्रकला के सभी आयामों की झलक हमें इस जालौन जनपद की चित्र कला में दिग्दर्शित होते हैं ।

चित्रकला प्राचीनतम प्रमाणित कला है जब वेदों का अस्तित्व नहीं था , चित्रकला तब भी थी । प्रागैतिहासिक काल के शैलगुहा चित्र इस बात की साक्ष्य हैं । इसके अतिरिक्त पुरातात्विक उत्खनन में प्राप्त मृण पात्रों से भी चित्रकला के उदाहरण प्राप्त हुए हैं । चित्रकला में प्रयोग के लिए मुख्य माध्यम भित्ती पट (वस्त्) पत्र (कागज) है । इसके अतिरिक्त हाथी दांत , कांच , चर्म, तथा काष्ट पट पर भी चित्रांकन किया जाता है । अपने जनपद जालौन में चित्रकला का मुख्य माध्यम भित्ती, कागज , ही है परन्तु यत्र तत्र काँच, काष्ठ तथा हाथी दांत की पट्टिका पर भी चित्रांकन देखने को मिलता है । सौन्दर्य यद्यपि अस्थिर माना जाता रहा है । फिर भी उसे चिरस्थायी बनाने की इच्छा सभी रखते हैं । भित्ति चित्र की प्रधानता इसी प्रकार के प्रयत्न का उदाहरण है । जालौन जनपद बुन्देलखण्ड का एक भाग है और बुन्देलखण्ड की कला पर विभिन्न कलाओं का प्रभाव है । जिसमें राजस्थान प्रमुख है । कुमारस्वामी ने तो बुन्देलखण्डी कला को राजपूत शैली के अन्तर्गत ही माना है ।

" Rajput painting is the painting of rajputana and Bundelkhand and the Punjab , harayana ." (2)

कुमारस्वामी का उपर्युक्त मत बिल्कुल स्वीकार्य नहीं है। बुन्देली चित्रकला पर मराठी शैली, मुगल शैली आदि का भी प्रभाव नकारा नहीं जा सकता। इन प्रभावों का अंकन उपलब्ध चित्रों में विशेष तौर से देखा जा सकता है। यहाँ के चित्रों में एक ओर प्रकृति पूर्ण रूप से स्फुरित है, वहीं दूसरी ओर रीति, नीति और प्रीति को भी अपने आँचल में समेटे है। इस जनपद जालौन के चित्रकला की शैली भी उस हीरे के समान है। जिसपर अबतक किसी जौहरी की दृष्टि नहीं पड़ी। जनपद जालौन की बुन्देली चित्र कला शैली बंधन रहित होकर एक स्वतंत्र मौलिक कला शैली है। जिसका मूल आधार लोक कला है। जिस प्रकार से मधुमक्खी न जाने किन-किन फूलों से रस लाती है, किन्तु जब वह शहद बनता है तो उसका मौलिक उत्पाद होता है। स्वाद होता है और वह अद्वितीय होता है। उसी प्रकार ऐसी ही मधुर मनोहर हृदयग्राही और अनूठी है यहाँ की चित्रकला।

इस जनपद की चित्रकला की निम्नवत विशेषतायें - प्रत्यक्ष में आयीं हैं -

१- एकचश्म चेहरे

२- चेहरे पर गलमुच्छों का अंकन।

३- गहरे चटकीले रंगों का प्रयोग।

४- प्राकृतिक रंग यथा हल्दी, चंदन, चूना, चूना हल्दी मिश्रित लाल रंग, सिन्दूर नील आदि।

५- स्थापत्य की चित्रकारी में भवनों का अंकन।

६- विरोधी रंगों का संयोजित प्रयोग।

७- धार्मिक अंकन सर्वाधिक।

८- लौकिक जीवन को धर्म से जोड़ने का प्रयास करना।

९- साहित्यधारी चित्रों का अंकन।

१०- आश्रयदाताओं के व्यक्तिगत चित्र।

११- घरेलू जीवन के क्रम का चित्रण।

१२- कथानक अंकन। आदि

यहाँ की चित्रकला को मुख्यतः दो भागों में विभाजित कर उसका करना सुगम होगा।

१- धार्मिक चित्रकला।

२- धर्मेत्तर चित्रकला।

१- धार्मिक चित्रकला :-

धर्म समाज में सबसे सुदृढ़ भित्ति है जिसे पौराणिक कथाओं , स्वतंत्र देवचित्र, मंत्र चित्र, तंत्र चित्र आदि के रंगों से आस्था और विश्वास की तूलिका के माध्यम से सुसज्जित किया है , और जनजीवन इससे प्रभावित होकर उसे अपने जीवन में उतारने का प्रयास करता है । धार्मिक चित्रकला के प्रमुख भेद निम्न भाँति हो सकते हैं -

१- पुराख्यान आधारित

२- स्वतंत्र देव आकृतियाँ

३- ज्योतिषाधारित चित्रावली

४- तांत्रिक चित्रावली

५ मंत्र चित्रावली

६-परम्परागत एवं पराम्परात्मक पूज्य चित्रावली ।

१- पुराख्यान आधारित चित्रावली :- पुराण , महाभारत, उपनिषद्, रामायण, श्रीमद् भागवत गीता की कथाओं पर आधारित चित्र ही इस शीर्षक के अन्तर्गत आते हैं । अतः यह चित्रांकन बहुरूप में पाया जाता है । जोकि यहाँ के लोगो की धार्मिक आस्था को दर्शाता है । यहाँ पर उपलब्ध सर्वाधिक दृष्यांकन कृष्ण एवं राम की कथाओं पर आधारित है । बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई में लगभग २० लघु चित्र रामकथा पर आधारित है । जिन पर लंका काण्ड , एवं सुन्दर काण्ड का अंकन है ।

रामचरित मानस में लंका काण्ड का चित्र जिसका -पंजीयन सं० जे०एल०एन०यू०पी० /१४३५ में लंका काण्ड के दृश्याकंन में वाणों की बारिश के बीच रावण के दसों सिर भूमि पर गिरे हुए है । प्रत्येक सिर पर स्वर्ण मुकुट है । कानों में कर्णाभूषण सुशोभित हो रहे हैं तथा रावण के शरीर को भी भूमि पर अवस्थित दिखाया गया है । रावण के गिरे हुए मुखों पर गलमुच्छों का अंकन है । राम रथ पर रथारूढ़ , हाथ में धनुष लिये हैं अंकित किया गया है । इस चित्र में चेहरे एक चश्म है । इन चित्रों में भील तथा वानरों का भी अंकन है । रंगों का सुन्दर संयोजन है और यह अंकन रामचरित मानस में निम्न चौपाई के अनुरूप किया गया है -

" ले सर बाहु चले नाराचा । सिर भुज हीन रूण्ड महि नाचा ।।

आभूषण मुख ' आदि को रंगने में स्वर्ण का ही प्रयोग किया गया है । इसी श्रंखला का एक अन्य चित्र जिसका पंजीयन संख्या जे०एल०एन०यू०पी०/१४१७ है जिसमें मेघनाथ द्वारा हनुमान को ब्रहम्पाश द्वारा बंधक बनाये जाने का चित्रांकन किया गया है । इस चित्र में सोने की लंका को पीले रंग से चित्रित किया गया है । रावण के २० भुजा तथा १० मुख दिखाये गये हैं । इसके अतिरिक्त ७ पुरूष आकृतियों का अंकन किया गया है । परकोटें के चारों तरफ हरे भरे वातावरण का चित्रण है।
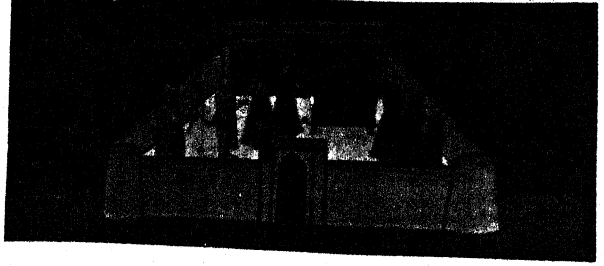
ये उपलब्ध चित्र लगभग २०० वर्ष प्राचीन है तथा रामचरित मानस के पृष्ठ है । जिनके कि पिछले भाग में रामचरितमानष की चौपाई इत्यादि काली स्याही द्वारा लिखी है । कुकरगाँव स्थित रोपण गुरू के मंदिर में ब्रेकेटेस पर महात्माओं के चित्र , स्वतंत्र, देवाकृतियों के चित्रों के साथ-साथ एक विशेष चित्रावली का भी अंकन है , जोकि गरूण पुराण पर आधारित है । इसमें नरकीय यातनाओं का अंकन है । जैसे व्यक्ति को सर्पदंश से कटवाना , यमदूतों द्वारा आरे से एक व्यक्ति के सिर को काटा जाना । लाल रूधिर की नदी में तैरना आदि । यह चित्रांकन नरक की भयावकता को आभासित करता है तथा समाज में रहते हुए मनुष्य को इस बात के लिए प्रेरित करता है कि वह सामाजिक बुराईयों को तिलांजलि देकर जीवन का परम उद्देश्य ईश्वर प्राप्ति की ओर उन्मुख हो । इस मंदिर की भित्ती में रामायण की कथा, हनुमान का पर्वत उठाये हुए अंकन रामसीता हनुमान सहित सिंहासनासीन विशेष रूप से दृष्टव्य है । इन आकृतियों में मराठी एवं राजस्थानी शैली दोनों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । इनकी वेशभूषाकेअतिरिक्त पूर्ण अंकन बुन्देली शैली का है ।

२- स्वतंत्र देवाकृतियाँ - प्रत्येक साध्य के लिए साधना आवश्यक है । साध्य अगोचर हो तो तूलिका व रंगरूपी माध्यम से साधना के साध्य को प्राकाट्य रूप में प्राप्त किया जा सकता है । अपने मनभावन इच्छानुसार उसे नये रूप में ढाला जा सकता है और नये आयाम दिये जा सकते हैं । मनुष्य ने परमात्मा एवं आत्मा की अवधारणा को स्वीकार किया है । परा और प्राकृतिक शक्तियों को मानवीकृत कर दिया और विशेषता के लिए विशेषण जोड़ दिया । जैसे गजमुखी, लम्बोदर, चतुर्भुज, पीताम्बर दसकंधर आदि । इस जनपद जालौन की चित्रकला का यह विभेद सम्पूर्णता के साथ दृष्टिगोचर होता है । यहाँ पर राम, कृष्ण, विष्णु,

शिव शक्तिगणेश , सूर्य, चन्द्र, आदि सभी देवताओं का अंकन प्राप्त है । यह सभी चित्र रोपण गुरू मंदिर कुकरगाँव के प्रदक्षिणा पथ की दीवारों पर देखे जा सकते हैं । इसके साथ ही साथ विध्नविनायक गणेश, भगवान आशुतोष के चित्रों के साथ साथ पशुपक्षियों के चित्र आदि कन्जौसा (जगम्मनपुर) स्थित छतरियों में भी देखे जा सकते हैं ।

३-ज्योतिषाधारित चित्रावली - मानव के अन्वेषी मन ने यह कभी भी नहीं स्वीकार किया कि प्रकृति का कोई भी रहस्य उसके संज्ञान से अछूता रह जाये । रहस्य के ऊपर से एक -एक पर्दा खोलने की इच्छा उसे अन्तरिक्ष में ले गयी तथा ग्रहों और नक्षत्रों तक सदैव की भाँति वह अपने ज्ञान के वर्धन अभियान में जुटा रहा और अन्तरिक्षीय ग्रह नक्षत्रों के ज्ञान ने ज्योतिषी मामले को सुलझाने का कार्य और असुलझे रहस्य को सुलझाते हुए मूर्ति रूप देने का प्रयास किया तथा यही प्रयास ज्योतिषाधारित चित्रावली के रूप में प्रकट हुआ। ज्योतिष चित्र अधिकाशंतः ज्योतिषियों द्वारा बनाये गये जोकि जन्मकुन्डली , पत्रा आदि से प्राप्त हुए है । इस चित्रावली के अंकन में राशियों तथा ग्रहों एवं उनके स्वामियों आदि का अंकन के साथ साथ बेलबूटों तथा विभिन्न प्रकार के हासियों **(Border)** का अंकन भी देखने को मिलता है । इस ज्योतिष विद्या में अपने देश का आदि काल से ही प्रभुत्व रहा है तथा इससे सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के चित्र भी यहाँ बहुतायत में प्राप्त है । ज्योतिषाधारित चित्रों में मुख्य रूप से रंगने के लिए हल्दी , चूना, चूनाहल्दी, मिश्रित लाल रंग, हरी पत्तियों से बना हरा रंग का प्रयोग मिलता है । जन्मकुन्डली के दोनों ओर हाँसिये बनाये जाते हैं और तत्पश्चात् राशि के प्रभावों का वर्णन करते हुए विभिन्न राशियों जैसे :- धनु, मीन, सिंह, मेष, कुम्भ, तुला, मिथुन, वृश्चिक, कन्या, वृष, मकर, आदि का अंकन किया जाता है । कुन्डली के प्रारम्भ में सर्वप्रथम विध्नविनायक गणपति का चित्र अंकित किया जाता है और तत्पश्चात् कुण्डली लेखन प्रारम्भ किया जाता है । बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई में उपलब्ध धनु राशि का चित्रांकन अति विशिष्ट है । जिसमें अर्ध अहोभाग पुरूष का है तथा सलंग्न अग्रद्विपाद गौपाद से मिलता है । पश्चद्विपाद एवं पुच्छ अश्व के पादों से मिलती है । ऊर्ध्व अधोभाग में पुरूष के दोनों हाथों में धनुष प्रत्यंचा चढ़ाये हुए प्रदर्शित है । धन स्वरूप पुरूष के दाढ़ी एवं पूँछ का भी विशिष्ट अंकन है । ग्रीवा तथा वक्ष में सुन्दर हार तथा सिर पर पगड़ी का अंकन है । इसी प्रकार कुंभांकन में उसे पुरूष राशि दर्शाते हुए पुरूष की आकृति में दोनों कंधों पर कुम्भों का अंकन है। तुला में तो पुरूष राशि स्वीकार करते हुए पुरूष के हाथ में एक तुला पकड़ा दी गयी है । कन्या राशि का अंकन भी अति विशिष्ट है इसमें एक नाव में एक कन्या का अंकन है । नाव के अग्र भाग में एक कुम्भ भी दृष्टव्य है । सम्भवतः कन्या को शुभाकनों में स्वीकारते हुए नदी में नाव

की स्थिति भी दृष्टव्य है । इस अंकन के पीछे एक यह भी विचार हो सकता है कि कन्या को जल के समान पवित्र माना गया है । जिससे वह समाज के अनुरूप अपने आपको ढाल सके तथा असीमित जल जिसको कि अजर अमर ब्रहम का स्वरूप माना जाता है के सानिध्य में आने पर उसके साथ एकाकार हो जाने का लक्षण भी प्रदर्शित करता है ।

४- तांत्रिक चित्रावली :- भगवान शंकर के डमरू से उद्भव तंत्र का प्रचलन गुरू गोरखनाथ और मत्सेन्द्रनाथ के समय में हुआ था ।

तंत्र में प्रयुक्त विभिन्न अपार अथवा शब्दों उदाहरणार्थ ॐ ह्रीं क्लीं , इत्यादि का विशिष्ट रूप से अंकन करने में जो चित्रावली हमारे सामने आती है वह तांत्रिक चित्रावली की श्रेणी में आती है । इस प्रकार के बहुत से तांत्रिक चित्र बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई में उपलब्ध है । तांत्रिक चित्रावली की श्रेणी में वह चित्र भी आते हैं जिसमें पशुओं पक्षियों आदि की आकृतियों को स्त्रियों की आकृतियों से पूरित कर बनाया जाता है । रोपण गुरू मंदिर कुकरगाँव में एक गज चित्र भित्ती पर अंकित है जिसे स्त्री आकृतियों विभिन्न भाव- भंगिमाओं के माध्यम से पूर्ण किया है ।

५- मन्त्र चित्र :- शब्दों के आरोह अवरोह को मंत्र कहा जाता है । उसी का चित्रण मंत्र चित्र के अन्तर्गत आता है । मंत्र की विशेष प्रकार से लिखाई साथ ही उस यंत्र मंत्र के अधिकारी का चित्रण मंत्र चित्र के अन्तर्गत आते हैं । क्योंकि **Calligraphy** भी चित्रकला का एक अंग है । इस चित्र का प्रतीकात्मक अंकन भी है । बुन्देलखण्ड संग्रहालय में इस प्रकार के विभिन्न अंकन दृष्टव्य हैं । जिनमें हनुमत यंत्र, गणपति यंत्र आदि विशिष्ट है इन मंत्रों की सिद्धि हो जाने पर ये मंत्र यंत्र का रूप धारण कर लेते हैं । तथापि यंत्र शब्द सही रूप से उस उपकरण के लिए प्रयुक्त होता है जिनमें रखकर ये यंत्र शरीर में वाँध लिये जाते हैं । मंत्र में शब्द और अंक दोनों का ही प्रयोग होता है । निम्न तिजोरी मंत्र चित्र है ।

०	७१	७१
०	७१	७१
०	७१	७१
०	००	००

६- परम्परागत पूज्य अकन :- बुन्देली चित्र कला शैली का आधार भी लोक कला है जोकि परम्पराओं से अनुप्राणित है -

"महाजनों येन गताः , पंथा "

अर्थात् महान लोग जिस पथ पर चलते हैं उसी पथ का अनुकरण करना चाहिये । यहीं बुन्देली प्रथा है । सभी बड़े पूर्वज आदरणीय है । उन्होंने जो किया वह राष्ट्र हित में, समाज हित में, धर्म हित में,तथा वहीं करें,यहीं आकांक्षा परम्परा बन गयी । इन परम्पराआ का पालन आज भी परोक्ष रूप में मानसिक एवं सामाजिक रूप में हो रहा है ।

परम्परागत पूज्य चित्र के माध्यम कागज , और भित्ति है । इन पर आलेखन अनेक प्रकार से होता है । विभिन्न धार्मिक पर्व दीपावली करवाचौथ, हरछठ आदि पर विभिन्न प्रकार के चित्र अंकित किये जाते हैं । जन्माष्टमी की पूजा हेतु निर्मित एक विशिष्ट प्रकार का पट भी प्रयोग में लाया जाता है जिसमें यशोदानन्दन भगवान कृष्ण के बाल क्रिया कलापों का अंकन होता है । लगभग १५० वर्ष प्राचीन एक इसी प्रकार के कृष्ण के बाल स्वरूप की क्रियाओं को प्रदर्शित करता हुआ पट बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई में संग्रहीत है जो पूर्णरूप से लोक परम्परा पर आधारित है । इसके वायीं ओर देवकी और कृष्ण है । बीच में शेषनाग की छाया में कृष्ण को ले जाते वासुदेव तत्पश्चात् यशोदा तथा लेटे हुए कृष्ण एवं कंस वध इत्यादि का अंकन है । सभी आकृतियों लोकशैली में अंकित है ।

इसके अतिरिक्त बुन्देली कला का दूसरा वर्गीकरण अपने में कई विभेद छुपाये है।

१- व्यक्ति चित्र ।

२- दैनिकावलोकन चित्र

३- प्राकृतिक चित्र ।

४- भावात्मक चित्र ।

५- ज्यामितीय अंकन ।

५ व्यक्तिक चित्रावली ।

१- व्यक्ति चित्र - इनमें व्यक्ति विशेष का चित्रांकन किया जाता है । ये चित्र समाज के विशिष्ट व्यक्तियों के होते हैं । अधिकांशतः राजा तथा राज्यपरिवारों के अथवा जमीदारों आदि के । बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई में एक चित्र है जिसका पंजीयन क्रमांक जे०एल०एन०/यू०पी०/१६६०है । इसमें एक त्रिपुण्डधारी, खड्गधारी जमीदार का अंकन है । यह चित्र बैठी हुई मुद्रा का है । सिर पर पगड़ी तथा भेष में धोती कुर्ता है । ये अंकन लगभग १०० वर्ष प्राचीन है ।

इसकेअतिरिक्त एक दूसरा अंकन भी है, जिसकी पंजीयन मं० है जे० एल० एन० / यू० पी० / १४६१ है इसमें एक राजसी वेशभूषा से युक्त पुरूष हिरन को केला खिलाते प्रदर्शित है । उस आकृति के हाथ में सम्भवतः केले का गुच्छा है । नीचे एक हिरन का अंकन है काले रंग से चित्रित इस चित्र में पुरूषाकृति के पैरों में विशेष प्रकार के फिचहा जूतो का अंकन है । पुरूषाकृति के गाल पर गल मुच्छों का अंकन है । इसमें वेशभूपा विशेष प्रकार की है । इसके अतिरिक्त एक स्त्री आकृति का अंकन भा है जो कि एक कागज पत्र पर अंकित है इस चित्र के पास तात्यामाटे वेणुवाई शब्द अंकित है । सुगठित तथा सौम्य आकृति है । इसके हाथ में फूल है । वेशभूषा तथा सज्ञा मराठी शैली की है । स्त्री का पार्श्वाकंन है । उपरोक्त सभी चित्र कागज पर चित्रांकित्न है ।

२- दैनिकावलोकन चित्रावली - कुकरगाँव रोपणगुरू के मंदिर में दैनिक जीवन मे सम्बन्धित विभिन्न क्रिया कलापों का अंकन दृष्टव्य है । प्रातःकालीन जागरण, स्नानादि , भोजन पकाना, गृहण करना, गौदुग्ध प्राप्ति करना , पूजा तथा योग आदि का चित्रांकन है । योग के तो ६४ आसनों का अंकन है । यहाँ इस यौगिक चित्रांकन में साधु के साथ चिमटा लोटा तथा गिलास का भी अंकन है । साधु अथवा योगी कौपीन धारी है । इसके अतिरिक्त अधिकांश सामाजिक पेशों से सम्बन्धित अंकन है यथा राजगीर ईटों को चुन रहा है, लोहार लोहे की भट्ठी में लोहा गला रहै है , तो बढ़ई रथ का पहिया गढ़ रहा है आदि इन चित्रों से चितेरों के व्यवहारिक ज्ञान की झलक मिलती है ।

३- प्राकृतिक चित्रण :- यहाँ के चित्रों में प्राकृतिक दृश्यों का अंकन होता है । केशवदास के बारहमासा पर बने कई चित्र उरई में अयोध्याप्रसाद गुप्त के निजी संग्रह में है । चैत, वैसाख, पूस, अगहन, क्वाँर, कार्तिक, सावन , भादौ आदि के चित्र । इन का अंकन केशवदास की कवितानुसार किया गया है । इन चित्रों में माह के रूप को वर्णित करने वाली कविता है और उसके नीचे चित्रों को दो या तीन भागों में दिखाया गया है । इन चित्रों का चित्रांकन कोंच निवासी मंडन मिश्र द्वारा किया गया है । इन चित्रों पर उनके पौत्र श्री लक्ष्मण दास की मुहर लगी है । इन चित्रों में बुन्देली शैली की सम्पूर्ण विशेषतायें मौजूद हैं । भवनों का सम्मुख दृश्य । व्यक्तियों का पार्श्व अंकन । गहरे रंगों का प्रयोग । विरोधी रंगों का संयोजन । गलमुच्छ फिचहा जूतों आदि का अंकन अलभ्य है । एक चित्र में आषाढ़ का चित्रण करते हुए अंकित है -

अथ आषाढ़ - और इसके पश्चात् कवित्त लिखा हैं । फिर इसके बाद के अंकन में बायीं ओर एक साधु का अंकन है । दूसरे दृश्य में एक स्त्री तथा पुरूष का अंकन है । पुरूष के हाथ में फूल तथा एक हाथ में भाला है । स्त्री और पुरूष दोनों ही राजसी वेशभूषा में । पृष्ठभाग पर भवनों का सम्मुख दृश्य है ।

४- भावात्मक अंकन :- मनुष्य का जीवन ही भावों की अभिव्यक्ति है । ये अभिव्यक्तियाँ विभिन्न रसों में व्यक्त होती है । अतः रसों का आधार तो भाव ही है । विभिन्न भावों पर आधारित चित्रों को इस प्रकार के चित्रों में रखा जा सकता है । इस श्रृंखला में राग-रागनियों के चित्र बनाये गये हैं । छैः राग रागनियों के चित्रों का अंकन गुप्त जी के निजी संग्रह में हैं । जिन में इन रागों के गाये जाने के समय का अंकन तथा रागों का मानवीकरण है । रागों के नाम है राग आसावरी , केदारराग, डाठाकारी रागिनी, रामकली रागिनी, ललितराग आदि ।

५- ज्यामितीय अंकन :- यह अंकन यहाँ की कई छतरियों में मंदिरों में गढ़ियों में देखने को मिलता है । इनमें बाबई वालों का मन्दिर जालौन तथा रोपण गुरू कुकरगाँव के मंदिरों में बहुतायत में उपलब्ध है । इसके अतिरिक्त पूजा हेतु बनाए जाने वाले विभिन्न चक्रों के किनारे भी ज्यामितीय अलंकरणों से सुसज्जित रहते हैं । जालौन का बम्बई वाला मंदिर का अलंकरण ततिया भाई नामक कलाकार ने किया है । गोपालपुरा की गढ़ी एवं अन्य धर्मेत्तर भवन भी इसके उदाहरण है ।

६- कटवर्क चित्रावली - चित्रकला के सभी वर्गों के अतिरिक्त यहाँ पर चित्रकला का विशेष प्रकार उपलब्ध हुआ है इस प्रकार को स्टेन्सिल प्रकार कहा जा सकता है । इस प्रकार के चित्रों में पहले कागज पर आकृति बनाकर उन्हें बारीकी से किसी धारवाली वस्तु द्वारा काटा जाता है । इन चित्रांकनों में अत्यधिक कुशलता और एकाग्रता की आवश्यकता रहती है । इस प्रकार के कुछ चित्र गुप्त जी के संग्रह में है जिनमें कुछ निम्नानुसार है ।

१- एक पुरूष आकृति शंख बजाते हुए ।

२- एक स्त्री जो कि ब्राड पैटर्न का लहंगा पहने हुए है । तथा बड़ी सी वेसर नाक में धारण किये हैं ।

३-एक अन्य स्त्री काँछदार साड़ी पहने है तथा हाथ में थाली है जिसमें पाँच ज्योति प्रज्ज्वलित है । यह मराठी शैली के प्रभाव से युक्त है ।

इन चित्रों में काले रंग का प्रयोग किया गया है । इन चित्रों के कलाकार है मुनीम मन्ना धूसर जो कि जालौन के रहने वाले थे । यूँ ही कला और कल्पनायें तो ऐसी महान धारायें हैं जिनका समागम सागर अंतहीन है जालौन की चित्रकला एक ऐसा अनंत सागर जिसके अंदर कलाकृतियों का अकूत खजाना है जिनमें न जाने कितना अनजानाऔर विस्तृत करने वाला ह्रदयस्पर्शी तत्व समाहित है ।

संदर्भ

१- विष्णु धर्मेत्तर पुराण ४३- ३६

२- हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एंड इन्डोनेशिया	ले०ए०के० कुमार स्वामी

अन्य

किसी भी स्थान के पुरातात्विक व ऐतिहासिक विश्लेपण हेतु पुरावशेषों का विशेष योगदान होता हैं ।इन पुरावशेषों के माध्यम से इतिहास के काल निर्धारण तथा तत्कालीन समाज की व्यवस्थाओं पर स्पष्ट प्रकाश डाला जा सकता हैं तथा निश्चयात्मक रुप से किसी निर्णय पर पहुँचा जा सकता हैं । इसी कारण इस जनपद जालौन के इतिहास में पुरावशेषों का अतिविशिष्ट महत्व है । खोज एंव उपलब्ध पुरावशेषों का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत हैं ।

अ - तार्म उपकरण -

गत वर्ष में उरई के महावीर पुरा नामक मुहल्ले में एक मकान की नींव की खुदाई के समय ताम्र उपकरण एवं ताम्र का एक पिण्ड प्राप्त हुआ हैं । ताम्र उपकरणों में दो हैन्डेक्स व एक गोल पहियानुमा आकृति प्राप्त हुयी है । दोनों हेन्डेक्स बनावट की दृष्टि मे भिन्न भिन्न समय के प्रतीक होते हैं । एक हेन्डेक्स की बनावट ज्यादा साफ व अनुपातिक हैं तथा दूसरा हैन्डेक्स न तो उतना साफ हैं और न ही अनुपातिक । जहाँ तक इन ताम्र उपकरणों के काल का प्रश्न हैं । इनमें से एक हैन्डेक्स ताम्र युग अर्थात ईसा पूर्व ६००० हजार वर्षों से ईसा पूर्व २०००० हजार वर्षों के मध्य का कहा जा सकता हैं । दूसरा हैन्डेक्स जो कि अनुपातिक दृष्टि से सुन्दर व साफ हैं । उसे हड़प्पा कालीन सभ्यता अर्थात ईसापूर्व ४००० वर्ष के समकक्ष अथवा कायथ (मालवा) संस्कृति जिसका काल निर्धारण ईसापूर्व २२०० वर्ष हुआ हैं के समकक्ष रखा जा सकता हैं । ताम्र का गोल पहिया शायद हैन्डेक्स बनाने की प्रक्रिया में अधूरा रह गया होगा तथा ताम्र पिण्ड जो प्राप्त हुआ हैं उससे यह सहज अनुमान लगाया जा सकता हैं कि यहाँ पर ताम्र उपकरणों के बनाने की कार्यशाला रही होगी । इन ताम्र उपकरणों की प्राप्ति से इस जालौन जनपद के प्राचीन इतिहास पर एक नवीन दृष्टि डाली जा सकती हैं क्योंकि जालौन गजेटियर के अनुसार प्राचीन इतिहास की दृष्टि से इस जनपद का कोई इतिहास नही हैं । अब इन ताम्र उपकरणों की उपलब्धता के प्रकाश में जालौन जनपद का प्राचीन इतिहास जगमगा उठता हैं तथा यह स्पष्ट आभास कराता है कि इस जनपद में भी ताम्र सभ्यता पल्लवित हुयी है ।
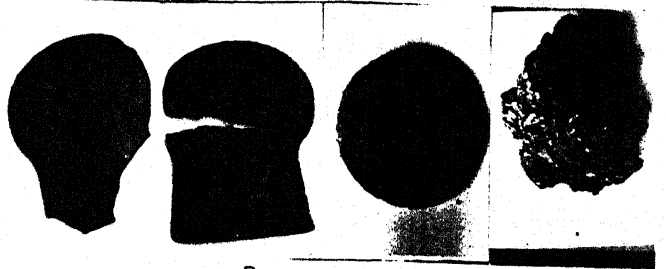
ताम्रयुगीन उपकरण

ब - सिक्के -

किसी स्थान के इतिहास व सामाजिक स्थिति को जानने में सिक्कों से काफी सहायता मिलती हैं । सिक्कों को तों इतिहास की जानकारी का स्त्रोत कहा गया हैं । सिक्कों के माध्यम से काल , शासक तथा सामाजिक सभ्यता का ज्ञान भी प्राप्त होता हैं । जालौन जनपद में जो जो सिक्के अभी प्रकाश में आये हैं उनका संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार हैं ।

(१) एरच राज्य के इन्द्रमित्र का सिक्कों - यह सिक्का ताम्र का हैं तथा एरच राज्य के ऐतिहासिक अन्धकार युग को उजागर करता हैं । इस सिक्के की प्रमाणिक जानकारी गोरखपुर क्षेत्र के पुरावशेष व बहुमूल्य कलाकृति विभाग के पंजीवन अधिकारी डा० ओमप्रकाशलाल श्रीवास्तव के पत्र के केमाध्यम से प्राप्त हुयी ।उन्होंने अपने झाँसी कार्यकाल के अंतर्गत एरच राज्य के नवीन शासकों परखोज की । यह जालौन जनपद उस समय एरच राज्य को सीमाओं के अन्तर्गत आता था क्योंकि एरच राज्य, की सीमायें उत्तर में यमुना पार मूसानगर तक फैली थीं । एरच के शासक दाममित्र का एक शिलालेख मूसानगर में प्राप्त हुआ है जो कि एरच के दाममित्र से मिलता है । जिससे एरच राज्य की सीमा के विस्तार का पता चलता हैं । जनपद जालौन इसी सीमा के अन्तरगत आता था । अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता हैं कि उस समय इस जनपद जालौन का शासक इन्द्र मित्र भी था ।

(२) कुषाण कालीन सिक्के -- जनपद जालौन के विभिन्न क्षेत्रों से कई प्रकार के अलग अलग कुषाण कालीन सिक्के प्राप्त हुये हैं । इनमें से कुछ सिक्के कोंच तथा कुछ सिक्के कालपी से भी प्राप्त हुये हैं ।

उरई से प्राप्त सिक्कों में विम किड़ फाई सेस का सिक्का महत्वपूर्ण हैं । यह प्रथम शताब्दी का है । जिसमें एक योद्धा अपने हाथ में अपने आयुध लिये हाथी पर सवार हैं। इसके दूसरी ओर का अंकन स्पष्ट नहीं है । यहीं से ताँबे का एक कनिष्क का भी सिक्का मिला है । जिसके एक ओर राजा खड़ा हैं तथा दूसरी ओर देवी आकृति अंकित हैं । एक अन्य कनिष्क का सिक्का भी प्राप्त हुआ हैं जिसमे एक ओर राजा खड़ा हैं तथा दूसरी ओर चतुर्भुजी देवी आकृति खड़ी मुद्रा में अंकित हैं । कोंच से भी कनिष्क का ताम्र का एक सिक्का प्राप्त हुआ है जिसमें एक ओर राजा खड़ा है तथा दूसरी ओर एक पुरुष आकृति का अंकन हैं जिसके कि सीधे हाथ में दण्ड अथवा आयुध जैसी कोई बस्तु हैं । यह प्रथम शताब्दी का हैं ।
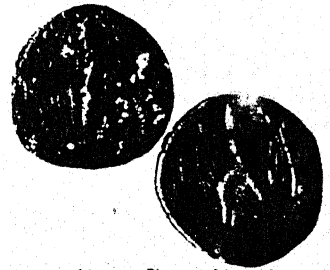
कालपी क्षेत्र से भी कनिष्क का एक ताम्र का सिक्का प्राप्त हुआ है यह बहुत अच्छा सिक्का है । तथा दूसरी ओर जूड़ायुक्त एक देवी आकृति का अंकन हैं । सम्भवतः यह देवी आकृति अग्रोक्ष अथवा पोलस्देवी की होगी । यही से एक अन्य ताम्र सिक्का भी मिला हैं । यह भी अत्यन्त सुन्दर है इसमें एक ओर ध्यान मुद्रा में भगवान शंकर बैठे हैं तथा दूसरी द्विभंग मुद्रा में एक स्त्री आकृति अंकित हैं । यही से एक तीसरे प्रकार का भी सिक्का प्राप्त हुआ हैं जिसमें एक ओर राजा अग्निरोधक वस्त्रों को धारण किये हुये राजाज्ञा देने की मुद्रा में अकित हैं कि तथा दूसरी ओर एक अस्पष्ट सी पुरुष आकृति बैठी हुयी अंकित हैं ।

इन सभी कुषाण कालीन सिक्कों की प्राप्ति से यह स्पष्ट हैं कि इस जनपद जालौन में कुषाणों का प्रभाव था तथा इन सिक्कों से यह भी स्पष्ट है कि कुषाण जन हिन्दू मान्यताओं पर विश्वास करते थे । सिक्को पर भगवान शंकर के अंकन से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हैं ।

कोच क्षेत्र से ताम्र के कुछ ऐसे सिक्के मिले हैं जो कि ईसापूर्व ३५० वर्षों के कोशाम्बी राज्य के हैं । इन सिक्कों पर हाथी के साथ साथ क्रास भी अंकित हैं जो यह ज्ञान देता हैं कि वर्तमान में प्रचलित मैडीकल क्रौस , इस भारतवर्ष की ही दुनिया को देन है क्योंकि जब ये सिक्के यहाँ प्रचलन में थे । तो उस समय पश्चिमी सभ्यता का श्री गणेश भी नहीं हुआ था।

इस जनपद से भारतीय इतिहास में स्वर्णकाल के रुप में विख्यात गुप्त काल के भी सिक्के प्राप्त हुये है । इन सिक्कों में स्कन्द गुप्त, चन्द्रगुप्त तथा कुमार गुप्त के सिक्के विशेष हैं । इन सिक्कों का प्राप्ति स्थान कालपी क्षेत्र हैं । कोंच क्षेत्र से नागराजाओं के सिक्के प्राप्त हुये हैं । कालपी से कलाचुरि के गंगे देवा के सिक्के भी मिले हैं । पूरे जनपद जालौन में यत्र तत्र से कुतुबुद्दीन ऐवक,सिकन्दर लोधी , अकबर , शेरशाह सूरी के विभिन्न सिक्कों के साथ साथ विभिन्न रियासतों जैसे ग्वालियर,रतलाम , जावरा , कन्नौज इन्दौर आदि के सिक्के भी प्राप्त हुये हैं । अंग्रेजों के सिक्के तो अभी भी प्रचुरता के साथ मिलते हैं । इन सभी सिक्को की प्राप्ति से यह तथ्य प्रकाश में आता है कि इस जनपद जालौन में उपयुक्त वर्णित सभी राजाओं का प्रभाव रहा हैं जिससे जनपद के इतिहास की पुष्टि होती हैं ।

स -- लौह उपकरण -

कोंच के तहसील प्राँगण की खुदाई में प्राप्त लौह उपकरण कोलों की उपस्थित का परिचय देते हैं क्योंकि लौह के प्रयोग का समुचित ज्ञान इन कोलों को ही था । इससे दो बातों पर प्रकाश पड़ता हैं । एक तो यह कि इस जनपद में कोलों कि उपस्थिति थी तथा

दूसरी यह कि यह जनपद लौह उपकरणों का प्रयोग जानता था तथा उसका अपने दैनिक जन जीवन में उपयोग भी करता था ।

द जामुनियां पत्थर ---

कोंच के तहसील प्राँगण से ही जामुनियां तथा लाजर्वत पत्थरों के टुकड़े मिले हैं । ये दौनों पत्थर ग्रह नक्षत्रों को प्रभावित करने बाले पत्थर माने जाते हैं । इन पत्थरों की प्राप्ति से दो बातें प्रभावित होती हैं । प्रथमतः इनकी उपलब्धता इस क्षेत्र में रही होगी द्वितीयत; यहाँ के दैनिक जनजीवन में इन पत्थरों का प्रयोग आभूषणों इत्यादि में किया जाता रहा होगा

य - शालिवाहन संस्कृति के चिन्ह --

शालिवाहन समय में आभूषणों का चलन अत्यधिक था । अजन्ता गुफाओं की चित्रकला में कानों में पहने जाने वाले कर्ण फूल तथा गले में पहने मनकों के हार के स्वरुप अयन्त मोहक हैं । कोंच खुदाई से कान में पहिने जाने बाले कर्णफूल तथा गले में पहिने जाने वाले हार के कुछ मिट्टी के मनके प्राप्त हुये हैं । जो कि मातुश्री कौशल्या देवी पुरवार संग्रहालय औरंगाबाद में संग्रहीत शालिवाहन संस्कृति की धरोहर के रुप में सुरक्षित मनकों तथा कर्णफूल से पूर्णतः मिलते जुलते हैं । इसके साथ उरई से एक अनाज पीसने की चक्की का ऊपरी पाट भी प्राप्त हुआ हैं जो कि पैठन (महाराष्ट्र) से प्राप्त चक्की के पाट से मिलता हैं । इन चक्कियों में उस समय के लोग भीगे अथवा अंकुरित अनाज को पीस कर खाते थे जिससे उनका शारीरिक सौष्ठव निखर कर आता था। इन वस्तुओं की प्राप्ति से यह निश्कर्ष निकाला जा सकता हैं कि इस जनपद जालौन में भी शालिवाहन संस्कृति पल्लवित हुयी थी ।

साहित्य एवं लोकगीतों में इतिहास -

साहित्य - लोकसाहित्य , लोकगीतों आदि से भी हमें इतिहास के स्वार्णिम पृष्ठों का दर्शन होता हैं क्योंकि किसी भी स्थान अथवा राष्ट्र की सांस्कृतिक , ऐतिहासिक तथा समाज सम्बन्धी संजीवनी शक्ति उसका साहित्य तथा लोक साहित्य ही होता है । लोक गाथाओं में प्राचीन ऐतिहासिक कवियों के आधार पर लम्बे गीत मौखिक रूप से ही चिरकाल से लोक कंठ में विद्यमान हैं । आल्हखण्ड इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है जिसमें इतिहास और कल्पना की प्रभूत सामग्री उपलब्द्ध है । बुन्देलखण्ड में लोकगीतों का अक्षय भण्डार सुलभ है । जनपद जालौन भी इससे अछूता नहीं है । चन्देलकालीन पुरासम्पदा एवं ऐतिहासिक महापुरूषों के अनेक नामों का उल्लेख लोकगीतों में आज तक सुरक्षित है । यथा महाराज चन्द्रब्रहम, परमार्दिदेव (परमाल) , पृथ्वीराज चौहान, वीरसिंहदेव, चम्पतराय , छत्रसाल एवं महारानी लक्ष्मीबाई आदि । इनसे सम्बन्धित प्रमुख स्थानों में उरई , कोंच, कालपी , जालौन आदि का भी वर्णन प्राप्त होता है । पंचनदा (जालौन) एवं सैदनगर स्थित अक्षरा देवी और रक्तदन्तिका के मन्दिरों के अतिरिक्त क्रौंच ऋषि की तपस्थली कोंच, उद्दालक ऋषि की तपोभूमि उरई पाराशर ऋषि से सम्बन्धित परासन , बाल्मीकि ऋषि से सम्बन्धित बबीना, अकबर जहाँगीर कालीन ऐतिहासिक गाथा को छिपाये हुए इटौरा अवस्थित रोपण गुरू समाधि, कालप्रियनाथ की कालपी, यहाँ चौरासी गुम्बद , बीरबल का रंगमहल , श्रीदरवाजा, महारानी लक्ष्मीबाई का मन्त्रणा कक्ष , अष्टादस पुराणों के प्रणेता महार्षि वेदव्यास का व्यास टीला प्रसिद्ध पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक थाती है।

लोकगीतों के साक्ष्य में ऐतिहासिक घटनाओं के अनेक उल्लेख सन्निहित हैं। आल्हकाव्य में परमार्दिदेव के सहायता मांगने पर आल्हा ऊदल महोबा लड़ने को चल दिये । साथ में लाखन है । लाखन की नवपरिणिता वधू कुसुमा अपनी मनोव्यथा प्रकट करती हुई कहती है --

"कुसुमा अरज करै लाखन से , मेरी बारी उमर नादान ।
x x x
ना मेरी फाटी तेल की फरिया, ना मेरे छूटे हरद के दाग ।
ना मेरो छूटो पायन महावर, ना मोरी छूटी सिन्दूर भरी माँग ।
ना मैंने कीनी दिल भर बतियाँ, ना मोरी छूटी नैन की लाज ।"

ऐतिहासिक स्थलों के नामों का उल्लेख भी लोकगीतों में होता है, लोकसम्वादों में होता है तथा लोकोपत्तियों में होता है । उदाहरणार्थ -

"देखी तेरी कालपी , बावन पुरा उजार "

कंजौसा (जालौन) का वर्णन लोकगीतों में इस प्रकार मिलता है ।

"मंजु मुनि ने, कर जमुना को पार ।
कंजौसा में , पिलायो तुलसी खों बार ॥"

उरई का वर्णन हमें इस प्रकार मिलता है --

"रिषि उद्दालक ने करो, तप ठाड़े हो काम ।
उरई पुरी मसहूर भई , ठड़ेसरी परो नाम ॥

एक दूसरा वर्णन इस प्रकार मिलता है --

" उरई राजधानी हती,माहिल की भरपूर "

उरई से दक्षिण में वेतवा के निकट एक ग्राम धुरट है जहाँ पर केवड़े के बाग हैं । इसका उल्लेख हमें निम्न भाँति मिलता है ।

"धुरट वेतवा की ढी सोहें
इतर इतै को जन मन मोहे ॥"

जालौन के नाम के विषय में कहा जाता था ।

" पैलाँ हतो जालवन नाम "

कालपी के भवनों व प्रसिद्ध ऐतिहासिक क्षेत्रों का वर्णन निम्नानुसार देखने को मिलता है ।

" तपस्थली है वेदव्यास की , गुम्बद चौरासी विख्यात ।
जनम भूमि बारे बीरा की , सूरज को मन्दिर है ख्यात ॥"

उरई के विषय में यह ख्याति है कि ग्यारहवीं शताब्दी में यहाँ का राजा माहिल था जिसने दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान से मिलकर महोबा (हमीरपुर) के राजा परमाल के ऊपर आक्रमण करवा कर कूटनीतिज्ञ की भूमिका निभाई थी क्योंकि परमाल रिश्ते में माहिल का बहनोई था । फिर भी माहिल ने पृथ्वीराज चौहान से महोबे पर आक्रमण कराया था उस समय महोबा की रानी एवं माहिल की बहिन मलना ने इस आक्रमण के बाद एक दूत वैरागढ़ (जालौन) भजन सिंह को बुलाने भेजा -

" बैरागढ़ जाकर भजन सिंह को शीघ्र संदेशा है देना ।
माहिल भइया ले आये हैं, महोवे पर दिल्ली की सेना ॥"

माहिल की इसी बात का प्रायश्चित , उसके एक मात्र पुत्र अभई ने पृथ्वीराज चौहान के विरूद्ध महोबे में महोबे की ओर से लड़कर किया था । कवि का कथन है -

" रण कंगन बँधा कलाई पर , कहता रण गंग नहाऊँगा ।
उरई पर लगा कलंक तिलक , शोणित की धार बहाऊँगा ॥

जब माहिल ने अपने पुत्र अभई को अपने विरूद्ध लड़ते देखा तब उसने अभई से कहा तुम मेरी वर्षों की मेहनत पर पानी फेर रहे हो । इस पर अभई ने जो उत्तर दिया , वह इस भूमि की सांस्कृतिक चेतना का आभास कराता है ।

" मैं मर जाऊँ, ले जाये पिथौरा , जब चन्द्रावलि का डोला ।
लाशों पर मगन नाचना तुम, गाना गाना बम बम भोला ॥"

सांस्कृतिक चेतना का एक और स्वरूप इस प्रकार मिलता है । कि इस युद्ध में जब अभई मरने लगता है तब वह कहता है

" ऋद्धांजलि मुझको है देना , तो बन जाओ प्रलयंकर भोला ।
पापी के हाथ न छू पायें , बेटी चन्द्रावलि का डोला ॥
इतना कहकर उरई का राजदुलारा , चिर निद्रा सोया ।
उस दिन जब माहिल रोया , वेत्रवती रोयी, विरंच रोया, विरंच रोया ॥"

अस्तु साहित्य तथा लोक साहित्य के माध्यम से भी इस जनपद के इतिहास एवं उज्ञवल संस्कृति की सार्थकता का आभास किया जा सकता है जो कि ऐतिहासिक विश्लेषण की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

सप्तम अध्याय

उपलब्ध ज्ञान के संदर्भ में जनपद का ऐतिहासिक महत्व :-

उपलब्ध ज्ञान के संदर्भ में जनपद जालौन के प्राचीन भवनों के ऐतिहासिक मूल्यांकन से बहुत से प्राचीन तथ्य ऐसे उभर कर सामने आये हैं जिनके प्रकाश में इस जनपद का ऐतिहासिक महत्व झिलामिला उठा है। आज तक जो तथ्य अंधकार की कृष्ण कोठरी में दुबके पड़े थे वे उपलब्ध ज्ञान की ज्योति से ज्योति हो उठे और अपनी प्राचीन गाथाओं का शंखनाद करने लगे जिससे इस जनपद के इतिहास को नवीन अध्याय मिले और हम सब इस जनपद के निवासियों को गर्व का अनुभव होने लगा कि हम भी विश्व की प्राचीनतम भारतीय संस्कृति के संवाहक रहे हैं। इस जनपद का भौगोलिक स्वरूप भी अति विचित्र है। तीन तीन नदियाँ जहाँ इसकी सीमा का निर्धारण करती हैं वहीं ग्रेनाइट पत्थर की पहाड़ियाँ दृढ़ इच्छा शक्ति का समावेश करती हैं। कहीं नदियों के किनारे ऊँचे ऊँचे कगार इस जनपद की निगेहबानी करते हैं तो कहीं समतल धरातल पर आल्हा की सजीली ओजपूर्ण स्वर लहरी यहाँ के जनमानस को आन्दोलित करती है।१

ऊषर क्षेत्र का महत्व - अपने देश में जिस प्रकार से अयोध्या, मथुरा , माया, काशी , काँचीवरम अवन्तिका (उज्ञयनी) तथा द्वारिकापुरी ये सात शुभ नगरियाँ मोक्ष देने वाली हैं उसी भाँति ब्रहमाँण पुराण में वर्णन मिलता है कि यहाँ पर नौ प्रकार के ऊषर क्षेत्र हैं।

रेणुकः शूकरः काशी काली, कालो वटेश्वरौ।
कालंजरौ महाकाल ऊषरौ न कीर्तिता ः॥१२॥

अर्थात् रेणुक, (शूकर सोरों) काशी , काली , काट , बट और ईश्वर, कालिन्जर तथा महाकाल ये ६ ऊषर हैं।

" नवोषराणां मध्ये च कालमूषर मुत्तमम्।
वदन्ति मुनयः सर्वे वेदशास्त्र विशारदाः॥१३ ॥

अर्थात् वेदों तथा शास्त्रों को भली प्रकर जानने वाले सबमुनिजन काल ऊपर को नवों ऊषरों में श्रेष्ठ कहते हैं।

" रायस्थानम् समारभ्य माणिक्यावधि मुतमम्।
कालमूषर मां चक्षुश्चि रत्तन मुनीश्वराः ॥१४॥

अर्थात् प्राचीन मुनियों ने राय (रायड़) स्थान से मानिकपुर (वर्तमान मैनपुर) तक की भूमि को उत्तम 'काल ऊपर' कहा है ।

" चतुर्योजन दैर्ध्येण योजनद्वय मायतम् ।
देवर्षि मुनि वृन्दाढ्यम् संसार भय नाशनम् ॥१५॥

अर्थात् यह ऊषर चार योजन चौड़ा, देवर्षि तथा मुनिगणों से पूरित और भवभय नाशक है । इसी काल नामक ऊपर क्षेत्र में कालपी है जिसके महात्म के विषय में इसी ब्रहमाण्ड पुराण के प्रथम अध्याय में वर्णित है कि -

कलाद्वि पाति कालेशो यत्र स्वेन महौजसा ।
तस्मात्सम्प्रोच्यते सद्भिः कालपीति शुभस्थली ॥१६॥

अर्थात् जहाँ मृत्यु के स्वामी श्रीविष्णु भगवान नि तेज द्वारा काल से मनुष्यों की रक्षा करते हैं वहाँ इसी हेतु सज्जन पुरूष इसपुण्य भूमि को कालपी कहते हैं । इसी में कालपी शब्द की व्याख्या करते हुए कहा गया है ।

" कः प्रजापति रित्यु क्तोऽकारार्थी विष्णुरीरितः ।
ल कारेण महादेवः कथितो ब्रहमवित्तमैः ॥१७॥

अर्थात् प्रजापति ब्रहमा 'क'कहलाते हैं और आकार का अर्थ विष्णु कहा जाता है तथा ब्रहम के जाननेवाले श्रेष्ठ मुनियों ने 'लकार' से महादेव कहा है और इस सबके साथ कालपी की विशिष्टता यूँ बतलाई गयी है -

" ते सर्वे पन्ति यस्यां वै कालपी सा प्रकीतिता ।
भुक्ति मुक्ति प्रदा नृणां महापातक नाशिनी ॥१८॥

अर्थात् वे सब (ब्रहमा,विष्णु, महेश) जिस नगरी में रक्षा करते हैं । वह कालपी कही जाती है । यह 'कालपी' मनुष्यों को भोग तथा मुक्ति की देनेवाली तथा उनके बड़े बड़े पापों का नाश करने वाली है ।

अस्तु यह कहा जा सकता है कि जालौन जनपद की कालपी नगरी पुराणों में वर्णित नौ ऊषरों में सर्वश्रेष्ठ 'काल' ऊषर के रूप में मान्यता प्राप्त थी तथा उसका अत्यधिक आध्यात्मिक साधना की दृष्टि से महत्व था जो कि इतिहास की दृष्टि से प्राचीनता का बोधक है और महत्वपूर्ण भी ।

२- अध्यात्मिक साधना की दृष्टि से महत्व -

इस जनपद का ऐतिहासिक महत्व इस कारण भी अत्यधिक बढ़ गया क्योंकि आध्यात्मिक साधना हेतु यह स्थान अत्यन्त अनुकूल है कल्याण के साधनांक में वर्णन मिलता है कि -

" अनुष्ठान का स्थान निम्न स्थानों में से होना चाहिये । सिद्ध पीठ, पुण्य क्षेत्र , नदी तट , गुफा , पर्वतशिखर , एकान्त उद्यान, जंगल आदि ।"

इन स्थानों पर आध्यात्मिक जाप के प्रभाव के विषय में भी वर्णित है कि --

" घर से सौ गुना जंगल में , हजार गुना तालाब , लाखगुना नदीतट तथा करोड़ों गुना पर्वत पर लाभ मिलता है ।"

इस जनपद जालौन में घने वन भी काफी मात्रा में रहे हैं जिसके कारण यहाँ पर अत्यधिक शान्ति रहती थी और परिणामस्वरूप मुनिजन अपने धार्मिक अनुष्ठान सुविधापूर्वक बिना किसी विघ्न बाधा के सम्पन्न कर लेते थे । इसी कारण कई ऋषियों मुनियों ने इस जनपद को अपना कर्मक्षेत्र बनाया । कालपी को तो बसाया ही काल्पदेव ने था फिर यह स्थान कालप्रियनाथ (सूर्य) की क्रीड़ा भूमि रही है । इसी के उत्तर में स्थित आटा ग्राम में वामदेव मुनि का आश्रम था । छौंक ग्राम में क्षेमौक मुनि का आश्रम था रायपुरवा में कुबेर का स्थान था । जलालपुर में शाण्डिल मुनि का आश्रम था । हरदोई ग्राम में विष्णु भगवान के श्रेष्ठ पार्षदजन निवास करते थे । इटौरा ग्राम में तो देवगुरू ब्रहस्पति ने स्वयं १०० वर्षों तक भगवान विष्णु की तपस्या की थी । इसी भाँति उरई भी उद्दालक ऋषि के कारण ख्याति प्राप्त कर पाया । यहाँ पर सघन वन के कारण ही उद्दालक ऋषि ने इसे अपना कर्मक्षेत्र बनाया और यह स्थान उद्दालक बनके नाम से विख्यात हो गया । यहीं पर उनके भान्जे एवं शिष्य उतंक का भी स्थान रहा है । दोनों की समाधि की मठिया यहाँ पर डोलनगंज मुहल्ले में है जो कि वर्तमान में 'मामू भान्जे' की मजार के नाम से मुसलमानों के कब्जे मे हैं । यहाँ पर यह भी उल्लेख करना उचित होगा कि इटौरा से पूर्व की ओर एक स्थान है कुरहना ।यह स्थान जंगली कटीली बेरी के कारण कुरहना' कहलाया क्योंकि कटीली बेरी की जड़ को कुरही कहते हैं । यह इस स्थान पर बहुतायत में था । ऐसी मान्यता है कि कुम्भज ऋषि ने यहाँ पर अपना चतुर्मास व्यतीत किया था । इन्ही कुम्भज ऋषि ने विन्ध्याचल पर्वत के विस्तार को रोकने हेतु उसको पार कर दक्षिण में अपना आश्रम बनाया था तथा बाद में यही कुम्भज ऋषि अगस्त ऋषि के नाम से प्रसिद्ध हुए । इस जनपद में तीन तो मुख्य नदियाँ हैं ही इनके अलावा स्थानीय स्तर पर छोटी छोटी कई नदियाँ हैं यथा जोंधर ,मलंगा आदि । यह जोंधर नदी व्यास गंगा के नाम

से भी जानी जाती है तथा कलपी में व्यास टीले के निकट यमुना नदी से मिलती है । जोंधर तथा यमुना के संगम स्थल पर ही महाभारत के महान रचनाकार महर्षि श्रीकृष्ण द्वैपायन वेदव्यास का जन्म हुआ था । शिवपुराण, भागवत् पुराण, स्कन्द पुराण आदि इस तथ्य के प्रमाण हैं । वेत्रवती (वेतवा) के तट पर महर्षि पराशर का आश्रम था जो कि महर्षि वेदव्यास के पिता थे । उनके ही नाम से आज यह सम्पूर्ण आश्रम परासन ग्राम के रूप में विख्यात है। पितृपक्ष में आज भी यहाँ पर लाखों की संख्या में विशालकाय मछलियाँ आती हैं जिन्हें लोग श्रद्धापूर्वक आटा आदि अर्पित करते हैं। पितृपक्ष में मछलियों का यहाँ आना हमें महाभारत के उस घटनाक्रम की स्मृति ताजा कर देता है जिसमें 'मत्स्यगंधा' को पराशर ऋषि द्वारा "योजनगंधा ' का वरदान प्राप्त हुआ था तथा तत्पश्चात् यही योजनगंधा को महर्षि वेदव्यास की माँ होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था और यही योजनगन्धा अन्ततः हस्तिनापुर के महाराजा शान्तनु की पत्नी सत्यवती के रूप में विख्यात हुयी । जनपद के जगम्मनपुर के कंजौसा स्थान पर मुकुन्दवन मुनि का आश्रम था जिन्होंने अकबर के समय में जब गोस्वामी तुलसीदास जलमार्ग से होकर गुजर रहे थे तब उस स्थान पर प्यास मिटने हेतु आवाज लगाई थी और बाबा मुकुन्दवन ने अपने शिष्य मन्जुवन को अपनी खड़ाऊँ देकर जल के ऊपर पैदल चलकर संत शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास के पास जल भेजकर उनकी प्यास बुझाई थी । सैदनगर में अक्षरातीर्थ पर ही वेत्रवत् राक्षस से त्राण पाने हेतु सभी देवताओं ने [illegible]कर माँ भगवती की स्तुति की थी और उन्हें 'त्वमं अक्षरा' त्वं स्वधा ' कहकर सम्बोधित किया था इसी कारण वहाँ माँ भवानी का प्रादुर्भाव हुआ था तथा वह स्थान अक्षरा तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध हुआ । अस्तु नदियों के करण इस जनपद में तमाम ऋषियों मुनियों ने अपनी तप साधना से इसे तपोभूमि बना दिया ।

इस जालौन जनपद में विभिन्न पहाड़ियाँ हैं जिनके कारण भी यह क्षेत्र ऋषियों मुनियों का प्रिय क्षेत्र बना रहा है क्योंकि आध्यात्मिक साधना में पहाड़ों की एकान्त साधना अत्यधिक उपयोगी मानी गयी है । । ऐसे स्थानों पर ध्यान की एकाग्रता बनी रहती है। पहूज नदी के किनारे सघन वन के बीच गोपाल गिरि पर गोपाल बाबा का आश्रम था जिनके प्रताप से रामकूप जैसा पाताल तोड़ कुआँ आज भी स्थानीय लोगों की जलापूर्ति कर रहा है ।यहीं पर क्रोन्च ऋषि ने हिमालय से आकर अपना चतुर्मास व्यतीत किया था उन्हीं के नाम पर यह कोंच नगर बसा । सैदनगर ग्रेनाइट पत्थर की पहाड़ियों के मध्य बसा है । इस सैदनगर को लगभग ८०० वर्ष पूर्व सिद्ध बाबा द्वारा बसाया गया था ।आज भी सिद्धबाबा की गुफा यहाँ पर एक

पहाड़ी पर है । सिद्ध बाबा ने इस अक्षरा क्षेत्र में श्री यन्त्र की प्राण प्रतिष्ठा करके , इस क्षेत्र को सिद्ध क्षेत्र होने का गौरव प्रदान किया ।

उपर्युक्त से यह भलीभाँति स्पष्ट है कि इन ऋषियों मुनियों ने इस जनपद को अपनी कर्मभूमि बनाकर इसे सिद्ध तपोभूमि बना दिया जो कि इतिहास व अध्यात्म की दृष्टि से हमारे लिये गौरव की बात है ।

३- सामरिक महत्व -

यह जनपद अति प्राचीन समय से सामरिक महत्व का क्षेत्र रहा है । यहाँ के लोगों को टूटना आता है परन्तु झुकना उनकी नियति नहीं है । यहाँ के लोगों के हौंसले, बुलन्दियों की चोटियों को चूमते हैं और हाथों की बिजलियाँ अरि दमन के लिये चमक चमक उठती हैं । इसी करण यहाँ के लोग सदैव से ही उत्तम श्रेणी के योद्धाओं में अगली पंक्ति की शोभा बढ़ाते रहे हैं । इस जनपद की सीमाओं पर विशाल गढ़ियों तथा किलों का निर्माण यहाँ की सुरक्षा व्यवस्था को दृढ़ आधार प्रदान करता था । कालपी में यमुना की १५० फुट ऊँची कगार पर उत्तर दिशा में चन्देलों द्वारा निर्मित चन्देलों के प्रसिद्ध आठ दुर्गों में से एक कलपी का यह दुर्ग जहाँ इस जनपद को उत्तरी आक्रान्ताओं से सचेष्ट करता रहा है वहीं इस जनपद के पश्चिमी किनारे पर करनखेड़ा का किला और उससे ४ कि०मी० पूर्व की ओर पुनः निर्मित जगम्मनपुर की गढ़ी पश्चिमी सीमा की चौकसी करती है और इस जनपद की दक्षिणी पश्चिमी सीमा पर पहुँज नदी की २०० फुट ऊँची कगार पर स्थित गोपालपुरा की गढ़ी इस जनपद को दक्षिणी पश्चिमी सीमा की ओर से अभय प्रदान करती है । इस जनपद का कालपी नगर प्राचीन काल से ही दक्षिण की ओर प्रस्थान हेतु जलमार्ग तथा थलमार्ग हेतु सुगम रहा है । इसी कारण उत्तर से दक्षिण की ओर समर जीत हेतु प्रस्थान का एक मुख्य केन्द्र रहा है । यहाँ पर हाथियों एवं अश्वों का अच्छा बाजार भी रहा है । अकबर के समय यहाँ से हाथियों की खरीदारी की जाती थी । यहाँ के जनजीवन में वीरता एवं शौर्य रस घुट्टी के साथ पिलाया जाता है अतः यहाँ के जवान युद्धभूमि से पलायन करना नही जानते अपितु अपने प्राणों को त्यागना श्रेयसकर समझते हैं । यहाँ के बाँके , लड़ाकू जवानों का सेनाओं में विशेष स्थान रहता था अतः सैनिकों की भर्ती हेतु भी यह स्थान महत्वपूर्ण था । अपने मान सम्मान के लिए प्राणों की आहुति देना यहाँ के जीवन का लक्ष्य है । इसी कारण ११वीं शताब्दी में जब पृथ्वीराज चौहान ने महोबा की राजकुमारी चन्द्रावलि का डोला माँगा था तब चन्द्रावली के मामा महिल (उरई का राजा) का पुत्र अभई बहिना के सम्मानार्थ दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान की फौजों से पहाड़ बनकर टकरा गया था और उस युद्ध यज्ञ में अपने प्राणों की समिधा अर्पित कर दी थी । उसी भाँति औरंगजेब की

मुगलिया सल्तनत के विरूद्ध महराज छत्रसाल के साथ न जाने कितने जवानो ने अपनी बहिन की राखी के सम्मानार्थ अपने प्राणों को होम दिया था । सन १८५७ में अंग्रेजों के खिलाफ युद्ध करते करते जब झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई ने इस जनपद में प्रवेश किया तब बरजोर सिंह ने अपने अनुयायियों के साथ रानी की रक्षा पंक्ति बना दी थी और अंग्रेजों की गोलियाँ को अपनी चौड़ी छाती पर झेला था । यही कालपी उस समय प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की मन्त्रणा स्थली बना था जहाँ पर तात्यां टोपे,नानासाहब पेशवा, कुँवर सिंह , रानी लक्ष्मीबाई आदि ने मिलकर अंग्रेजों से इस देश को मुक्ति दिलाने हेतु शंख फूंका था और उसी शंखनाद ने राजा गोपलपुरा को आन्दोलित कर दिया था । परिणामस्वरूप गोपालपुरा रणसेना जमाव का केन्द्र बन गया था और यहीं से ग्वालियर के लिए रानी ने कूच किया था । इस प्रकार से यह जनपद अत्यन्त सामरिक महत्व का क्षेत्र रहा है ।

राजनैतिक महत्व -

इस जनपद के सामरिक महत्व से यह बात स्पष्ट है कि यहाँ के शासकों एवं शासितों में सदैव से ही स्वतन्त्र रहने की प्रबल इच्छा रही है । इसने अपने स्वतन्त्र रहने की इच्छा के आगे कभी केन्द्रीय अधीनस्थता को नहीं स्वीकारा । इसी कारण महाभारत काल में चेदि सम्राट शिशुपाल ने कृष्ण के वर्चस्व को चुनौती दी थी । ११ वीं शताब्दी में उरई के राजा माहिल ने अपनी स्वतन्त्रता बरकरार रखने हेतु दिल्लीपति पृथ्वाराज चौहान से महोबा पर आक्रमण करवा कर महोबे की शक्ति को क्षीण करने की योजना कारगत् की थी । कन्नौज की ताकत को भी बढ़ने से रोकने के लिए तथा अपनी स्वतन्त्रता अक्षुण्य बनाये रखने हेतु पृथ्वीराज चौहान से लड़वा दिया था तथा अपनी कूटनीति के माध्यम से उरई को स्वतन्त्र बनाये रखने का प्रयास करता रहा था ।

कालपी के राजा श्री चन्द्र लहरिया ने अपनी आजादी की खातिर मुगलों के छक्के छुड़ाते हुए अपना बलिदान तक कर दिया था । आज भी उसके बलिदान का गुणगान करता कालपी का श्री दरवाजा बुलन्द खड़ा है ,।

इस जनपद जालौन ने कभी कभी पराजय का भी मुँह देखा है परन्तु अपनी स्वतन्त्र रहने की प्रबल आकांक्षा ने उसे पुनः सम्बल प्रदान कर युद्ध हेतु प्रेरित किया और युद्ध के पश्चात् विजयश्री ने उसका वरण भी किया । औरंगजेब के विरूद्ध में छत्रसाल का सहयोग इसी प्रबल आकांक्षा का परिणाम थी । अंग्रेजों के विरूद्ध न जाने कितने जवान फाँसी के फन्दों पर झूल गये । अजनार खेड़ा का वह पेड़ आज भी उन शहीदों की सहादत देता है । न जाने कितने आजादी के दीवानों ने जेल के सीखचों में तनहाई काटी है और न जाने कितनेवीरों

के हाथों ने जेल की चाकियों के पत्थरों को अपने हाथों से घिस घिसकर सपाट कर दिया था। इन्हीं सब कारणों ने इस जनपद को राजनैतिक महत्व के क्षितिज पर शोभायमान कर दिया। आज भी बुन्देलखण्ड प्रान्त को अलग बनाने के पीछे वे ही ऐतिहासिक कारण हैं जिनसे इस क्षेत्र के लोगों ने सदैव स्वतन्त्र रहने की राजनैतिक आकांक्षायें प्रगट की थीं । इसी कारण आज वर्तमान में समाज में जो असंतोष है तथा समय समय पर जो आन्दोलन जनता द्वारा चलाये जाते हैं उनके पीछे छिपी मनोवृत्ति को , राजनैतिक सोच को, ऐतिहासिक संदर्भों में जोड़ने का विनम्र प्रयास है यह शोध कार्य ।

ऐतिहासिक ज्ञान की वृद्धि में योगदान -

प्रस्तुत अध्ययन ने इतिहास में सर्वथा उपेक्षित इस भूभाग को एक विशिष्ट पहचान दी । यह भूभाग विकास की दृष्टि से काफी समय से प्रताड़ित रहा है । समूचे बुन्देलखण्ड को ही सभ्यता तथा सम्पन्नता की नजर से राजनैतिक तथा सामाजिक स्तर पर हेय दृष्टि से देखा जाता रहा है जबकि आदि-समय से यहाँ की संस्कृति ने समूचे देश की संस्कृति को नेतृत्व प्रदान किया है । सामाजिक तथा सांस्कृतिक रूप से पूरे देश ही नहीं अपितु पूरे विश्व में नारी जाति को प्रेरणा स्रोत मान कर उसका अर्चन वन्दन किया है । यही स्थिति इस जनपद जालौन की भी है । यहाँ पर भी कुनघुसी पूनौ जैसे उत्सव में घर की बहुओं का यथाविधि पूजन अर्चन कर उन्हें सम्मानित किया जाता है तथा यहाँ की बालिकाओं को तो इस सकल ब्रहमाण की अधिष्ठात्री माँ भवानी का स्वरूप मानकर उनका पूजन अर्चन होता ही है । हरी ज्योति पर्व पर विशेष रूप से इन बालिकाओं का सम्मान किया जाता है । स्त्री सम्मान की इस वैभवशाली परम्परा से ही शायद मनुस्मृति में यह वर्णन मिलता है कि -

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते , रमन्ते तत्र देवता ।"

इसी क्षेत्र ने समाज में नारी शक्ति के महत्व को स्वीकारते हुए उसे सम्यक रूप से समाज में प्रतिष्ठित कर , समाज को स्त्री पुरूष के सम्मिलित सहयोग से उत्तरोत्तर प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया । इस जनपद जालौन के लोगों की आदि काल से यह उत्कन्ठा रही है कि वे सदैव स्वतन्त्ररूप से अपना जीवन यापन
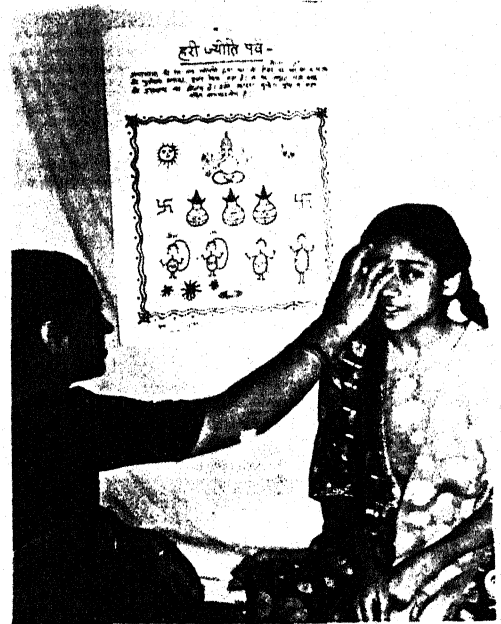
करें और उन्हें किसी के अधिपत्य में रहना कभी स्वीकार्य नहीं रहा । इसी कारण इस जनपद में सदैव ही राजनैतिक अस्थिरता रही क्योंकि केन्द्रीय नेतृत्व ने सामरिक महत्व के कारण सदैव यहाँ पर अपना प्रभुत्व बनाये रखने की चेष्टा की जिसका कि समयानुसार डटकर यहाँ के जनमानस द्वारा प्रतिकार किया गया । परिणाम स्वरूप यह जनपद युद्ध क्षेत्र भी रहा है । इस जनपद के कालपी को तो आसपास के तमाम क्षेत्रीय शासकों ने सदैव ही अपनी हवस का शिकार बनाने की चेष्टा की परन्तु यहाँ का बाँका खून सदैव ही अगड़ाइयाँ लेता हुआ जब जब उठ खड़ा हुआ दुश्मन को छिपने का भी स्थान नहीं मिला । इसी सबसे इस शोध प्रबन्ध न इस जनपद को सामरिक महत्व का होने का कारण इसकी राजनैतिक आकांक्षाओं का खुलासा किया । उसी अपनी विशिष्ट राजनैतिक आकांक्षा को उद्‌घोषित किया । इस जनपद में जितने भी मध्य कालीन धार्मिक , धर्मेत्तर व ऐतिहासिक भवन अथवा स्थल हैं , उनके माध्यम से इस जनपद की सभ्यता एवं संस्कृति को पहिचानने का लघु उद्यम है यह शोध कार्य । किस किस शासन काल में यहाँ की सभ्यता ने कैसे कैसे मोड़ लिए , उनको समझने का एक माध्यम है यह शोध प्रबन्ध । अभी तक इन भवनों को ऐतिहासिक संदर्भ प्राप्त नहीं थे । उनका शिल्पगत एवं पुरातात्विक विश्लेषण नहीं हुआ था । इतिहास तथा पुरातत्व के पटल पर उनको दैदीप्तमान करने की एक सम्यक चेष्टा इस शोध प्रबन्ध के माध्यम से की गई है । यथा 'महाभारत' के रचयिता एवं उस सम्पूर्ण घटना क्रम के जनक की जन्मस्थली रहा है यह जनपद । तमाम पौराणिक साक्ष्यों एवं भौगोलिक स्थितियों को ऐतिहासिक परिदृश्य के अन्तर्गत उद्‌घाटित किया गया है । यहाँ के भवनों की स्थापत्य कला के अन्तर्गत अध्ययन से इस जनपद को स्थापत्य , चित्रकला, मूर्तिकला आदि की दृष्टि से एक अलग पहचान दी है इस शोध कार्य ने ।

अभी तक इस क्षेत्र से सम्बन्धित पाण्डुलिपियों , चित्रों, सिक्कों, टैराकोटा , ताम्रयुगीन तथ इस्पात युगीन अवशेषों आदि कोआधार बनाकर इतिहास की प्रामाणिकता की कोई सार्थक चेष्टा नहीं हुई थी । इस शोध कार्य के अन्तर्गत मैंने उरई के महाबीर पुरा से प्राप्त ताम्रयुगीन अवशेषों को इस जनपद के ऐतिहासिक परिदृष्य के साथ जोड़ने का प्रयास किया है । इसी भाँति कोंच के तहसील प्रांगण की खुदाई से प्राप्त इस्पात युगीन अवशेषों, टैराकोटा आदि का पुरातात्विक आधारों पर विश्लेषण किया है । यहाँ से प्राप्त ताम्र मुद्रायें रजत मुद्राओं आदि का अध्ययन कर उन्हें इतिहास के पटल पर रखा । यथा कोंच से एक ताम्र मुद्रा प्राप्त हुई जो कि एरच राज्य के शासकों में एक नवीन खोज के रूप में सामने आयी है यह नवीन शासक इन्द्रमित्र' के नाम से जाना जाता था जिसका समय ईसा पूर्व १०० वर्ष था । कुषाण मुद्राओं की प्राप्ति से यह भी आभास मिला कि इस जनपद पर कुषाणों का भी प्रभाव रहा है । इसके

साथ ही साथ यहाँ से कुछ ऐसे टैराकोटा अवशेष प्राप्त हुये हैं जो कि शालिवाहन संस्कृति के चिन्हों के समीचीन है । इनसे यह भी प्रकट है कि यहाँ पर भी शालिवाहन संस्कृति का पल्लवन हुआ । अस्तु प्रस्तुत अध्ययन का महत्व उपर्युक्त उपादानों से प्राचीन एवं मध्यकालीन इतिहास को प्रमाणित और उसे सामयिक बनाने का प्रयास है ।

इस अध्ययन के माध्यम से जनपद जालौन के ऐतिहासिक सामरिक महत्व को दर्शानि का प्रयास है । यह जनपद अग्रिम सीमा चौकी**(Buffer state)** के रूप में जाना जाता था । इसी कारण चन्देलों के उत्कर्ष के समय यहाँ पर (कालपी) में उनके द्वारा एक विशाल किले का निर्माण किया गया था । दक्षिण भारत की ओर विजय की आकांक्षा लिये जब उत्तर की ओर से कूच किया जाता था तब जल एवं थल मार्ग की दृष्टि से सुगम कालपी ही प्रथम सीमा चौकी थी जिसपर उत्तर एवं दक्षिण दोनों की आँखे टिकी रहती थी । अस्तु इस जनपद का सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा है जिसे यहाँ के स्वतन्त्र रहने की जन आकांक्षा ने सदैव से ही अपना सामरिक कार्य क्षेत्र बनाये रखा । वैसे तो सम्पूर्ण भारत देश अपनी धार्मिक आस्थाओं के लिए विश्व विख्यात है परन्तु उन धार्मिक आस्थाओं को दृढ़ आधार प्रदान करने में इस जनपद की अपनी विशिष्ट भूमिका रही है । महर्षि वेदव्यास श्रीकृष्ण द्वैपायन की जहाँ जन्मस्थली रहा है यह जनपद वहीं उनके पिता पराशर ऋषि की कार्यस्थली रहा है यह जनपद । कुम्भज ऋषि , सन्दीपन ऋषि आदि ने अपने चतुर्मास यहाँ व्यतीत करके इस जनपद को तपोभूमि की श्रेणी प्रदान की है । देवताओं द्वारा माँ भवानी का अर्चन वन्दन कर वेत्रव्रत राक्षस के संहार का कर्म भी इसी जनपद पर सम्पन्न हुआ । इसी सबसे इस जनपद की अपनी धार्मिक पहिचान उभर कर सामने आई है ।

इस जनपद की अपनी सांस्कृतिक पहिचान भी उभरकर आयी है । यह जनपद जहाँ परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़कर रहने वाला नहीं रहा है वहीं इसने आक्रान्ताओं एवं दुष्टों के दमन में भी अपनी क्रियाशील भूमिका का निर्वाह किया है वेतव्रत राक्षस के दमन हेतु रक्तदन्तिका स्वरूप में यहाँ माँ भगवती का प्राकाट्य हुआ है । नारी शक्ति को सदैव प्रेरणा स्रोत के रूप में यहाँ के जनमानस द्वारा स्वीकार किया गया है । इसी कारण ११ वीं शताब्दी में जब पृथ्वीराज चौहान ने महोबे पर आक्रमण करके चन्द्रावलि का डोला माँगा था तब उसके (चन्द्रावलि) ममेरे भाई अभई ने अपने प्राणों की आहुति देकर अपनी बहिन के सम्मानार्थ दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान से रक्षा कर अपने प्राणों की आहूति दी थी । इन सभी संदर्भों से इस जनपद की सांस्कृतिक पहिचान उभरकर आई है ।

यह जनपद बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत उसके उत्तरीय प्रवेश द्वार के रूप मे विख्यात है । इस क्षेत्र की अपनी विशिष्ट भाषा है जोकि बुन्देली भाषा के रूप में हिन्दी के साहित्य पटल पर अंकित है । बुन्देली भाषा के अन्तर्गत बुन्देली लोकगीत , बुन्देली लोककथायें तथा अन्य बुन्देली साहित्य की प्रश्रय स्थली रहा है यह जनपद । यहाँ के लोक जीवन में बुन्देली गीतों की सुमधुर ध्वनि आज भी हमारे मनों को इस से भाव विभोर कर देती हैं। बुन्देली भाषा की मधुरता हमारे कर्ण पटल को झंकृत कर देती है ।

शोधकार्य में आयी कठनाइयाँ एवं उनका निवारण -

इस शोध कार्य में जो कठनाईयाँ सामने आयी एवं उनका निवारण मैंने कैसे किया इस संदर्भ में मेरा निम्नवत् सूक्ष्म विवरण प्रस्तुत है ।

मेरे इस शोध कार्य में इतिहास की पुस्तकों का सर्वथा अभाव रहा है । इस जनपद के इतिहास पर प्रमाणित जानकारी हेतु व्यापक तौर पर इतिहासकारों द्वारा कोई कार्य नहीं किया गया जिसके कारण इतिहास की पुस्तकों का अभाव प्रत्येक स्तर पर भटकने को मजबूर करता रहा । जालौन गजेटियर "एवं"वन्दोबस्त " के वंद वस्तों से भी प्राचीन इतिहास की कोई कड़ी प्राप्त नहीं हुयी तब मैंने शिवपुराण, भागवत,पुराण,महाभारत,ब्रहमाण पुराणआदि का संदर्भ लेते हुए भौगोलिक स्थितियों को पुराणों में वर्णित आख्यानों के साथ तालमेल के आधार पर एवं जनमानस में प्रचलित लोकमतों तथा जनश्रुतियों का सहारा लेकर इतिहास के क्रम को क्रमबद्ध करने का प्रयास किया है ।पुस्तकों के अभाव को मैंने स्थनीय स्तर पर विभिन्न स्थानीय विद्वतजनों के आलेखों की छत्रछाया में इस शोध प्रबन्ध क्रम को आगे बढ़ाया है। मेरे इस शोध कार्य में एक जटिलता यह भी रही है कि इतिहास की दृष्टि से इस जनपद का क्षेत्रीय अध्ययन नहीं किया गया । इतिहास कारों ने केन्द्रीय सत्ता के उत्थान पतन के इतिहास को अपने ग्रन्थों में स्थान दिया जिसके कारण स्थानीय ऐतिहासिक तथ्यों के विषय में प्रमाणिकता के सूत्र उपलब्ध नहीं हो सके । अतः मुझे स्थानीय इतिहास की दृष्टि से जनविश्वास एवं बड़े बूढ़ों के साक्षात्कार तथा जनश्रुतियों का आलम्बन पकड़कर आगे बढ़ना पड़ा ।

इतिहास की दृष्टि से इस जनपद का कोई ऐतिहासिक सर्वेक्षण कभी नहीं हुआ अतः यहाँ का इतिहास अंधकार के गर्त में ही चीत्कार करता रहा । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के माध्यम से जनपद की चारों तहसीलों के साथ साथ विशिष्ट स्थानों का व्यापक सर्वेक्षण करके उनसे सम्बन्धित ऐतिहासिक तथ्यों को प्रकाश में लाने का उद्यम इस शोध कार्य के द्वारा किया गया।

इसके लिए मैंने व्यक्तिगत रूप से सभी स्थानों का व्यापक भ्रमण किया तथा स्थानीय लोगों से व्यक्तिगत रूप से जानकारी प्राप्त कर उनको अपने इस शोध प्रबन्ध में समुचित स्थान दिया । शोध भ्रमण में कुछ कट्टरपंथियों द्वारा बेतुके इल्जाम भी लगाये गये तथा मुझ पर प्राणघातक हमले की योजना भी बनाई गई तब मैंने स्थानीय प्रभावशाली लोगों के सहयोग से सुरक्षा पाई और अपने इस शोध कार्य को आगे बढ़ाया । इस जनपद की पुरातात्विक सम्पदा का सम्यकरूप से न तो शासन द्वारा ही संग्रह किया गया और न ही स्थानीय स्तर पर सामाजिक संगठनों द्वारा इस कार्य को करने का बीड़ा उठाया गया जिससे यहाँ की तमाम पुरातात्विक धरोहरें या तो काल कालवित हो गयीं अथवा कुछ चन्द चाँदी के टुकड़ों में बेंच दी गयी । इस संदर्भ में पिछले ७-८ वर्षों से विशेष रूप से कार्यरत बुन्देलखण्ड संग्रहालय समिति का योगदान अविस्मरणीय रहेगा जिसने यहाँ की उपलब्ध पुरातात्विक वस्तुओं का संग्रह करके उनके विषय में विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराई । इस संग्रहालय ने इस जनपद की संस्कृति सभ्यता के विभिन्न उपादानों को संरक्षित कर इतिहास को संस्कृति एवं सभ्यता के आधार पर अवलोकन करने की विशेष दृष्टि भी दी जिससे जनपद की पुरातात्विक एवं सांस्कृतिक धरोहरें जनता के सम्मुख आ सकीं तथा इस शोध प्रबन्ध का कार्य आगे बढाया जा सका।

इस शोध कार्य में एक कठनाई यह भी आई कि इस जनपद के ऐतिहासिक प्रमाणों , ऐतिहासिक स्थलों , भवनों का नष्टप्राय हो जाना और जो कुछ भी भवन इत्यादि शेष हैं उनका सही रूप में रखरखाव न होना । इधर कुछ भवनों पर पुरातत्व विभाग का बोर्ड तो अवश्य लग गया है परन्तु वस्तुस्थिति में उनका संरक्षण नहीं हो पा रहा है । संरक्षण के अभाव में भवन के मूल वास्तुशिल्प , स्थापत्य आदि की जानकारी पा पाना एक दुरूह कार्य प्रमाणित हुआ जिसको करने के लिए मैंने उपलब्ध साहित्य , साक्षात्कार आदि का सहयोग लेकर वस्तुस्थिति को प्रकाश में लाने का उद्यम किया है ।

इस जनपद के लोगों में अपने अतीत के प्रति अनभिज्ञता और इतिहास को संजोने की अनिक्षा भी एक ऐसी कठिनाई रही जिसके कारण सही तथ्यों की तह तक पहुँचने के लिए एक एक स्थान पर चार चार , पाँच पाँच बार जाना पड़ा और बहुत से सम्बन्धित लोगों से साक्षात्कार करके अपने गन्तव्य तक पहुँच सका । यहाँ के लोगों में अपनी परम्पराओं को जीवित रखने हेतु तो दृढ़ आस्था है परन्तु परम्पराओं के इतिहास एवं उनके दृढ़ आधार पुरातात्विक अवशेषों के प्रति चैतन्यता नहीं रही । इतिहास के प्रति गम्भीरता के अभाव में भी तथ्यों के संग्रह में काफी कठिनाई पैदा हुई । यहाँ तक की लोगों को अपनी पूर्व वंशावली के विषय में यथेष्ट जानकारी नहीं थी अतः उस सबको कई कई बार भटक कर दूर करना पड़ा । बारम्बार

सम्बन्धित जनों को टोकटोककर उन्हें इस बात के लिए बाध्य करना पड़ा कि वे आवश्यक तथ्यों को उपलब्ध करायें ।

इस शोध कार्य को करने में यह एक सबसे बड़ी कठिनाई रही कि स्थानीय इतिहास एवं इतिहास से सम्बन्धित साहित्य का अभाव । वास्तव में भारतीय इतिहासकारों द्वारा इस देश के इतिहास पर शासकों के दृष्टिकोण से व शासन कालों के अनुसार अध्ययन किया गया है । इस कारण से क्षेत्रीय इतिहास के अध्ययन का अभाव रहा और स्थानीय अथवा क्षेत्रीय इतिहास को जानने व समझने हेतु सम्पूर्ण भारतीय इतिहास के प्रभा मंडल में क्षेत्रीय रश्मियों को खोजकर उन्हें एक ज्योति पुंज के रूप में प्रस्तुत करने का श्रमसाध्य प्रयास है यह शोधकार्य ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

संदर्भ-ग्रन्थ सूची

अंक चमत्कार - कीरो - हिन्दी रुपान्तरण - डा० गौरी शंकर कपूर
रंजन पब्लिकेशन , दरियागंज
नई दिल्ली वर्ष १९८३

अग्नि पुराण

अपराजित पृच्छा

आ- ई- ने अकबरी - अबुल फजल अनु० एच० ब्लाक मैन
रायल एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल
कलकत्ता वर्ष १९३९

आईने कालपी - मुंशी इनायतउल्लाखाँ
हस्त लिखित हिजरी १३०५

इण्डियन आर्किटेक्चर - ई० डब्लू० हैवल
जानमुरी ऐलबीमेरिल स्ट्रीट डब्लू.
लन्दन वर्ष १९२८

इण्डियन ईयर बुक एंड हूज़ हू
दि टाईम्स आफ इण्डिया प्रेस
बम्बई वर्ष १९३५ -३६

उत्तर प्रदेश का सांस्कृतिक इतिहास - प्रो० के० डी० बाजपेयी
शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी
आगरा - वर्ष १९६२

एग्लिम्पसेज आफ प्रेक्टीकल वास्तु - बी० एन०रेड्डी
विग्रो पब्लिकेशन्स , रायभगवानरोड
हैदराबाद वर्ष १९९२

ए ब्रीफ एकाऊन्ट आफ जगम्मनपुर राज
थाकर्स प्रेस एड डायरेक्ट्रीज कलकत्ता वर्ष १६३५
ए गजेटियर बौलयूम **XXV**-डौकमेन
एफलूकर सुप्रिरिन्टैन्डैन्ट गर्वमेन्ट प्रेस
इलाहाबाद वर्ष १६०६
ऐतिहासिक स्थानावली - बिजयेन्द्र कुमार माथुर
शिक्षा मन्त्रालय , भारत सरकार
नई दिल्ली वर्ष १६६६
ओरिजनल संस्कृत टैक्सट् वाल्यूम ५ - डा० वोल्लेनसनभूर
ऋग्वेद
कल्चररल हिस्ट्री आफ बुन्देलखण्ड - एम० एल० निगम
दिल्ली वर्ष १६८३
कल्याण तीर्थांक - गीता प्रेस गोरखपुर वर्ष १६५७
कल्याण पुराणकथांक - गीता प्रेस गोरखपुर वर्ष १६८६
कल्याण मत्स्यपुराणांक - गीता प्रेस गोरखपुर वर्ष -
कल्याण देवीभागवतांक - गीता प्रेस गोरखपुर वर्ष १६६०
कल्याण वारहपुराणांक - गीता प्रेस गोरखपुर वर्ष १६७७
कल्याण भविष्यपुराणांक - गीता प्रेस गोरखपुर वर्ष १६६२
कल्याण सूर्यअंक - गीता प्रेस गोरखपुर वर्ष १६७८
कन्नौज - डा० गोपाल कृष्ण अवस्थी वर्ष १६७६
कालपी महात्म - रुप किशोर टण्डन
[illegible]रगंज कानपुर वर्ष १६५४
कुश राजवंश प्रदीप - राजा कृष्णपाल सिंह जूदेव
द्वारकानाथ भार्गव प्रेस
इलाहाबाद वर्ष १६७४

ब्रह्माण्ड पुराण

बुर्जियों के पीछे - भगवत शरण उपाध्याय - पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस (प्रा०) लि० नई दिल्ली वर्ष १९८२

बुन्देली विरासत - नईम कुरैशी - चम्बल पोस्ट प्रकाशन ग्वालियर — वर्ष १९९१

बुन्देलखण्ड का इतिहास -- गोरेलाल तिवारी - काशी नगरी प्रचारणी सभा काशी संवत १९९०

बुन्देलों का इतिहास -- बृजरत्नदास - काशी नगरी प्रचारिणी सभा काशी — वर्ष १९७६

बुन्देलखण्ड का इतिहास (भाग एक) — दीवान प्रतिपाल सिंह - साहित्य भूषण कार्यालय वनारस — संवत १९८५

बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य - रामचरण हयारण राजकमल प्रकाशन प्रा०लि० दिल्ली -६ वर्ष १९६६

बुन्देलखण्ड दर्शन -- मोती लाल त्रिपाठी 'अशान्त ' - शारदा साहित्य कुटीर झासी — वर्ष १९८०

बुन्देलखण्ड का इतिहास — मोतालाल त्रिपाठी 'अशान्त ' - शारदा साहित्य कुटीर झासी वर्ष १९९१

बुन्देलखण्ड का पुरातत्व - डा०एस०डी०त्रिवदी - राजकीय संग्रहालय झाँसी — वर्ष १९८४

भारत का इतिहास -- डा०ए०के०मित्तल - साहित्य भवन, आगरा - वर्ष-१९९१

भारत का इतिहास -- डा०एस०के०परिख व ए०सी०दहीभाते - राम प्रसाद एंडसन्स , आगरा - वर्ष १९९२-९३

भारत के नगर — अ० करोत्स्काया - पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस (प्रा०) लि० नई दिल्ली -- वर्ष १९८४

भारतीय कला की भूमिका -- भगवत शरण उपाध्याय - पीपुल्स हाऊस (प्रा०) लि०नई दिल्ली वर्ष १९८०

भारतीय कृषि कोष -- सम्पा० डा० जगत नारायण दुबे - शान्ति प्रकाशन - इलाहाबाद वर्ष- १९८६

भारतीय स्थापत्य - डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल - हिन्दीं समिति -- सूचना विभाग उ०प्र०- लखनऊ वर्ष १९६८

महाभारत कोष - सम्पा० डा० रामकुमार राय चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी वर्ष - १९८२

महाराजा छत्रसाल बुन्देला - भगवानदास गुप्त - शिवलाल अग्रवाल एंड क०प्रा०लि० आगरा -- वर्ष १९५८

रामचरित मानष - गोस्वामी तुलसीदास - गीताप्रेस गोरख पुर - वर्ष १९८१

राम चरित मानष टीका -- प० महावीर प्रसाद मालवीय - वेलवेडियर प्रेस , प्रयाग - संवत १९८२

रिपोर्ट आफ ए टूर इन बुन्देल खण्ड एंड रीवा - अलैक्जैन्डर कनि -घम इन्डोलोजिकल बुक हाऊस वाराणसी वर्ष १९६६

लोकेन्द्राख्यान -- शिवनाथ सिंह सेगर नवलकिशोर प्रेस लखनऊ वर्ष १९२१

विद्रोही की आत्म कथा -- चतुर्भुज शर्मा - आत्मराम एण्ड सन्स दिल्ली-६ वर्ष १९७०

विष्णु पुराण की भूमिका - एच०- एच०- विल्सन

वैदिक माईथोलोजी - मेकडानेल

बृहत क्षत्रिय वंश भास्कर - डा० इन्दुदेव नारायण सिंह

श्री शुक सुधा सागर -- गीता प्रेस गोरखपुर वर्ष १९६३

श्री सम्पूर्णानन्द अभिनन्दन ग्रन्थ
सम्पा० बनारसी दास, वृन्दावनलाल वर्मा - हिन्दी भवन कालपी - वर्ष १९५०

श्री सूक्त – जगदगुरु शंकराचार्य विरचित संस्कृत बुक डिपो वाराणसी -- वर्ष १९८८

श्रीमद्भागवत -- गीता प्रेस गोरखपुर वर्ष १९६३

समरांगण सूत्रधार

स्वर्ण मुद्रायें - एस० चान्द एंड कम्पनी नई दिल्ली

सांस्कृतिक धरोहर जनपद जालौन - अर्जुन सिंह - जिला सूचना कार्यालय उरई - वर्ष १९९३-९४

शोध प्रबन्ध - स्थाननामों का ब्युत्पन्तिगत ऐतिहासिक एंव सांस्कृतिक अनुशीलन - यामिनी श्रीवास्तव उरई

गरुण पुराण - श्री दुर्गा पुस्तक भण्डार
दरियाबाद , इलाहाबाद वर्ष १९९०
गंगा पुरात्तवांक - सम्पा० राहुल सांस्कृत्यायन
गंगा कार्यालय , सुल्तानगंज
भागलपुर वर्ष १९३३
चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास - अयोध्यां प्रसाद पाण्डेय
हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग वर्ष - १९९८
चन्देलाज आफ जेजाजमुकि -आर० के० दीक्षित
नई दिल्ली - १ वर्ष १९७७
छत्र प्रकाश - बाबू श्याम सुन्दरदास व कृष्ण बल्देव वर्मा
नागरी प्रचारणी ग्रन्थ माला
काशी वर्ष १९१४
छत्र प्रकाश - सम्पा० महेन्द्र प्रताप सिंह
श्री पटल पृकाशन , कविलाल कैलाश कालौनी
नई दिल्ली - ४८ वर्ष १९७३
तीर्थ भूमि कालपी --- विन्देदीन पाठक कालपी - वर्ष १९९९
प्रणाम विलास - ब्राह्मण प्रेस कानपुर - वर्ष १९२१
प्राचीन भारत का इतिहास--- द्विजेन्द्र नारायण झा - हिन्दी माध्यम कार्यान्वन निदेशालय
दिल्ली विश्वविधालय दिल्ली - वर्ष १९८१
पौराणिक कोष - सम्पा० राणा प्रसाद शर्मा वाराणसी ज्ञान मण्डल लि० वाराणसी - वर्ष १९७१
पुरातन गाथाओं का शहर कालपी - डा० राजेन्द्रकुमार - नगर पालिका, कालपी - १९७६
पुरातत्व और कला - गोपाल कृष्ण अग्निहोत्री - पुरातत्व संग्रालय, कन्नौज वर्ष १९७८

हिन्दू मुस्लिम स्थापत्य कला शैली [illegible] लक्ष्मीनारायण अगवाल हास्पिटल रोड आगरा १९६३

हिन्दी शब्द सागर - सम्पादन - श्यामसुन्दर दास , काशी नागरी प्रचारणी सभा, प्रयाग वर्ष १९२५

हिन्दू राज्य शास्त्र - अम्बिका प्रसाद बाजपेयी हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग वर्ष १९४१

साप्ताहिक एंव दैनिक पत्र

अमर उजाला दैनिक - कानपुर संस्करण दिनांक ३० सितम्बर १९९३-३०अक्टूवर१९९३

आज दैनिक - कानपुर संस्करण दिनांक ३०मार्च १९९३-४जुलाई १९९४-१७जनवरी १९९५-६जून १९९५ - १८जुलाई १९९५

कर्मयुग प्रकाश दैनिक -- उरई - दिनांक २५जुलाई १९७६-

गेटे साप्ताहिक - उरई - दिनांक १५फरवरी १९८२

जागरण दैनिक - कानपुर संस्करण - दिनांक - १८अप्रेल १९८९ - १दिसम्बर १९९३

दीवान - दैनिक - उरई - दिनांक १७जुलाई१९९५ - १८जुलाई १९९५ - २०जुलाई-१९९५

मध्यदेश दैनिक - झांसी संस्करण - दीपावली विशेषांक १९७१

लोकराज साप्ताहिक - कालपी - दिनांक १ जुलाई १९५८

लोक सेवा साप्ताहिक - कालपी
- दिनांक १८ नवम्बर १९७३- २९दिसम्बर - १९९१-५जनवरी १९९२-१२जनवरी १९९२

व्यासभूमि साप्ताहिक - कालपी - दिनांक ४ नवम्बर १९९३

सोचसमझ दैनिक - उरई - प्रवेशांक

पत्रिकायें एवं लेख --

आज की बात - सम्पादक - आलोक वर्मा , लखनऊ - जुलाई १९९५

कालपी का इतिहास - राधाकान्त पाण्डेय , ब्यास वाणी पत्रिका - एस०एस० वी० कालेज वर्ष १९९६

कालपी कीर्ति अंक - सम्पादक - एम० एस० वी० इन्टर कालेज कालपी - वर्ष १९७८

कादम्बनी -

अगस्त १९९३

ज्योंतिष विचार - सम्पादक - प० कामतानाथ शास्त्री - उरई - नवम्बर १९८८

डायरी - चना विभाग, उ०प्र० सरकार लखनऊ - वर्ष १९५४

नव अंकुर - सम्पादक - डा०जयश्री पुरवार , भारती प्रेस , उरई - वर्ष १९८४से १९८६तक

महार्षि वेदव्यास जी की जन्म कथा - चन्द्रभानु विधार्थी हिन्दी भवन कालपी

मामुलिया - सम्पादक - डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त , बुन्देल खण्ड साहित्य अकादमी प्रकाशन छतरपुर (म०प्र०) वर्ष १९८७से १९९१तक

युग युगों में कालपी - प्रो० के०डी० बाजपेयी ,

स्मारिका -

मुन्शी के०एम० राज्यपाल के कालपी आगमन दिनांक ३०.६.१९५३में

लोकसंगम

- सम्पादक , राजाराम पाण्डेय छत्रसाल इन्टरकालेज जालौन वर्प १९७०

स्मारिका - महाकबि काली एंव पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी जन्म शताब्दी समारोह , महाकविकाली शोध संस्थान , उरई वर्ष १९९३

सहयोग - सम्पादक - वी०पी०निगम बुन्देल खण्ड सांस्कृतिक सहयोग परिपद लखनऊ वर्प १९९०